

कृषि-दर्पण ।



प्रथमभाग ।

कलकत्ता-काशीपुर कृषिशालाके सत्वाधिकारी

श्रीहिमचन्द्रमित्र द्वारा सङ्कलित

और प्रकाशित ।

१६०१ रु०



Price 6 Annas.]

[मूल्य १५ के पाने ।

26 AUG. 18

Printed at the B. L. Press, No. 71 Burtolla Street
CALCUTTA.

कृषिदर्पणके प्रथम भागका

सूचीपत्र ।

प्रथम भाग (प्रथम अध्याय) ।

विषय]	पृष्ठासे पृष्ठातक]
भू-वृत्तान्त ...	१—३
भूमिभेद ...	४—४
उपत्यका ...	४—५
अधित्यका ...	५—६
तराई वा शैलतल ...	~~६—६~~
समभूमि ...	~~७—११~~
मिट्टीके भेद ...	२१—२१
एटेल मिट्टी ...	२१—२२
हेड़मो एटेल मिट्टी ...	२२—२३
खोषका एटेल मिट्टी ...	२३—२४
दुधिया एटेल मिट्टी ...	२४—२४
चूना एटेल मिट्टी ...	२४—२५
लाल मिट्टी ...	२५—२६
भाँभरा एटेल मिट्टी ...	२६—२६
पलि मिट्टी ...	२६—२७
यन्ता मिट्टी ...	२७—२८
वालुई मिट्टी ...	२८—२८

सूचीपत्र ।

विषय]	पृष्ठासे पृष्ठातक]
लोना मिट्टी 	... २८—३०
प्रस्फुटित लोना मिट्टी 	... ३०—३०
दुमट मिट्टी 	... ३१—३१
भिटा मिट्टी	
तथा मिट्टीके विशेष विवरण }	... ३१—३४
सार (खाद) का वर्णन 	... ३४—४३
मिट्टीकी परीक्षा	... ४३—४६
खादका विशेष विवरण 	... ४६—४८
उद्भिज्जसार 	... ४८—४८
प्राणिज खाद 	... ४८—४८
मिश्रित खाद 	... ५०—५०
खेतीकी जमीन	... ५१—५२
क्षेत्रभेद 	... ५३—५३
कूर्मपृष्ठ क्षेत्र 	... ५३—५४
क्रमनिम्न क्षेत्र 	... ५४—५४
समतल क्षेत्र 	... ५४—५५
बूड़ीक्षेत्र 	... ५५—५५
विलान क्षेत्र 	... ५५—५६
खेत खोदना 	... ५७—५७
क्षेत्रकर्षण 	... ५७—६३
भूमि आवादका तात्पर्य 	... ६३—७४

कृषिदर्पणके प्रथम भागका सूचीपत्र सम्पूर्ण ।

कृषिदर्पणके द्वितीय भागका सूचीपत्र ।

द्वितीय भाग (द्वितीय अध्याय) ।

विषय]	पृष्ठासि पृष्ठातक]
कृषिकार्य्य	७५—७६
गोप्रतिपालन	७६—८१
वैलोंको हलमें जोतना	८२—८४
हलादिका विशेष विवरण	८४—१०४
वैलोंके शुभाशुभ लक्षण	१०४—१०८
गोशालाका वर्णन	१०८—१११
गोव्व ^१ वर्णन	१११—११४
गोतोर्थ वर्णन	११५—११८
खेती और खेतीका अनुभव तथा सामग्री प्रभृतिका विशेष वर्णन	} ११८—१२६
कृषि यन्त्रादि	१२७—१२८
विदे लाङ्गली चलाना	१२८—१३१
हेंगीचलाना और गोड़ना	१३१—१३२
खेतनिराना	१३२—१३४
बीजका वर्णन	१३५—१४१
बीज और छेचका विशेष विवरण	१४१—१४६

कृषिदर्पणके दूसरे भागका सूचीपत्र सम्पूर्ण ।

कृषिदर्पणके तीसरे भागका सूचीपत्र ।

तृतीय अध्याय (तीसरा भाग) ।

विषय]	पृष्ठासे पृष्ठा]
देशी फसलोंके बोनेकी रीति	१४७—१४७
ईख	१४७—१४८
ईख रोपनेकी रीति	१४८—१५१
ईखकी जातिका वर्णन	१५१—१५१
वस्वई ईख	१५२—१५२
सामसाड़ा ईख	” ”
काजली ईख	१५३—१५३
कामरङ्गा ईख	१५३—१५३
खागडी ईख	१५३—१५४
ईखकी पेड़ी	१५४—१५५
अड़हड़	१५५—१५६
उड़द	१५६—१५७
उतैला	१५७—१५७
मूंग	” ”
चना वा वूट	१५८—१५८
मटर	१५८—१६०
मसुरी	१६०—१६१
केसारी	” ”
गेहूँ	१६२—१६६
यव	१६६—१६७
तिल	१६७—१६७

विषय]	पृष्ठासे पृष्ठा]
काला तिल ...	१६७—१६८
साहेब तिल ...	१७०—१७०
कातिकी तिल ...	” ”
काट तिल ...	१७०—१७२
तीसी ...	१७२—१७४
सरसो ...	१७४—१७५
राई ...	१७५—१७६
शुकरगुजरी ...	१७८—१७८
धान ...	” ”
आशुधान ...	” ”
भादवी छोटना आशुधान ...	१७८—१८०
कुआरी वराण आशुधान ...	१८०—१८१
कुआरी आशुधान बोनेकी रीति ...	१८१—१८१
अगहनी वा हैमन्तिक } आमन (शालि) धान }	१८१—१८८
राढ़ी आमन (शालिधान ...	१८८—१८४
विशेष विधि ...	१८५—१८८
वागड़ा आमन धान ...	१८८—२००
वागड़ा आमन छोटना धान ...	२००—२०१
वागड़ा आमन वराण धान ...	२०२—२०३
बोरी धान ...	२०४—२०४
रोपित बोरी धान ...	२०४—२०५
पौधे तैयार करनेका विशेष विवरण ...	२०५—२०६
बोरी धानके आवाद करनेकी रीति ...	२०७—२०८
वपन किये हुए बोरी धान ...	२०८—२०८

विषय]	पृष्ठासे पृष्ठा]
जलिधान	२०८—२११
तरा आशुधान	२११—२१३
पोस्ता वा अफून	२१३—२१८
शण (सनई)	२१८—२२०
पाट वा पटुआ	२२०—२२४
भूरी काकुन वा सांवाँ	” ”
मंडुआ	२२४—२२६
कृषिदर्पणके तीसरे भागका परिशिष्ट	२२६।१—२२६।४
रुई वा कपास	२२६।१—२२६।४

कृषिदर्पणके तृतीय भागका सूचीपत्र समाप्त ।

कृषिदर्पणके चौथे भागका सूचीपत्र ।

चतुर्थ अध्याय (चौथा भाग) ।

विषय]	पृष्ठासे पृष्ठा]
देशीय विदेशीय साक सजी फसल प्रभृति	... २२७—२२७
अमेरिकाकी सबसे बड़ी बढियां फूल गोभी	... २३१—२३२
बँधी गोभी	... ,, ,,
ओल (गांठ) गोभी	... २३२—२३३
बीट	... २३३—२३३
विलायती गाजर	... २३३—२३४
सलगम	... २३४—२३४
मूली	... २३४—२३५
छलाद	... २३५—२३६
सिलेरी	... ,, ,,
हालिम वा इण्डियन क्रोस	... २३६—२३७
स्पिनाक	... ,, ,,
अमेरिकन वा विलायती } तवूँज खवूँजा प्रभृति	... २३७—२३८
कुम्हड़ा	... २३८—२३८
आर्टीटक वा हातीचक	... २३८—२३९
विलायती सेंम	... ,, ,,
विलायती वैंगन	... २३९—२४०
विलायती भुट्टा वा मक्का	... २४०—२४०

विषय]	पृष्ठासे पृष्ठा]
बिलायती प्याज वा लहशुन ...	... २४०—२४१
चोनावादाम ...	... २४१—२४४
अमेरिकाका बड़ा मिर्चा ...	... २४४—२४५
अमेरिकन वा देशी तमाकू ...	... २४५—२४८
रुटावागा ...	... २४८—२४९
अदरक ...	... २४८—२५२
देशी मिर्चा ...	... २५२—२५५
हल्दी ...	... २५५—२६२
चैतीखीरा ...	... २६२—२६४
शाक आलू ...	... २६५—२६७
बड़ा लौवा ...	... २६८—२६९
सांची कुम्हड़ा ...	... २६९—२७१
शाक प्रभृति आवाद करनेकी रीति ...	... २७१—२७१
डेङ्गी शाक ...	... २७१—२७४
करम शाक ...	... २७४—२७५
चीलाई शाक ...	... २७५—२७७
भोककँकड़ी ...	... २७८—२७९
देशी प्याज वा लहशुन ...	... २७९—२८१
सौफ ...	... २८१—२८२
धनियाँ ...	... २८२—२८३
मेथी ...	... २८२—२८३
कृषिदर्पणका चौथा भाग सूचीपत्रका समाप्त ...	... २८३—२८३
काशीपुर कृषिशालाको नियमावली ...	... २८४—२८५
कृषिदर्पणका चतुर्थ भागका सूचीपत्र सम्पूर्ण ।	

भूमिका ।

प्रिय पाठकवृन्द ! हमने भारतवासियों की स्वतन्त्र व्यवसायी बनाने तथा कृषिकार्य और उद्भिद्विद्या की विशेष तरकीब करने के अभिप्रायसे “कृषिशिक्षा” एवं “वृक्षरोपण-प्रणाली” नाम पुस्तक को देवनागरी-भाषामें बनाकर प्रचार किया । हर्षका विषय है,— भारतवासी विज्ञ सुजन, महात्मा, देशहितैषी जमींदार, राजा, महाराजा तथा कृषकमण्डली इस विषयमें हमें दिनींदिन उत्साही कर रही है । कृषिकार्य तथा उद्भिद्विद्यामें भारतसन्तानों की विशेष रुचि और श्रद्धा देखकर हमने भारतीय लोगों तथा कृषिकारियों की कृषिकर्ममें पूरीतरह सहायता पहुँचाने के अभिप्रायसे इस “कृषि-दर्पण” पुस्तक को बनाया है । इसमें कृषिसम्बन्धीय सब बातें विस्तारसे लिखी हैं । इस पुस्तकमें लिखे तरीकोंसे खेती करनेवालों की किसीकी ताबेदारी नहीं करनी होगी । इस पुस्तकके सुताविक कार्य करनेवाले स्वतन्त्रतापूर्वक घर बैठेही बहुतसा अन्न धन उपार्जन करके सुखपूर्वक पोष्यवर्गों को पालन पोषण करते हुए अपना जीवनसमय निर्विघ्न व्यतीत कर सकेंगे । प्रिय पाठकवृन्द ! यह कृषिकार्य बहुतही सीधा सादा प्रायः छल कपट रहित स्वतन्त्र व्यापार है । राजर्षि मनु भगवान् ने स्वतन्त्र व्यवसाय की ही प्रशंसा की है और नौकरी को निन्दितकार्य कहके वर्णन किया है । पराशर ऋषिने कृषिकर्म की सब व्यवसायोंसे श्रेष्ठ कहा, है । क्योंकि,—

कण्ठे हस्ते च कर्णे च सुवर्णं यदि विद्यते ।
उपवासस्तथापि स्यात् अन्नाभावेन देहिनाम् ॥

अर्थात् गला हाथ तथा कानोंमें बहुत समय सुवर्ण आदि रत्नोंके मौजूद रहने पर भी लोगोंको अन्नके अभावमें उपवास करना होता है । इस लिये नौकरी (गुलामी) छोड़कर स्वतन्त्रतापूर्वक अच्छी प्रकार कृषिकार्यको करना चाहिये । क्योंकि मनुजी स्वयं कह गये हैं कि,—

यद् यत् परवशं कर्म तत्तद् यत्नेन वर्जयेत् ।
यद् यदात्मवशान्तु स्यात् तत् तत् सेवेत यत्नतः ॥

अर्थात् जो जो कार्य दूसरेके अधीनके हों, उन्हें यत्नपूर्वक परित्याग करे, और जो कार्य अपने वशके हों, उन्हें सदा सर्वदा करना उचित है ।

यह पुस्तक चार-भागमें विभक्त है । प्रथम-भागमें भूतत्तान्त, क्षेत्रका वर्णन है । दूसरेमें कृषिकार्य तथा खेतीके साधन और रीतियोंका बयान है । तीसरे-भागमें धान, गेहूँ, कपास, ईख आदि फसलोंके उत्पन्न करनेकी रीति विस्तारसे लिखी है । चौथे-भागमें देशीय, विदेशीय शाक, सब्जी, फसल आदि उत्पन्न करनेके कायदे लिखे हैं । इस पुस्तकमें लिखे तरीकोंके अनुसार खेती करने-वाले सहजमें ही प्रचुर धन पैदा कर सकते हैं ।

भारतवासियोंको स्वतन्त्रव्यवसायी बनाने तथा उन्हें पूर्ण सहाय पहुंचानेके लिये हमने बहुत परिश्रम और विपुल अर्थ व्यय करके सन १८८६ ई० में “कलकत्ता,—काशीपुर-कृषिशाला” स्थापित किया, क्योंकि प्राय २० बीस करोड़ भारतवासी केवल

कृषिकर्मसे वर्तमान समयमें भी अपनी जीविका निर्वाह कर रहे हैं। पर पूरी तरहसे खेतीकी विद्या नहीं जानते। इस अभावको दूर करनेके लिये ही “कलकत्ता,—काशीपुर कृषिशाला” स्थापित किया गया है। इस कृषिशालामें भारतवासियोंको कृषि तथा उद्भिद्विद्या की शिक्षा दी जाती है, कृषि सम्बन्धीय सब बातें प्रत्यक्ष दिखाई जाती हैं। यहां प्रतिवर्ष इस कृषिशालाकी वार्षिक प्रदर्शनी जो कि प्रायः वसन्तपञ्चमीके समय होती है, उस मेलेमें दूर दूरके राजा जमीन्दार तथा ब्रिटिश-गवर्नमेण्टकी तरफसे स्वयं लाटसाहिब पर्यन्त आते हैं, और कृषिकार्य में उत्तमता दिखानेवालोंको यथायोग्य इनाम बांटते हैं। कृषि-सम्बन्धीय अनेक बातें, जांच, परीक्षा, विदेशीय बीज बीना, तरहर की खाद डालकर भिन्न-फसल वगैरः पैदा करने की रीति प्रत्यक्ष दिखाई जाती है। प्रतिवर्षकी वार्षिक-प्रदर्शनीमें सर्वसाधारण लोग उपस्थित होकर इस कृषिशालाके संरक्षित बीज और वृक्षादिकोंको अनुभव करके कृषिविद्या तथा उद्भिद्विद्याकी उन्नति कर सकते हैं। हमारे देशमें पृथक् बीज वगैरः बेचनेवाले अच्छे सौदागर नहीं देखते, इसलिये हम देशीय विदेशीय प्रायः सब तरहके शाक सब्जी तथा फसलोंके बीज प्रतिवर्ष मंगाकर बेचनेके लिये मौजूद रखते हैं।

सर्वसाधारण भारतसन्तानोंको वाचनिक तथा व्यवहारिक शिक्षा देना हमारा मुख्य कर्तव्य कार्य है; इसी अभिप्रायसे हम यहां देशीय विदेशीय सब तरहके बीज और वृक्षोंके पौधे भी संग्रह करके हर समय मौजूद रखते हैं, जो कि उचित मूल्य पर मंगानेवालोंके पास भेजे जाते हैं। कृषिकार्यकी भारतमें उन्नति और उद्भिज्जविद्याकी प्रचारार्थ ही हमने “कृषिशिक्षा” और “वृक्षरोपण प्रणाली” पुस्तकको देवनागरी-भाषामें बनाकर प्रकाश किया है। आज इस ‘कृषिदर्पण’

नाम पुस्तकको बनाकर सर्वसाधारण भारतवासियों विशेष कर विज्ञमण्डलीके सम्मुख रखते हैं, आशा है कि—भारतहितैषी महात्मा गृहस्थलोग हमारे इस महत् अभिप्रायको सफल करेंगे। इस पुस्तकमें विस्तारसे कृषिकर्मी यानी खेती की बातें बहुत सहज रीतिसे वर्णन की गई हैं।

श्रीहेमचन्द्र मित्र ।

सन १९०१ ई०

स्वत्वाधिकारी,—“काशीपुर कृषिशाला”

(प्रोष्ठ) काशीपुर—कलकत्ता ।

369

कृषि-दर्पण ।

प्रथम भाग ।

प्रथम अध्याय ।

भूवृत्तान्त ।

हमलोग जिस विशाल-पृथ्वीमण्डल पर निवास करते हैं, उस जमीनको मुख्य करके तीन-मण्डलमें विभक्त किया जा सकता है । (१) पहिला ग्रीष्ममण्डल (२) सममण्डल और (३) तीसरा हिम-मण्डल है ।

पृथिवीके मध्यभागमें जहां सूर्यकी किरणें सीधी पड़ती हैं, जमीनके इस भागमें गर्मीकी बहुत ही अधिकता रहती है ; इसी भूभाग को ग्रीष्ममण्डल के अन्तर्गत समझते हैं । ग्रीष्ममण्डल में वृक्ष, लता और शस्यादि फसलें बहुत अच्छी तरह उत्पन्न हो सकती हैं । ग्रीष्ममण्डलवाली भूमिके समान शस्यादिकोंकी पैदावार अन्य मण्डलकी भूमिमें नहीं हो सकती, इसलिये ग्रीष्ममण्डलकी जमीनको ही वृक्ष, लता उम्रिज्ज अर्थात् कृषिसम्बन्धीय शस्यादिकोंकी आकर (खान) कहना चाहिये । ग्रीष्ममण्डलवाली जमीनके दोनों पश्चाद्वेकी भूमिमें सूरजकी किरणें तिरछी पड़ती हैं, इसलिये उस

भूमिमें यहीं गर्मीकी समानता रहती है ; इसी हेतु ऐसी जमीनको सममंडल की अन्तर्गत गिनते हैं । सममंडल में भी उद्भिज्ज आदिका अभाव नहीं है, क्योंकि सममंडलमें विविध प्रकारके वृक्ष, लता, गुल्म औषधादि अनेक तरहके उद्भिज्ज उत्पन्न हुआ करते हैं ; इस लिये सममंडलकी भूमि भी कृषिकार्यके उपयोगी समझी जाती है ।

इसके सिवाय पृथिवीके उत्तर-दक्षिण-प्रान्तस्थित मेरुके निकटवर्ती स्थानोंमें सूर्यकी किरण ऐसी टेढ़ी पड़ती हैं कि, उस जगह उत्तापका बहुत ही अभाव रहता है, इसी निमित्त वहांके स्थान प्रायः वर्षसे परिपूरित रहते हैं ; ऐसी जमीनको हिममंडलके अन्तर्गत गिनते हैं । हिममंडलमें बिरले ही वृक्ष आदिकी उत्पत्ति दीखती है । तथा कई एक जातिके वृक्ष गुल्म और शैवाल प्रभृतिके सिवाय अन्य कोई भी उद्भिज्ज वहां नहीं दीखते ।

इसमेंसे उद्भिज्ज पदार्थोंकी आकर-स्थान ग्रीष्ममंडलकी जमीन सब ठौर एकही भावयुक्त नहीं है, अनेक कारणोंसे यह भूमि ठौर ठौर पृथक् पृथक् रूप धारण करती है । सममंडल और हिममंडल वाली भूमिमें भी प्रायः ऐसा ही नियम विद्यमान है; इस लिये एक ही जमीनकी मिट्टी विशेष विशेष लक्षणोंसे अलग अलग श्रेणीमें गिनी गई है । एकही मिट्टीकी आकृति प्रकृति और उत्पादिका शक्तिमें ठौर ठौर बहुत ही तारतम्य दीखता है ।

समुद्र तलस्थ मृतिकासे लगाय अत्यन्त ऊंचे * पर्वतशिखर-

* भूगर्भमें अनेक प्रकारके स्तर वर्तमान हैं । पृथिवीकी आन्तरिक-शक्ति और अग्नि जलके प्रभावसे ये सब स्तर कभी कभी पिघलते तथा फूलकर ऊपर उठते हैं, इसी प्रकार पहाड़ोंकी उत्पत्ति होती है । समतल भूमिसे पहाड़ोंकी ऊंचाई

स्थित मिट्टी तथा समभूमि और मरुभूमि * पर्यन्त प्रत्येक भूमिकी आकृति प्रकृति पृथक् पृथक् दीखती है। प्राकृतधर्म-भेदसे यह विभिन्न आकृतियुक्त एकही जमीनकी मिट्टी कहीं अनेक प्रकारके वृक्ष लता, गुल्म, औषधि प्रभृतिकी उत्पन्न कर जगत्-रिपालिनी मिट्टीरूपसे जीवोंकी जीवनीस्वरूपिणी है; और कहीं जीवसंहारिनी मरिचिकाउत्पादिनी भयङ्करी मरुभूमि नामसे प्रसिद्ध है। कहीं यही पृथ्वी कदर्य-तृणादिकोंसे परिपूर्ण दावानल गर्भिणी तृणक्षेत्र † नामसे विख्यात है। कहीं विशाल वृक्ष लताओं तथा खापदादि पशुओंके निवासस्थल भयङ्कर जङ्गलरूप से और कहीं जलतलशायिनी पङ्कमयी जलाभूमि नामसे प्रसिद्ध है।

बहुत ज्यादा है। पहाड़ोंपर एक दो तथा बहुतसे शृङ्ग रहते हैं। पर्वत-शृङ्गों पर कहीं पत्थर और कहीं मिट्टी-पत्थर दोनोंही मिले रहते हैं। पृथिवी के सब पहाड़ोंके बीच हिमालय-पहाड़ सबसे ऊँचा है।

* अफ्रिका और एशिया-खंडकी जमीनमें वृक्षदाकार मरुभूमि हैं। हिन्दुस्थानके मारवाड़ देशमें भी मरुभूमि है; लेकिन अरबदेशमें सहारा वा करबलाकी मरुभूमि बहुत बड़ी और भयङ्कर है। ऊँटके सिवाय उस मरुभूमिमें कोई पशु नहीं चल सकता, वहाँ सैकड़ों कोसतक केवल बालू ही बालू दीखती है, कहीं तृण वा जल नहीं दीखता।

† अमेरिका-खंडमें सैकड़ों-कोसतक भूमिके अंश तृणादिसे परिपूर्ण रहते हैं। बरसातमें ये तृण पाँच छ हाथ तक ऊँचे होकर मनोहर दीखते हैं; औषकालमें सूख जाते तथा बीच बीचमें दावाग्नि प्रकट होके सम्पूर्ण तृणोंको भस्म कर देती है। वहाँ मनुष्योंकी वस्ती और कृषिका प्रचार नहीं है।

भूमिभेद ।

प्रथम-अध्यायमें सम्पूर्ण पृथिवीमंडलकी जमीनको 'ग्रीष्म, सम और हिम, इन तीन मंडलोंमें विभक्त कर आये हैं; अब उसे मुख्य करके दो अंशमें बांटते हैं,—अर्थात् एक उर्वरा (उपजाऊ) जमीन; और दूसरी अनुर्वरा (ऊपर वा बर्फीली तथा अनुपजाऊ) जमीन, जिसमें कि उद्भिज्ज आदिका उत्पन्न होना बहुत सुशकिल है ।

उपत्यका, अधित्यका, तराई, नदीमुखायस्थ भूमि तथा समभूमि प्रभृति जिस जमीनमें हल चलते तथा बारी बगीचा वा वृक्ष लता उद्भिज्ज और अनेक प्रकारकी फसलें उत्पन्न हो सकती हैं,—उसे ही उर्वरा (उपजाऊ) जमीन कहते हैं; इसके विपरीत अनुर्वरा अर्थात् ऊपर जमीन जानो। प्रसिद्ध है 'ऊपर बरसे तृण नहीं जामा' अर्थात् जलकी वर्षा होने पर भी ऊपर जमीनमें तृण तक नहीं उत्पन्न हो सकता । पर्वतशृङ्ग मरुभूमि और समुद्रतटकी जमीनको भी हम ऊपर भूमिके अन्तर्गत समझकर उसका वर्णन नहीं करेंगे । क्योंकि ऐसी ऊपर वा अनुपजाऊ जमीनमें यद्यपि कृषिकार अपने अधिक परिश्रमसे खाद आदि डालके कृषिके उपयोगी बनाकर कुछ फल प्राप्त कर सकता है, पर ऐसा करनेसे आमदनीमें खर्च ज्यादा पड़ता है; इस लिये जिस कार्यमें नुकसान ज्यादा हो, उसे करना युक्तिसङ्गत नहीं है । इस निमित्त इस पुस्तकमें हम उर्वरा-भूमिका ही वर्णन करेंगे, जिसमें खेत तैयार करके लोग सुगमताईसे खेती कर प्रचुर अन्न शस्यदि उत्पन्न करके लाभवान हो सकते हैं ।

उपत्यका ।

दो पहाड़ोंके निम्न मध्यस्थलमें छोटे छोटे उपत्यका दीखते हैं । कहीं बड़े उपत्यका भी दिखाई देते हैं । उपत्यकाकी आकृति

कहीं समभूमिकी तरह लम्बी चौड़ी, कहीं लुद्राकृति और कहीं गोलाकृति होती है। उपत्यकाके जल-वायु स्वास्थ्यकर और भूमि बहुत उर्वरा उपजाऊ होती है। उपत्यकाकी मिट्टी ठंढादि तथा कृषिकार्यके लिये खूब उपयोगी है। ऐसी जमीनमें अनेक तरहके वृक्ष लता तथा औषधियां उत्पन्न होती देखी जाती हैं। इस समय हिमालयके छोटे छोटे उपत्यकाओंमें बहुत बढ़ियां चाय उत्पन्न होती देखी जाती है।

अधित्यका ।

बहुत दूरतक पर्वतश्रेणीके छोटे छोटे शृङ्गोंके ऊपरके भूभाग का नाम अधित्यका है। यह जमीन उर्वरत्व सम्बन्धमें उपत्यका से घटियां हैं। ऐसे स्थानमें जलके कष्टको भी सम्भावना रहती है। पर स्वास्थ्य विषयमें अधित्यका बहुत प्रसिद्ध है। इसी हेतु वहांके निवासी जैसे बलवान तथा पराक्रमी होते हैं, उपत्यका और समभूमिके निवासियोंके वैसे होनेकी सम्भावना नहीं है।

अधित्यका मात्र समुद्रतटकी जमीनसे बहुत ऊंचाई पर है, हिमालय और कैलास-पर्वतके ऊपरी-देश तथा तिब्बत प्रभृति स्थान अधित्यका नामसे प्रसिद्ध हैं। किसी२ अधित्यकाकी ऊंचाई बहुत ज्यादा है। ऊंचाईकी अधिकता सुताविक वहां शर्हीकी ज्यादाती हुआ करती है। ज्यादा ठंडे स्थानोंमें बिरलेही उद्भिजोंकी उत्पत्ति हुआ करती है ; इस लिये समभूमि और उपत्यकाकी भांति अधित्यकाकी जमीनमें अधिक फल प्राप्तिकी आशा नहीं रहती, लेकिन सब अधित्यका मात्रकी जमीन एकवारगी उद्भिजरहित तथा कृषिकार्यके अनुपयुक्त नहीं है। हिमालय पहाड़के ५१७ हजार फीटकी ऊंचाई तक जो सब अधित्यका है, उन्हें उपत्यकाकी जमीनसे उर्वर-

रता विषयमें घटियां नहीं कहा जा सकता, वहां अनेक प्रकारकी उद्भिज्ज्येणी दीखती है और चाय भी भली भांति उत्पन्न होती है। पर पांच हजार फीटके ऊपर ग्रीष्मप्रधान देशके अधिकांश वृक्षादि वहां अच्छी तरह नहीं उत्पन्न होते।

तराई वा शैलतल ।

पर्वततल अर्थात् पहाड़से मिली हुई नीचे जो पर्वतके निकटकी जमीन है, उसेही तराई वा शैलतलकी जमीनके नामसे लिखते हैं। यह जमीन सम भूमिके ही तुल्य है तथा समभूमिसे मिली हुई है हिमालय पहाड़का दक्षिण शैलतल वा तराई बहुत ही ग्रीष्मप्रधान स्थान है, उसके जल वायु बहुत हीं अस्वास्थ्यकर हैं। पर उद्भिज्जादि की उत्पत्ति विषयमें ऐसी उर्वरा भूमि दूसरी नहीं है। पहाड़ोंके झरनोंका पानी इसी जमीनमें से बहा करता है, इसीलिये शैलतल वा तराईमें ठीकर बहुतरी छोटीर नदियां दीखती हैं। वर्षाके पानी से पहाड़के ऊपरकी मिट्टी बहकर इसी जमीनमें गिरती है, इस हेतु तराईकी मिट्टी ज्यादा उर्वरा होती है।

शैलतल यानी तराईमें दो-तीन हाथ जमीनके नीचेका भाग प्रत्यरके टुकड़ोंसे परिपूर्ण है। पहाड़से जितनी दूरी तक शिलाखण्ड दिखाई देते हैं, वहांतक पहाड़ तल वा तराईकी सीमा कहनी होगी।

हिमालयके दक्षिणी शैलतलको नयपालके नीचे मोरङ्ग, दार्जिलिङ्गके नीचे तराई और भूटानके नीचे दुवार कहते हैं। यहां के निवासी देखनेमें सुन्दर और बलवान, नहीं होते। इस भूभागका अधिकांश भाग इस समय भी महाघोर जङ्गलोंसे परिपूरित है। अब यहां अधिक परिमाणसे चायकी आबादी होती है। यहांके समान

रूई और चाय अन्य स्थानमें नहीं उत्पन्न होती । अधित्यका और उपत्यकामें प्रति एकड़ चार मनसे ज्यादा चाय नहीं पैदा होती । लेकिन शैलतल तथा तराईमें आठ वा दस मन तक प्रति एकड़ जमीन में चाय उत्पन्न होती है ।

नदी-सुखाग्रस्थ भूमि देखनेमें प्रायः समभूमिके तुल्यही होती है पर समभूमिके समान बहुत दूर तक इसका फैलाव नहीं होता । नदीके स्रोत जलके साथ बहती हुई मिट्टी इस जमीनमें आकर प्रति वर्ष एकत्रित हुआ करती है, इसलिये नदी सुखाग्रस्थ भूमि शैल तलस्थ जमीनके समान उपजाऊशक्ति सम्पन्न समझी जाती है, ऐसी जमीन खेतीके लिये खूब उपयोगी है । नदियोंके तटकी जमीन भी खूब उपजाऊ समझी जाती है । पर कभी कभी नदियोंका पानी बढ़कर खेतीकी बहुत ही हानि किया करता है ।

—०—

समभूमि ।

बहुत दूरतक लम्बाई चौड़ाईसे परिपूर्ण भूभागका नाम समभूमि है । समुद्रके जलकी सीमासे इस जमीनकी ऊंचाई बहुत ज्यादा नहीं है । समुद्रसे समभूमिकी ऊंचाई अनुमान दश हाथसे लगाय पचास हाथ तक होगी । समभूमिमें बहुतसे नद, नदी, तालाव कूआं बावली तथा वृक्ष, लता, गुल्म, औषधी शस्यादि परिपूरित क्षेत्र दृष्टिगोचर हुआ करते हैं । समभूमिमें कोई पर्वतादि नहीं दीखते । हिन्दुस्तान पारस, सैबेरिया, चीन, हङ्गेरी, श्याम प्रभृति देश सब प्रशस्त समभूमिके दृष्टान्तस्थल हैं । कृषिकार्यके लिये समभूमि बहुत ही प्रसिद्ध है । लेकिन उपजाऊशक्तिके सम्बन्धमें सब समभूमिकी मिट्टी समान नहीं है । देशीय प्राकृत भेदसे उनमें विलक्षण तारतम्य हुआ करता है ।

समभूमिमें बस्ती, आवादी और पड़ती,—ये ही तीन प्रकारकी मिट्टी दीखती हैं। बस्ती जमीन उसे कहते हैं, जिसमें मनुष्य वा गृह-पालित पशु प्रभृति वास करते हैं। यही जमीन कालक्रमसे मनुष्य रहित होनेसे डीह होजाती है। आवादी जमीन उसे कहते हैं, जिसमें भागवगीचा तथा फसल प्रभृति तैयार होती हों; और पड़ती उस जमीनको कहते हैं; जो बहुत दिनोंसे बिना जीते बीये पड़ी है। बस्ती जमीनके आस पास आवादी जमीन ही ज्यादा दिखाई देती है; यदि कहीं पड़तीभूमि दीखती है, तो वह कृषिके अनुयोगी क्षर वा मरुभूमि सदृश समझ कर छोड़ी रहती है अथवा घोर जङ्गलोंसे युक्त होकर पड़ी रहती है। इसलिये उसे खेतीके उपयोगी करनेमें बहुत खर्च लगनेसे कोई बुद्धिमान पुरुष उसमें धनव्यय करना उचित नहीं समझते। डीही जमीनको तोड़कर क्या कोई विज्ञपुरुष खेत नहीं बनाते? इस विषयमें पाठकोंकी अधिक समझाने की आवश्यकता नहीं समझते हैं। बहुतरे स्थानमें पहिले जहां शहर नगर थे, वे कालक्रमसे धूलमें मिलगये, ऐसे ही स्थानकी जमीनको डीही जमीन कहते हैं। राजविप्लव वा राजधानी बदलनेके समय भी कभी कभी अनेक ग्राम नगर मटियामिट होगये, ऐसेही जमीनको डीही जमीन कहते हैं।

पहिले कह आये हैं कि, घनी बस्तीके आसपास खेतीके उपयुक्त पड़ती जमीन प्राय नहीं दीखती। पर ऐसी जमीन आसाम देशमें अधिक दिखाई देती है। रङ्गपुर जिलाके अगाड़ी आसाम प्रदेशमें प्रवेश करते ही ब्रह्मपुत्र नदीके दोनों किनारे केवल बंन जङ्गल ही दीखता है। वहां कोसोंतक जिधर नजर उठाकर देखिये, न कहीं ग्राम है। न कहीं एकाध कुंटी ही है, न कहीं वहां मनुष्य और न आकाशमें पक्षी ही दीखते हैं। कहीं शस्यादि परिपूरित विस्तीर्ण भूमिभाग दीखता है और बीचमें कहीं घनी बस्तीयुक्त जनपद दिखाई

देता है । दूसरी ओर पशु पक्षी और मनुष्य रहित हजारों बीघेकी जङ्गल अथवा पहाड़ोंकी ओणी दीखती है । यह सब पड़ती जमीन बहुत दिनोंसे विना जोते बोधे पड़ी है, उसमें स्वभाविक बहुतसे वृक्ष स्वयं उत्पन्न होकर क्रमसे उसीमें नष्ट होजाते हैं ; इसी हेतु इस पड़ती जमीनकी उपजाऊशक्ति घटने नहीं पाती । बल्कि जितनी दफे वृक्षादि उत्पन्न होकर स्वयं नष्ट होते हैं, उतनीही उस जमीनकी उर्वराशक्ति और ज्यादा बढ़ती है । धुवड़ीसे लगाय आसामके शेष कालापाहाड़ तक देखिये तो वहांकी जमीनको सुवर्ण-प्रभवा कहियेगा ; पर ऐसा होनेसे ही क्या होता है । वहां मनुष्य कहां हैं, जो कृषि करें ! बीच बीचमें जिन स्थानोंमें दो चार घरकी बस्ती है, उन्हींके समीप दस बीस बीघेकी कृषि दीखती है । इस जमीनमें जो स्थानीय लोग थोड़ासा ही परिश्रम करते हैं, उतनेमेंही प्रचुर अन्न उत्पन्न होता है । भारतवासी परिश्रमी कृषि करनेवाले कृषिकार लोग यदि उस जमीनको पावें, तो उनकी अपेक्षा कईगुना ज्यादा अन्न उत्पन्न कर सकें, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।

साधारण आवादी समभूमिसे डीहीभूमि ज्यादा उर्वरा होती है । उसका सबब यह है कि उसमें जल निकल जानेकी व्यवस्था रहती है । ऐसी जमीन ज्यादा वर्षा वा अल्प बूढ़ासे डूब नहीं सकती । इसके सिवाय गृहस्थालीके परित्याग किये हुए उच्छिष्ट आदि बहुत दिनोंसे संचित रहनेसे इस जमीनकी उपजाऊशक्ति अधिक परिमाणसे बढ़ी रहती है । बहुत दिनोंसे इसमें कृषिकार्य न होनेसे इस जमीनके सारपदार्थ मिट्टीमें ही वर्तमान रहते हैं । जिस नियम से जङ्गल समूहकी जमीन स्वयं उर्वरा हो जाती है ; उसही भाँति इस डीही जमीनकी भी उर्वरताकी वृद्धि जानो । नीची डीही जमीनमें धान्य आदि फसलकी अपेक्षा तरकारी प्रभृति अच्छी तरह उत्पन्न होती है । डीही जमीनमें सरसोंकी फसल भी अच्छी होती

है । जो हो डीही जमीनमें नोनाचार सोराजल आदि अनेक पदार्थ उद्भिज्जके पोषणोपयोगी मौजूद रहते हैं, इस लिये ऐसी जमीनमें अच्छी फसल उत्पन्न हुआ करती है । इसी लिये डीही जमीन कृषि-कर्मके लिये बहुत उपयोगी समझी जाती है ।

आबादी जमीनकी पहिली अवस्थामें जिस परिमाणसे सार आदि पदार्थ मौजूद रहते हैं ; क्रमसे फसलोंके उत्पन्न करने पर उनमेंसे बहुतसा अंश घट जाता है, और उस घटे हुए अंशको फिर पूरा करनेके लिये उस जमीनमें खाद (सार) डालनेकी जरूरत होती है । देखिये, हमलोग जमीनमें बीज बोते हैं और उसके बदलेमें कितनी चीजें लिया करते हैं । फल बीज, पत्ती, शाखा, मूल प्रभृति बहुतसे पदार्थ हम उत्पन्न करते हैं—वे क्या हैं ! भूगर्भस्थित खनिज, उद्भिज्ज और भौतिक पदार्थोंके सिवाय अन्य कुछ भी नहीं हैं । विचारना चाहिये कि, एक बीघा जमीनसे यदि शस्य और उस शस्यके डांटा अर्थात् खड़ काट लिये जायं, तो उस जमीनका कितना सार अंश निकल जाता है ! और उस सार पदार्थको उस जमीनमें फिर स्थापित करना हो, तो उसमें कितना खाद (सार) डालना उचित है ? आबादी जमीनमें बहुत दिनोंसे फसलें उत्पन्न हो रही हैं ; उसकी उर्वरताशक्ति कहांसे सञ्चित होती है, उसे जानना जरूरी है ।

जमीनमें फसल पैदा करने पर जिसतरह एक तरफसे भूमिके बहुतसे सार अंश उस फसलके जरिये आकर्षित होकर खिच आते हैं ; दूसरी तरफ उसहीके द्वारा भूगर्भके नीचेके स्तरोंसे अनेक पदार्थ आकर्षित होकर ऊपरी स्तर पर परवर्ती फसलके लिये स्थिति करते हैं । इसके सिवाय वायुमंडलसे बहतेरे पदार्थ मिट्टीमें सञ्चारित हुआ करते हैं । मिट्टीके भीतर जो कुछ क्रिया सम्पादित होती है, उसके सम्बन्धमें सूर्य और वायुकी कार्यकारिता ही प्रधान है, इन दोनों के कार्य न सिवाय मिट्टी की पैदावार शक्ति संग्रहीत होना

किसी प्रकारसे भी सम्भव नहीं है । परीक्षा द्वारा स्पष्ट दीखता है, कि, जो मिट्टी कड़ी हो जाती है ; उसे कुदाल वा फावड़ेसे उल्टा देनेसे उसी समयमें ही उसके कार्य आरम्भ हो जाते हैं । किसी टव (गमले) में स्थित मिट्टीमें कोई वृक्षका पौधा रोपण किया जाय, और उसकी मिट्टी यदि दबकी कड़ी हो जावे, तो वह पौधा क्रमसे बलहीन वा निस्तेज हो जाता है । अगर उसकी मिट्टीको निराकर पोली कर दी जाय, तो थोड़े ही समयके बीच दीखेगा कि उस पौधे की अवस्था स्वास्थ्यसम्पन्न हुई है । इस विषयमें लोगोंकी दृष्टि बहुत थोड़ी रहती है, इसी लिये बहुत समय कृषि तथा बगोचेके कार्य सम्बन्धमें व्यर्थ मनोरथ होना होता है । कितने ही लोग समझते हैं कि, जलके अभावसे ही फसल तथा पौधे नष्ट हो जाते हैं, इसलिये प्रचुर परिमाणसे जल सींचना चाहिये । पर यह उन लोगोंकी भूल है, क्योंकि ज्यादा जल सींचनेसे भी फसलोंके पौधे नष्ट हो जाते हैं, इस लिये उचित रीतिसे जल सींचना चाहिये । कुछ दिनतक जल न सींचने पर भी पौधे नहीं नष्ट हो सकते—सुर्भा जा सकते हैं । जिस मिट्टीमें क्रिया नहीं है, उसमें बेशुमार जल सींचनेसे भी कुछ उपकार न हो कर उल्टी नुकसानकी हुआ करती है ।

मिट्टी पोली रहनेसे उसमें वायु और सूर्यकी किरण प्रवेश करके मिट्टीके भीतरस्थित उद्भिज्जोंके पोषणोपयोगी पदार्थोंको कार्यकारी किया करती है । इन्हीं कारणोंसे मिट्टीकी कार्यकारिता रक्षा होती है । कृषिकारोंको इस विषयमें विशेष दृष्टि रखनी चाहिये ।

कहना नहीं होगा कि, आवादी जमीन दिनोंदिन बलहीन हुई जाती है, लगातार फसल उत्पन्न करनेसे वह सहजमें ही निस्तेज हो जाती है,—इस बातको तो थोड़ी बुद्धिवाले लोग भी जान सकते हैं । जिस जमीनमेंसे जिस परिमाणसे फसल उत्पन्न की जाती है, यदि उसही परिमाणसे उस खेतमें फिर खाद छोड़ी

जमीन यानी खेत निस्तेज नहीं हो सकता । लेकिन हमारे देश वासी इस बातको बहुत कम समझते हैं । अंगरेजलोग जिस जमीनमें खेती करते हैं, उसकी उपजाऊशक्ति जल्द नहीं घटने पाती । जैसे कि नीलकी कटाई होनेपर सब नीलके पौधे गाड़ीमें लादकर कारखानेमें चले जाते हैं और नियम अनुसार नील तैयार होने पर जो कुछ नीलके पौधोंका बाकी अंश रहता है, वह फिर गाड़ीमें रखकर नीलके खेतमें डाल दिया जाता है । जिस जमीनसे जो फसल लीजाती है, उसका अंशही उस जमीनका खाद है, क्योंकि फसलके देह धारणके योग्य जो कुछ सामग्रीकी जरूरत थी, वह सब उसमें मौजूद रहती है । आसाममें जो धानकी खेती होती है, किसान लोग केवल मंजरी काट लेते हैं और बिचालीको योही खेतमें छोड़ देते हैं । इसी लिये वह बिचाली सड़के खेतमें खाद हो जाती है ; वहांके धानके खेत खूब उपजाऊ हैं । इसी तरह पहाड़ी देशोंमें भी करते हैं । मिट्टीके साथ खादका बहुत सम्बन्ध है । कहावत प्रसिद्ध है कि सार हीन जमीन और वत्सरहित गऊं समान है । अर्थात् बछड़ा सामने न रहनेसे गऊ अच्छीतरह दूध नहीं देती । उसी तरह खेतमें भी बिना सार (खाद) डाले इच्छानुसार फसल नहीं मिलती । जमीन (भूगर्भ) में एक आन्तरिक शक्ति है ; मिट्टी, जल, तेज, वायुके संयोगसे वह शक्ति प्रकाशित होती है । पदार्थविद्यामें जड़ और जड़के गुण सम्बन्धमें आकर्षण वियोजन, उत्क्षेपण, अधो-निमग्नन प्रभृति जिन विषयोंका वर्णन किया गया है, वे सब इस भूगर्भस्थ आन्तरिक शक्तिके ही कार्य हैं । यह शक्ति दृष्टिगोचर नहीं होती और न यन्त्रादिके द्वारा मृत्तिकादि चारों पदार्थोंसे पृथक् ही की जा सकती है ; यह कौनसी आश्चर्य्य वस्तु है, उसे सहजमें हृदयमें धारण नहीं किया जा सकता ; यथार्थमें यह शक्ति मनो बुद्धिके अगोचर है । इसकी गति प्रकृति कैसी है,

विचारमें कुछ पूरीतरहसे स्थिर नहीं किया जा सकता । भूगर्भमें अनेक स्थानोंमें व्याप्त होकर जो शक्ति स्थिर रहती है, वही आम परिवर्तनसे धीरे धीरे घनीभूत होकर यथाक्रमसे उद्भिज्जोंमें प्रवेश करती है, तब इसे उत्पादिका शक्ति कहते हैं । इस लिये इस शक्तिको जगतकी जीवनस्वरूपिणी कहना चाहिये । अनेकप्रकारकी परिवर्तन होने पर भी यह भूमिकी जैवन्तिकशक्ति नष्ट नहीं होती । पहले यह शक्ति भूमिमें रहती है ; अनन्तर भूमिसे उद्भिज्ज पदार्थोंमें, उद्भिज्जोंमें निरामिषभोजी जीवोंके शरीर और उनसे आमिषभोजी प्राणियोंके शरीरमें प्रविष्ट होती है । फिर कालक्रमसे प्राणियोंके नष्ट होने पर यह शक्ति भूगर्भमेंही विलीन हुआ करती है । इसही प्रकार इस विश्वव्यापिनी भूगर्भस्थ शक्तिके सहारे सृष्टिके प्राणियोंकी उत्पत्ति स्थिति और प्रलय होती हुई दीखती है, इस लिये इस शक्तिको प्रवाहरूपसे अनादि कह सकते हैं ; यह शक्ति क्रमसे घनीभूत होकर उद्भिज्जोंमें जाती और उनके द्वारा जीवशरीरमें सञ्चित हुआ करती है ; इसी लिये मिट्टीकी अपेक्षा सड़े गोबरमें और गोबरकी अपेक्षा हड्डीके चूर्णमें अधिक उत्पादिकाशक्ति रहती है । यह विश्वव्यापिनी शक्ति एक स्थलमें स्थित होकर निवास नहीं करती, यह कभी अचेतन पदार्थोंमें और कभी अचेतन पदार्थोंसे निकल कर उद्भिज्ज प्रभृतिमें और कभी उद्भिज्जोंसे निकलकर चेतन पदार्थोंमें विचरती रहती है । जैसे एक ओरसे उद्भिज्जपदार्थोंके द्वारा मिट्टीका तेज घट जाता है । उसी तरह उद्भिज्ज तथा प्राणियोंके शरीरमें सञ्चितशक्ति उनके जीवन के अन्तमें निकल कर फिर पृथिवीमें प्रवेश करके उसकी समता रक्षा करती है । इस लिये एकस्थानके उत्पन्न हुए शस्यादि यदि दूसरे देशोंमें न जायं तो क्रमसे आदान प्रदान होनेसे भूशक्तिकी समता-रक्षामें किसी प्रकारका रद्द बदल न होने पावे । पर इस देश के शस्योंकी क्रमसे विदेशमें रहानी होनेसे प्रतिदानके अभावसे दिनों-

दिन इस देशकी भूमि धीरे धीरे निस्तेज वा शक्तिहीन हुई जाती है । पहिले इस देश में जब बाहिरी बाणिज्यकी अधिकता न थी, तब इस देशके अन्नादि शस्य इसी देशमें रह जाते थे ; वह सब अन्न आदि प्राणियोंके द्वारा भक्षित होने पर अथवा अन्य किसी कारणसे ही हो, फिर उनका अंश उसी जमीनमें पड़कर भूमिकी उत्पादिका शक्ति की रक्षा करता था । किन्तु कालक्रमसे इस देशमें अंगरेजोंके आगमनसे बहिर्बाणिज्यकी ज्यादाती हुई है, जिससे प्रति वर्ष अधिकताके सहित इस देशके बहुतसे अन्न विदेशमें चले जाते हैं और उनके प्रतिदानके अभावसे धीरे धीरे भारतवर्षके जमीनकी उत्पादिका शक्ति क्रमसे घटी जाती है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । अन्नादिके पलटे में विदेशसे जो सब चीजें आती हैं, उनके बीच कांच, कागज, मद्य, छड़ी, घड़ी, गिल्टीकी चीजें, बस्त्र दियासलाई वा कलकी वस्तु ही प्रधान हैं । इन सब पदार्थोंमें भूमिके उत्पादिका शक्ति बढ़ानेका गुण रहना सम्भव नहीं है । इसीलिये यहांके शस्योंकी रफ्तानीसे जो भूमिकी उत्पादिका शक्ति घट रही है, विदेशीय आमदनीकी चीजोंसे उसका अभाव पूर्ण नहीं होता है । भारत वर्षमें जिसप्रकार अन्नादि विदेशमें रफ्तानी होनेसे भूमिकी उत्पादिका शक्ति क्रमसे घट रही है, उसी प्रकार अनावृष्टिसे पृथ्वीके उपजाऊ शक्तिका निरोध भी हुआ करता है । एकही समयमें ये दोनों आपत्ति इस भारतमें उपस्थित हैं, इसी निसिक्त अधिक परिश्रम और चेष्टा करने पर भी किसानलोग आशानुरूप अन्न आदि जमीनमेंसे नहीं उत्पन्न कर सकते हैं ।

बहुतेरे लोग अनावृष्टि और दुर्भिक्षको ही कृषिकी अवनतिके विषयमें प्रधान हेतु कहते हैं, पर हम उनके मतके सर्वथा पक्षपाती नहीं हैं । हमें दृढ़विश्वास है कि, भूमिकी शक्तिक्षय और भारतकी पूर्वप्रकृति परिवर्तन होनेसे ही ऐसी घटना उपस्थित हुई है, कि

पूर्णपरिष्कृत करने पर भी किसानोंकी जमीनमेंसे उचित फलप्राप्ति नहीं होती है । भूमिके शक्ति क्षयका वर्णन ऊपर कर आये हैं, अब प्रकृतिपरिवर्तनका वर्णन करते हैं । यह सब कोई जानते हैं कि, प्रकृति परिवर्तनशील है, जिधर दृष्टि की जाती है, उधर ही प्रकृतिपरिवर्तनके बहुतसे प्रमाण मिलते हैं । तब जन्मसे मरण पर्यन्त प्राणियों और उद्भिज्ज पदार्थोंकी अवस्थाको सब कोई देखते हैं, अचेतन पदार्थोंकी अवस्थाको उस तरह नहीं देख सकते । और दो चार दस वर्षमें वह मालूम भी नहीं हो सकता, तथापि अचेतन पदार्थ इस अपह्राय्य नियमके बाहिर नहीं हैं । भूमण्डल पर कोई वस्तु भी चिरकालतक स्थायी नहीं रहती ; ऐसे स्थलमें जो भारतकी बाहिरी प्रकृति सदा एक ही भावसे रहेगी, यह कभी भी सम्भव नहीं हो सकता । यथार्थमें भारतकी पूर्वप्रकृतिका बहुतसा अंश परिवर्तित हो गया है । हिमालय प्रभृतिके उपत्यका और अधित्यका की मिट्टी क्रमसे वर्षाके जलके साथ बहती हुई नीचेकी ओर आके तालाब नदी प्रभृति जलाशयोंको क्रमसे परिपूर्ण कर रही है । कितनेही बड़े बड़े तालाब प्रभृति एकवारगी लुप्त होगये, उनके चिन्ह अब भी अनेक स्थानोंमें जहां तहां दिखाई देते हैं । इसी प्रकार जो पृथिवी पर कितनी जगह कितना उलट फेर होगया, उसका निर्णय कौन कर सकता है ? ब्रह्मपुत्र, गंगा, सिन्धु आदि नदियां तथा उनकी शाखा उपनदियां पहिले कितनी गहरी थीं, और अब उनकी क्या गहराई है ! कालक्रमसे इसही प्रकार भारतकी प्रकृति बदल रही है, किसकी सामर्थ्य है कि, उस गतिको रोक सके ? भारतकी जिस भूम्यांशमें सूर्यकिरणोंका कभी स्पर्श तक न होता था, अब वहांकी भूमि सदा सूर्यका उत्ताप सह रही है । जो भारत सममण्डलमें परिगणित था, वह अब क्रमसे ग्रीष्ममण्डलमें परिगणित होनेके लिये स्वभाविक प्रकृतिके आकर्षणसे द्रुतवेगसे धावित होता है ; इसी

लिये धीरे धीरे भारतकी मिट्टी और वायु परिशुष्क होते दिखाई देते हैं । वायुके परिशुष्क होनेसे इस देशमें आंधी आदिकी प्रबल उत्पत्ति दिखाई देती है । यह निश्चित है कि ! किसी कारण विशेषसे किसी स्थलके तपायमान होनेसे वहांका वायु फूलकर ऊपरकी ओर उठता है और चारों ओरसे वायुमण्डल आन्दोलित होकर उस स्थानको पूरण करनेकी चेष्टा करता है ; बेर बेर वायु की ऐसी चेष्टासे आंधी तूफान उत्पन्न होता है । भारतवर्षके जमीनकी प्रकृति-परिवर्तित होनेसे केवल वायुकी परिशुष्कता ही नहीं हुई बल्कि इससे कृषिकार्यके सम्बन्धमें भी बहुत ही हानि हो रही है । भाफका परिमाण कम हो जानेपर बादलोंमें प्रकृति-विकार होनेसे अनावृष्टिकी उत्पत्ति हुई । पहिले पहाड़ीप्रदेश सम-भूमि और समुद्रसे प्रायः समपरिमाणसे भाफ निकलकर बादलोंके अवयवोंको परिपूर्ण करती थी, उससे अनुकूल वर्षा होती थी । अब पहाड़ी भूमि जङ्गलोंके कट जानेसे सूर्यके उत्तापसे सूख कर भाफ छोड़नेमें असमर्थ होगई है तथा उसके प्रकृतिमें बहुत कुछ परिवर्तन होगया है ; पर समुद्री भाफमें बहुत कम इतरविशेष हुआ है । लेकिन ऊपर कहे तीनों प्रदेशोंसे जितनी भाफ उठती थी, उसकी अपेक्षा समुद्री भाफ तृतीयांशसे ज्यादा न होगी । स्थूल हिसाबसे सोलहवें भागमेंसे इस समय दस अंशसे अधिक भाफ नहीं उठती है । भाफही वर्षाकी समवायी कारण है, भाफके अभावसे जलकी वृष्टि कदापि नहीं हो सकती, उसके ऊपर वायु, सूर्यकी धूप, और शैत्यके सम्बन्धमें भी रदबदल हुआ है । भाफका परिमाण घटजानेसे क्रमसे तापकी ज्यादाती प्रभृति कारणोंसे सुवृष्टि दूर होकर अनावृष्टिकी उत्पत्ति हुई है । पहिले जिस तरह बादलोंसे वर्षा होती थी, उस प्रकार अब नियमित रीतिसे वृष्टिका होना नहीं दिखाई देता है । इसी तरह क्रमसे जलवृष्टि लुप्त हुई जाती है । जब

अधिकांश वर्षमें अनावृष्टि नहीं होती, तो उस समय विमृष्टल वर्षा हुआ करती है। इस अनावृष्टि के प्रभावसे भारतवर्ष की भूमि की उत्पादिकाशक्ति रुक जाने तथा, प्रकृति के परिवर्तन होने और विदेश में भारतवर्षीय शस्यो के रफ्तानी होने और उसके प्रदिदान की सामग्री पुनर्वार प्रत्यार्पण न करने से ही दिनोंदिन यहां की जमीन की उपजाऊ शक्ति घट रही है और इस ही कारणसे यहां के कृषकों की दिनोंदिन बहुत शोचनीय दशा हो रही है। भारत की प्रकृति परिवर्तन से यहां वालों को जलकष्ट और अन्नकष्ट हो रहा है। जल के अभाव से ग्रामीण लोग प्रतिवर्ष अत्यन्त दीन हीन और मनमलिन होकर व्याकुल हो जाते हैं।

वर्तमान में जिस प्रकार प्रकृति-विभ्राट उपस्थित है, ऐसी अवस्था में जगह जगह जल के संस्थान अर्थात् कूआं तालाब आदि जलाशयों के बिना प्रतिष्ठित किये केवल दैव के आसरे भरोसे आकाश की तरफ देखते रहने से कृषिकार्य की पूरी रीति से तरकी नहीं हो सकती और बिना कृषिकर्म की उत्पत्ति के भारतवासी लोगों को स्वतन्त्र रीति से सुख प्राप्त होना दुर्लभ है।

जल मिट्टी की उत्पादिका शक्तिको प्रकाशित करता है। जल के अभाव से भूमि की उत्पादिका शक्ति एकबारगी निरुद्ध हुआ करती है ; इस लिये फसल वाले खेतों में जल सींचना बहुत ही आवश्यक है। कूप के पानी से फसलों को सींचने से विशेष फायदा दीखता है। जल के अभाव से उद्भिज्ज-पदार्थ की उत्पत्ति होनी सम्भव नहीं है। मिट्टी यदि हल्के से ज्यादा उर्वरा हो तो भी जल की सहायके बिना उसकी उर्वरताशक्ति किसी काम में नहीं आती। खाद (सार) के बीच जो अधिक परिमाण से उत्पादिका शक्ति वर्तमान रहती है, वह भी जल की सहायता के बिना अपना बल प्रकाश नहीं कर सकती। इस स्थल में पृथिवी को माता, जल को पिता,

सूर्योत्ताप को परिवर्द्धक और वायुको जीवन स्वरूप कहना चाहिये । इन चारों पदार्थों के सामञ्जस-संयोगसे जो प्रक्रिया होती है, उसीका नाम उत्पादिका शक्ति है । सृष्टितत्त्वमें जल, वायु, सूर्यकी धूप और मिट्टी, इन सबकी समान उपयोगिता देखी जाती है । पर पृथिवीमें प्रायः सब ठौर मिट्टी, सूर्य की धूप और वायुका परस्पर जैसा संयोग है, (पृथिवीमें एक भाग स्थल और तीनभाग जल होने परभी) उस प्रकारसे सर्वत्र जलका संयोग वर्तमान नहीं है । लेकिन उद्भिज्ज वा फसलों की उत्पत्ति तथा सम्पूर्ण अवयव-प्राप्ति सम्बन्धमें जिस तरह मिट्टी, ताप और वायुकी जरूरत रहती है, उसी भांति जलकी भी आवश्यकता जानो । * जलका अभाव वा न्यूनता होनेसे कोई उद्भिज्ज भी रिष्टपुष्ट होकर बढ़ नहीं सकते, तथा जलके बिना कोई उद्भिज्ज वा प्राणी मात्र कदापि जीवित नहीं रह सकते । जलके अभावसे पृथिवीके बहुतेरे अंश मरुभूमिमें परिणत होगये हैं, और किसी किसी अंशमें नदियोंके द्वारा तथा कहीं वृष्टिके जलसे फल-फूलयुक्त बहुतेरे खेत तथा बारी बगीचे लहलहा रहे हैं, जिस देशमें नदीके जलकी सहायसे अन्नादि उत्पन्न होते हैं, उसे “नदीमातृक” देश कहते हैं । और जिस स्थलमें केवल वृष्टिके जलसे ही शस्यादि उत्पन्न होते हैं, उसे “देवमातृक” देश कहते हैं । देवमातृक देशमें प्रकृति देवी सानुकूल होकर जल संयोगका भार स्वयं ग्रहण किया करती है । पर यदि कभी प्रयोजनके सुताबिक जलकी वर्षा न हो, तो किसानोंको उचित है कि, कूआं तालाब प्रभृतिके जलसे खेतके उद्भिज्जोंको सींचा करें, क्योंकि जलकी अल्पता वा अभाव होनेसे कृषिकार्यमें आशानुरूप फल नहीं मिलता उत्पत्तिविषयमें आकाशादि पञ्चमहाभूतोंकी समान-उपयोगिता

* जलकी सिंचाईका वर्णन हमारी बनाई हुई कृषिशिक्षा पुस्तकमें देखो । कौमत् १७ कृ आने ।

देखी जाती है ; पर इसके बीच जलही उक्त चारों पदार्थों का योग-सामञ्जस किया करता है । जलके बिना जगतके बीच कोई प्राणी वा उद्भिज्ज अधिक समयतक जीवित नहीं रह सकते ; इसी लिये पण्डितोंने जलको जगतका जीवन स्वरूप कहा है । जलके बिना भयङ्कर मरुभूमिने कैसा रूप धारण किया है,—वह किसीको अविदित नहीं है ।

जगतका जीवन स्वरूप होने पर भी स्वभाविक अवस्थामें रहकर जल उद्भिज्ज आदि प्राणियोंका पूरी तरहसे पोषण नहीं कर सकता, पर अन्यान्य पदार्थोंके साथ मिल कर वही जल रसमें परिणत होकर उद्भिजादिके पोषणोपयोगी हुआ करता है ; इसही लिये प्राचीन शास्त्रकारोंने जलका गुण “रस” निरूपण किया है । यह रस छ भागमें विभक्त है । जैसे—मीठा, खारा, खट्टा, तीता, कड़ुआ और कपैला । जगतके बीच प्रत्येक उद्भिज्ज तथा प्राणीमात्रके शरीरमें छहों रसोंका संयोग है ; तब जाति विशेषमें कहीं ज्यादा और कहीं थोड़ा प्रभेद है । पर चाहे थोड़ा हो, वा ज्यादा ही होवे, इन षट् रसोंके संयोगके बिना उद्भिजों वा प्राणियोंका स्वास्थ्य रक्षित नहीं होता ; इस लिये षट् रसोंके बीच किसी एकका अभाव होनेसे उद्भिजादिका स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता ; इस हेतु उद्भिज तथा प्राणिमात्रके देह धारणके लिये षट् रसोंका संयोग रहना उचित है । इन षट् रसोंके बीच खारा और मीठा, ये दो रस प्रधान माने जाते हैं । प्रतिदिन भोजनके समय लोग इन रसोंका अनुभव किया करते हैं । खारा (नमक) के बिना कोई व्यञ्जन भी रुचिकर नहीं होते । जैसे प्राणियोंके लिये इन रसोंकी उपयोगिता है, उसी प्रकार उद्भिजोंके सम्बन्धमें भी जानी । जैसे हमलोगोंके खाद्यमें थोड़ासा नमक न देनेसे भोजन रुचिकर वा तृप्तिकारक नहीं होता, वैसेही उद्भिजादिके खाद्य मिट्टी प्रभृतिके साथ भी थोड़ासा नमकका अंश

रहना बहुतही जरूरी है । यद्यपि नमक हमलोगोंकी प्रिय वस्तु है, पर बिना अन्य किसी वस्तुके साथ मिलाये केवल नमककोही अधिक परिमाणसे हमलोग नहीं खासकते ; और यदि किसी खाद्यवस्तुके साथ एक कटाककी जगह आधपाव नमक मिला दें, तो वह व्यञ्जन नमककी ज्यादातीसे विषवत् हो जाता है, और उसे खाया नहीं जा सकता ; इसी प्रकार मिट्टीमें भी यदि अधिक परिमाणसे नमकका अंश रहे, तो उद्भिजादिकी हानि हुआ करती है ; बल्कि ऐसी जमीनमें उद्भिजोंका उत्पन्न होना भी मुश्किल है । जिस जमीनमें नमक का भाग बहुत बढ़ जाता है, वह भूमि प्राय ऊपर हो जाती है, और उसमें उद्भिजादिकोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती ।

एक व्यञ्जन यदि नमककी ज्यादातीसे खराब हो जाय, तो हम लोगोंके लिये उसके अतिरिक्त भोजनकी अन्य दूसरी उपाय है ; पर उद्भिज आदिके लिये दूसरा तरीका नहीं है । क्योंकि वृक्षादि उद्भिजोंके मूल जमीनमें जितनी दूरीतक व्याप्त रहते हैं, उतनी दूरक मिट्टीमेंसेही वे अपने आहार्रीय पदार्थोंको खींचते हैं । इस लिये उनके मूलतलकी मिट्टी यदि नमकके संयोगसे अत्यन्त खारी हो, तो उद्भिज प्रभृतिकी बहुतही नुकसानी हुआ करती है ।

बुद्धिमान पुरुषको उचित है कि, फसल आदिकी प्रकृतिके अनुसार खाद डालकर मिट्टीको दुरुस्त कर लेवे । तरह तरहके फसलोंकी प्रकृति सुतान्त्रिक यथा योग्य खेतकी मिट्टीको ठीक करना चाहिये । क्योंकि जमीनकी मिट्टीको यथोचित फसलोंके उपयोगी बिना बगाये आशादुरूप अन्नादि प्राप्तिकी पूरी आशा नहीं रहती । जो लोग अन्नादिकी प्रकृतिके बमूजिव भूमिकी मिट्टीको दुरुस्त करके खेती किया करते हैं, वे यथायोग्य समयमें उचित फावदा उठाते हैं ; और इसके विपरीत खेती करनेवालोंको लाभके बदले उलटी नुकसानी हुआ करती है ।



नमकके अंशका विशेष प्रयोजन रहने पर भी उझिजादि अपने आहारीय पदार्थों को ग्रहण नहीं कर सकते । इसलिये वृक्ष प्रभृति उझिज तथा फसलोंके लिये, लवणांश की अल्पता वा अभाव जैसा हानिकारक है; उसकी अधिकता भी उनके लिये वैसीही अनिष्टकारी है; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।

—०—

मिट्टीके भेद ।

जिस तरह लाल, पीला और नीला ये तीनों मूल रङ्ग आपसमें मिलकर अनेक रङ्ग उत्पन्न हुआ करते हैं । उसी भांति एटल बालू और पीली इन तीनों मूल मिट्टीके मेलसे तरह तरहकी मिट्टीकी उत्पत्ति हुआ करती है । उपत्यका आदि सब प्रदेशोंकी जमीनमें कोई न कोई मिट्टी देखी जाती है । उनके नाम और लक्षण क्रमसे नीचे प्रकाशित करते हैं ।

—०—

एटल मिट्टी ।

एटल मिट्टी स्वभाविक अत्यन्त कड़ी होती है । जितनी प्रकारकी मिट्टी है ; कोई भी एटल मिट्टीके समान कड़ी नहीं है । यह एक तरहकी दुर्भेद्य चिकनी मिट्टी है ; इसकी योगाकर्षण शक्ति बहुतही प्रबल है । यह मिट्टी जलमें भीगनेसे कुछ गरम तथा चिकनी भोमके मानिन्द हो जाती है, इसलिये बहुतेरे लोग इसे चिकनी मिट्टी कहा करते हैं ।

यह पानीके मेलसे जल्दी नहीं गलती, स्रोतके जलके वेगसे अधिक काटकर वह भी नहीं सकती; इसके परमाणु बहुतही मिहीन और आपसमें संलिस रहते हैं, इसीसे अन्यान्य मिट्टीकी अपेक्षा

यह एटल मिट्टी ज्यादा परिमाणसे जलशोषण नहीं कर सकती, और थोड़ी दृष्टिसे भी पूरी तरह भीगती नहीं। पर थोड़ेही पानी से इसका ऊपरका अंश कीचड़मयी होजाता है, और थोड़ेही धूपमें सूख कर कड़ा भी हो जाता है। सूखी हुई चिकनी मिट्टी सहजमें खोदी नहीं जाती।

किसी रस्तेमें एटल मिट्टी रहनेसे वर्षाकालमें ऐसा कीचड़ होता है कि, मनुष्य और पशु आदि जन्तुओंका आना जाना कठिन होजाता है। एटल मिट्टीका कीचड़ शरीरमें लगनेसे जलदी छूटता नहीं।

यह मिट्टी कृषिकार्यके लिये बहुत उपयोगी है। इस जमीनको खेती करने योग्य बनानेमें कुछ कष्ट होता है; पर एकबेर तकलीफ सहकर खेतको बोन योग्य कर लेनेसे पीछे थोड़ीही मिहनतसे ही इसमें अच्छी खेती हुआ करती है। इस मिट्टीमें जैसी फसल पैदा होती है; वैसी दूसरी कोई मिट्टीमें नहीं होती। एटल मिट्टीमें रोपे हुए वृक्ष बहुत तेजस्वी होते हैं और फसल सुन्दर तथा पुष्टदाना युक्त हुआ करती है। इस एटलमिट्टीके भी अनेक भेद हैं; पर हरएक प्रकारकी एटलमिट्टीकी उपजाऊशक्ति बहुतही प्रशंसनीय है। बहुत जगह यह मिट्टी बालूसे मिलकर खूब उर्वरा होगई है; कहीं कहीं कड़ूरमिश्रित होनेसे खराब होगई है; वर्णभेदसे एटलमिट्टी में जातिभेद हुआ करता है, और प्रत्येक एटलमिट्टीके पृथक् पृथक् नाम हैं, नीचे क्रमसे प्रकाशित किये जाते हैं।

—०—

हेडमो एटल ।

हेडमो एटलमिट्टी स्वाभाविक काली होती है। स्थानविशेषमें एक फूट वा दो फूट मात्र गहरे स्थानसे जितनी दूरीतक नीचे खोदा

जाय, उतनी दूरीतक छोटे बड़े शिलाखण्डकी भांति मृतपिण्ड बाहिर हुआ करते हैं । इसमें कङ्कर वा बालूका अंश नहीं दिखाई देता । हेड़मो एटेलमिट्टी सूखनेपर हड्डीके मानिन्द कड़ी होती है और जलसे भीगने पर खूब चिकनी और लसदार होजाती है ; इसके और सब लक्षण १ नम्बरकी एटेलमिट्टीके समानही जानना चाहिये इसमें धान गेहूं तथा अन्यान्य रन्वित्र फसलें अच्छी होती हैं । यह एकवेर दुरुस्त कर लेनेसे दो बेर जोतनेसेही इस का खेत खेतीके योग्य तैयार हो जाता है । कृषिकार्यके लिये यह एटेलमिट्टी बहुत सुविधाजनक समझी जाती है ; इसी लिये इसे कभी कभी काली मिट्टी भी कहते हैं, यह स्वभाविक बहुत उर्वरा होती है और बिना खाद डाले भी इस मिट्टीका जोर प्रायः सदा सर्वदा बना रहता है, काले रङ्गकी चीजें अधिक ताप आकर्षण करती हैं, इसी लिये यह काली हेड़मो एटेलमिट्टी इतनी उर्वरा हुई है । एटेलमिट्टी जहां तहां कम ज्यादा दिखाई देती है ; लेकिन ऐसी मिट्टी हिन्दुस्तानके मालवा प्रदेशमें बहुत ज्यादा है ।

—०—

खोषका एटेलमिट्टी ।

रूप रङ्गमें खोषका-एटेलमिट्टी हेड़मो एटेलमिट्टीके समानही होती है । लेकिन उसके समान ज्यादा कालेरङ्गकी नहीं होती इस मिट्टीका रङ्ग कुछ धूसरवर्णका होता है, इस लिये बहुतेरेलोग इसे चाही बांकर मिट्टी भी कहा करते हैं । इसकी भी योगाकर्षणशक्ति ज्यादा प्रबल होती है, इस लिये ऊपर नीचे समभावसे मिली रहती है । खोषका एटेल मिट्टी भी बहुत कड़ी होती है ; थोड़ीसी सूरज की धूप लगनेसेही यह बहुत कड़ी होजाती है । यह मिट्टी ऊंचे मैदानमें अधिक परिमाणसे दीखती है, यह प्रायः तलछेत्ररूपसे बहुत

जगह पड़ती रहती है। लेकिन इसकी उपजाऊशक्ति कम नहीं है। यथायोग्य रीतिसे जलप्राप्त होनेसे इसमें भी भली भांति अन्नादि उत्पन्न होते हैं। यह भी कृषिकार्यके लिये ज्यादा खराब नहीं है।

इसकी आबादीमें ज्यादा परिश्रम होता है, थोड़ी मिहनतसे इस में अच्छी तरह फसल नहीं पैदा होती, इसका खाकके समान रङ्ग होनेसे इसे खाकी एटेल मिट्टी भी कहते हैं।

दुधिया एटेल मिट्टी ।

दुधिया एटेल मिट्टीमें थोड़ी चिकनाहट होती है, इसका रङ्ग कुछ सफेदीयुक्त होता है, अन्यान्य एटेल मिट्टियोंकी अपेक्षा यह कुछ नरम और सख्खी होती है; इसकी शोषकता शक्ति अधिक कमजोर नहीं है। थोड़े जलसे ही यह ऊपर नीचे तक भीग जा सकती है। यह दुधिया एटेल मिट्टी कृषिकार्यके लिये विशेष उपयोगी समझी जाती है। इसकी उर्वरताशक्ति को अद्वितीय कहनेमें भी अत्युक्ति नहीं होती। अन्यान्य एटेल मिट्टीवाले खेतों में कटहल हल्दी आदि अनेक प्रकारके उद्भिज अच्छी तरह उत्पन्न नहीं होते, लेकिन इस मिट्टीमें थोड़ी मिहनतसे ही सब तरहकी फसलें तथा वृक्षादि उत्पन्न हो सकते हैं।

चूना एटेल मिट्टी ।

चूना-एटेलमिट्टी बहुत कड़ी होती है, इसका कोई एक निर्दिष्ट रूप रङ्ग नहीं है। यह स्थान विशेषमें सफेद पीली, नीली, लाल और भूरी इत्यादि विविध रङ्गकी दिखाई देती है। इसमें

किसी किसी जगहकी मिट्टी इतनी सफेद है कि, जलमें घोसलनेसे प्राय दुबई की तरह देखी जाती है और लाल रङ्गकी मिट्टीको देखने से सहसा गेरूका भ्रम होता है ।

अन्यान्य मिट्टीकी अपेक्षा इसकी आकृति प्रकृति सम्पूर्ण भावसे पृथक् है ; यह जलमें भिगानेसे चिकनी तथा लसदार होती है, वैसीही सूखने पर कड़ी और कर्कश हुआ करती है ; इसकी योगाकर्षणशक्ति प्रबल हुआ करती है । सचराचर इसे पथरिया मिट्टी कहके उल्लेख किया जा सकता है । इसके परमाणु बहुतही संलिप्त रहते हैं, इसी लिये इसकी शोषकता शक्ति कम है । चूना एटेल् मिट्टी एक बेर जलसे भीगने पर फिर अधिक परिमाणसे जल आकर्षण नहीं करती ।

यह मिट्टी कङ्कर मिली हुई है, तभी इसकी उपजाऊशक्ति बहुत कम नहीं है ; लेकिन इसमें प्रतिवर्ष खाद डालना चाहिये, क्योंकि बिना खाद डाले, इसमें अन्नादि फसलें अच्छी तरह पैदा नहीं होती । इस मिट्टीमें कटहल केला प्रभृति कई एक उद्भिज्ज अच्छी प्रकार सतेज नहीं होते ; लेकिन तूत और शाली धान उत्पन्न करनेके लिये यह बहुत प्रसिद्ध है । इस मिट्टीके बीच कहीं कहीं पुराने चूनाकी विद्यमानता देखी जाती है ।

—०—

लाल मिट्टी ।

शुद्ध एटेल्मिट्टी लाल रङ्गकी होनेपर उसे लालमिट्टी कहते हैं ; भारतके अनेक अनेक स्थानों तथा पहाड़ोंके उपत्यका अधित्यकामें यह मिट्टी देखी जाती है ; कभी कभी किसी किसी नदी गर्भमें भी यह मिट्टी देखी गई है ।

लाल मिट्टीमें योगाकर्षणशक्ति बहुत है, कुम्हारलोग इसके जरिये मिट्टीके वर्तनोंमें लाल रङ्गके चिन्ह किया करते हैं। लेकिन उपत्यका और अधित्यकाकी मिट्टीमें योगाकर्षण क्रिया कुछ शिथिल दिखाई देती है और इसके साथ प्रचुर परिमाणसे शिलाखण्ड मिले रहते हैं। यह मिट्टी कम उपजाऊ नहीं है, इसमें प्रायः सब तरह के उद्भिज्ज उत्पन्न हुआ करते हैं।

—०—

भंभरा एटेलमिट्टी ।

ऊपर कही सब तरहकी एटेलमिट्टीमें कुछ बालूका अंश रहनेसे उसे भंभरा एटेल मिट्टी कहते हैं।

भंभरा एटेल मिट्टी सब जगह एकही भावयुक्त नहीं है, बालूके अंशके सुताविक इसकी उपजाऊशक्तिमें भी तारतम्य हुआ करता है।

एटेल मिट्टीमें जितने तरहके रङ्ग हैं, उन सबमें ही भंभरा एटेल मिट्टीका होना सम्भव है, और बालूके वर्णानुक्रमसे भी इसके वर्णकी विभिन्नता होती है। घोर नील वर्णसे लगाय निर्मल सफेद रङ्ग प्रथ्यन्त और पीला लाल इत्यादि सब रङ्गकी मिट्टीमें ही भंभरा एटेल मिट्टी दिखाई देती है। बालू का मेल रहनेसे स्वभाविक एटेल मिट्टीकी अपेक्षा यह मिट्टी अधिक उपजाऊ हुआ करती है।

—०—

पलमिट्टी

धूसर वर्ण (भूरी)सूचिकाण प्रायः बालूकी तरह एक प्रकारकी मिट्टी को “पलि” मिट्टी कहा करते हैं। बालू मिट्टीसे ज्यादा चिकनी होने पर भी उसके छोटे छोटे अंश कड़े और परस्पर विच्छिन्न हुआ करते हैं; कदापि संलिस नहीं होते, लेकिन पलमिट्टी ऐसी नहीं होती, — यह एटेल मिट्टीके समान संलिस तथा लसदार हुआ करती है।

पलि मिट्टीमें योगाकर्षण शक्ति बहुत थोड़ी है, इस लिये यह स्वभाविक कोमल और सख्खिद्र होती है। इसके समान सुकोमल मिट्टी दूसरी नहीं होती। यह मिट्टी जलके स्पर्श मात्रसे ही गल जाती है और धूपमें ज्यादा शुष्क होने पर भी एटेल मिट्टीके समान कड़ी नहीं होती। लेकिन इसमेंकी घास तृण आदि जलदी साफ नहीं होती, इसलिये इसे ज्यादा जोतनेकी जरूरत रहती है। इसमें बहुत शोषकताशक्ति है। वर्षाका जल पड़तेही यह मिट्टी भूगर्भमें अन्तर्हित होजाती है।

इस पली * मृतिकामें सब तरहके उद्भिज्ज उत्पन्न होते हैं ; विशेष करके इस मृतिकामें जैसेवृक्षजातीय उद्भिज्ज अच्छे और तेजस्वी होते हैं, वैसे दूसरे अन्य किसी मृतिकामें पैदा होना सम्भव नहीं है। आम, कटहल, हलदी गोल आलू प्रभृति उत्पन्न करनेके लिये पलिमृतिका बहुत ही प्रसिद्ध है, पलिमृतिकाकी उपजाऊशक्ति कुछ घटिया है। किसी जगह शस्यादिके न पैदा होने पर भी इस पली मिट्टीवाली जमीनमें कुछ न कुछ अवश्य ही उत्पन्न होता है।

—०—

पन्ता मिट्टी ।

पन्ता मिट्टीके अवयव ठीक पली मिट्टीके समान होते हैं। केवल इतनी विभिन्नता है कि, इसमें एक आश्चर्य्य गुण है, — इस

* जिस स्थलमें पलिमृतिकाके ज्यादा खेत हैं, वहां प्राचीनकाल की विलुप्त नदीके चिन्ह देखे जाते हैं ; इससे मालुम होता है कि, नदीके स्रोत जलके साथ बहकर आर्द्र ह्रुर्द्र अच्छी कोमलमृतिका “पलि” रूपसे परिणत होकर उन सब खेतोंकी उत्पत्ति हुई है। नदीकी पली मृतिका तथा प्राचीनकालकी पलीमृतिका देखनेमें प्रायः एकही समान हैं, कुछ भी विभिन्नता नहीं है।

मिट्टीमें सूर्यकिरण पड़तेही चारों ओर फैल जाती हैं, ताप वियोजन शक्तिके अभावसे यह मिट्टी सदा सर्वदा सरस रहती है। इसमें पानीका हिस्सा हर वक्त मौजूद रहता है, इसी लिये इसको पन्ता मिट्टी कहते हैं।

पन्ता मिट्टीमें बालूका मेल रहनेसे उसे बलुई; पन्ता कहते हैं, बालूका मेल न रहे तो उसे “पलिपन्ता” मिट्टी कहते हैं, और कभी २ यह रसपली नामसे भी पुकारी जाती है, यह मिट्टी कम उपजाऊ नहीं है, इसमें अनेक तरहके उद्भिज उत्पन्न हुआकरते हैं। “पन्ता मिट्टी”में पैदा हुए वृक्ष वगैरः बड़े तेजस्वी होते हैं। ज्यादा वृष्टि होनेसे इसमें धान्य आदि औषधी बाचक उद्भिज अच्छी तरह उत्पन्न नहीं होसकते। पन्ता मिट्टीके खेतमें बारही महीने हल चलाया जा सकता है।

बालुई मिट्टी ।

बालू अश्वक के चूराके समान चमकदार और बहुत पतली होती है, कहीं २ इसके छोटे दाने होते हैं; और कहीं बड़े दाने भी दिखाई देते हैं। बालूके दाने कांचके चूराके समान कड़े होते हैं। इसके छोटे छोटे दाने परस्पर अलग अलग रहते हैं, कदापि संलिप्त नहीं होते। बालूको जल आदि किसी पदार्थके साथ पूरी तरहसे मिलाया नहीं जा सकता। बालू जिस जगहमें जिस मिट्टी के साथ मिली रहती है सर्व्वत्रही वह अपने अवयवोंकी रक्षा करने में समर्थ है, बालूमें पानीकी बूंद पड़तेही शोषित हो जाती है। बालूके कण बड़े हो कर्कश होते हैं; इसलिये योगाकर्षण शक्तिके अभावसे थोड़ेसे जलके स्रोतके धक्के और वायुके आघातके प्रभावसे

बालू अपने स्थानसे गिर पड़ती है, इसमें उत्पादिका शक्ति नहीं है तब जलके निकट रहनेसे इसमें कोई कोई उद्भिज उत्पन्न हो सकते हैं ।

बालू स्वाभाविक तापको आकर्षण करनेवाली है । इसलिये सूरज की धूप लगतेही वह आगकी चिनगारी की तरह तपायमान होती है । यह बालू बहुत दूर तक फैल जानेसे मरुभूमि कही जाती है । थोड़ीसी रहने पर बालू नामसे प्रसिद्ध होती है । अन्यान्य मृत्तिकाके साथ बालूका कुछ अंश मिला रहनेसे उनके अलग अलग नाम हुआ करते हैं ; जैसे बालुई मृत्तिका इत्यादि ।

बालुई-मृत्तिकामें उत्पादिकाशक्तिका बहुत अभाव नहीं होता । इसमें अनेक तरहके उद्भिज पैदा हो सकते हैं ; तथापि बालुई मृत्तिका को उर्वरा मिट्टी नहीं कह सकते ।

धीरे धीरे जलकी वर्षा होनेसे इसमें भी अन्न आदि पैदा हो सकते हैं । लेकिन ज्यादा वर्षा होने पर इसमेंकी फसलें गिर पड़ती हैं, क्योंकि प्रबल वृष्टिसे इस मृत्तिकाके ऊपरके सारका अंश बह जाता है, इसी लिये उसमें औषधी आदि फसलें निःस्तोत्र होजाती हैं ।

—०—

लोना मिट्टी ।

पूर्वोक्त मिट्टियोंके बीच नमकका अंश (यवचार जान) रहनेसे उसे लोना मृत्तिका कहते हैं ।

लोना मृत्तिका पक्का मृत्तिकाकी तरह सर्वदा सरस रहती है । शुष्क होने पर भी दूरसे उसे भीगी हुई, मृत्तिकाके समान देखा जाता है । इसके लवणअंश (यवचार जान) भूमि पर धूलिकणोंके समान पड़े हुए दीखते हैं ; लोना-मृत्तिकाके द्वारा सीरा तैयार किया जाता है ।

केवल लोना मृत्तिकामें बीज अङ्कुरित होते हैं, पर शस्य अच्छी तरह नहीं हो सकते ।

—०—

प्रस्फुटित लोना ।

प्रस्फुटित लोना मृत्तिका स्वाभाविक पत्ती मृत्तिकाकी तरह धूसरवर्णकी दीखती है ; लेकिन जब लोना फूटने लगता है, तब वैसा भाव नहीं रहता, उस समय वह नमकके चूर्णकी तरह सफेद होजाती है । प्रस्फुटित लोना मृत्तिका बहुतही अनुपजाऊ है, इसमें कोई उद्भिज्ज अच्छी तरह पैदा नहीं होते । प्रस्फुटित लोना मृत्तिकामें थोड़ासा यबक्षारजानका मेल रहता है ; शुष्क अवस्थामें इसमें योगाकर्षणशक्तिका ज्यादा अभाव नहीं रहता ; पर जलसे भीगनेसे वह शक्ति बहुतही शिथिल होजाती है ।

इस प्रस्फुटित लोना मृत्तिकामें बीज अङ्कुरित होकर जब बढ़ने लगते हैं, तब धीरे धीरे निस्तेज होजाते हैं और शस्य आदि पैदा होनेके पहिलेही उनके वृक्ष नष्ट हुआ करते हैं । पर आश्चर्यका विषय यह है कि, इस प्रस्फुटित लोना मृत्तिकाके निकट चाहे किसी प्रकारकी मृत्तिका क्यों न रहे, वह स्वभाविक अत्यन्त उर्वरा होजाती है । इस मृत्तिकामें अधिक परिमाणसे चूना डालनेसे इसमेंसे लोना का फूटना बन्द होजाता है और यह क्रमसे उर्वरा होजाती है ; पर जैसे मनुष्यके महाव्याधिग्रस्त होनेसे कोई उसे स्पर्श करना नहीं चाहते, उसी प्रकार इस प्रस्फुटित लोना मृत्तिकाको कृषक लोग मृत्तिकाका कोढ़ समझाकर उसमें हल चलानेकी इच्छा नहीं करते । यथार्थमें यह मिट्टीका कुछही है, इसके समान हानिकारक मिट्टी दूसरी नहीं देखी जाती । उत्पादिकाशक्तिमें मरुभूमिके साथ इसकी समानता की जा सकती है ।

—०—

दुमट मिट्टी ।

ऊपर जितने प्रकारकी मिट्टियोंका वर्णन कर आये हैं, उनके परस्पर मेलसे अनेक प्रकारके मिश्रित मिट्टीकी उत्पत्ति होती है ऐसी मिट्टीको कृषिकार लोग दुमट मिट्टी कहते हैं ।

कहीं कहीं उल्लिखितोंके शेष अंश राख चूना आदि विविध पदार्थों के संयोगसे भी इसकी उत्पत्ति होती है । देशभेद और पदार्थ भेदसे इस दुमटमिट्टीकी आकृति प्रकृतिमें विशेष तारतम्य हुआ करता है । और इसमें लाल, पीला, काला तथा सफेद प्रभृति विविध वर्णके भेद भी हुआ करते हैं ।

दुमटमिट्टी स्वभाविक कोमल और बहुतही उर्वरा है । इसमें विविधप्रकारके वृक्ष, लता, धान्य, नील, तूत, आलू, हलदी प्रभृति शस्यदि उत्पन्न हुआ करते हैं । यह दुमटमिट्टी कृषिकार्योंके लिये अत्यन्तही उपयोगी समझी जाती है ।

— ० —

भिटा मिट्टी

भिटा-मृत्तिका किसी एक जातिकी विशुद्ध मृत्तिका नहीं है; यह नदियोंके किनारे और बड़े बड़े जङ्गलोंकी बीच स्वभाविक उत्पन्न नहीं होती; इस मृत्तिकाका वर्णन पहिले कर आये हैं; पर यहां इस मृत्तिकाका विशेष उल्लेख करते हैं । जिस जगह ग्राम वा नगर स्थापित होते हैं, उसी स्थलमें भिटा मृत्तिकाकी उत्पत्ति हुआ करती है । मनुष्योंके व्यवहृत विविध वस्तुएं लृण, लता, वृक्षोंके पत्ते, तूष, मृत्तिका, राख, गोबर प्रभृतिसब चीजोंके एकत्रित होनेसे ग्राम की सीमा क्रमसे ऊंची हुआ करती है,—इसग्राम सीमाके मध्यस्थित गृहस्थोंकी त्याज्य भूमिको “भिटाभूमि” कहते हैं ।

भिटा-मृतिका यद्यपि मिश्रित-मृतिका है ; लेकिन पूर्वोक्त दुमट मृतिकाके साथ इसकी सादृश्यता नहीं है । यह मृतिका बहुत ही कोमल सख्खिद्र जलको सोखनेवाली तथा तापाकर्षक है । इस मृतिकाकी योगाकर्षण शक्ति बहुत थोड़ी है, इस लिये जलसे भीगने पर यह लसदार नहीं होती ।

यह मिट्टी बहुत उर्वरा है, इसमें अनेक प्रकारके वृक्ष, लता, औषधी आदि बहुत अच्छी तरह उत्पन्न होती हैं ; शाक सब्जी भी ऐसी मृतिकामें प्रचुर परिमाणसे उत्पन्न होती हैं ; विशेष करके इस मृतिकामें जैसी तमाकू और सरसों उत्पन्न होगी है, वैसी अन्य किसी प्रकारकी मिट्टीमें नहीं होती ; लेकिन भिटा मृतिकामें धान्य की फसल बढ़ियां नहीं होती ।

ऊपर जो कई एक प्रकारकी मृतिकाका वर्णन कर आये हैं, उसके उपसंहार में स्वीकार करना होता है कि, मृतिका भेद प्रकरणकी अध्याय बहुत कुछ असम्पूर्ण रह गई है । देश वा प्रदेश विशेषमें जो कितने प्रकारकी मृतिका हैं, उसका निर्णय करना सहज नहीं है ; विशेष करके इस छोटी सी पुस्तकमें उसका पूरा वृत्तान्त वर्णन करना बहुत ही कठिन कार्य है ।

जो हो, मिट्टीके कई एक स्थूल स्थूल विवरण जाननेसे ही लोग कृषिकार्यमें कृतकार्य हो सकते हैं,—इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ।

हिमालयके उपत्यका, अधित्यका और शैलतलमें जैसी मिट्टी देखी जाती है, उनके साथ इन ऊपर कही हुई मृतिकाओंकी कुछ सादृश्यता नहीं है । उपत्यका और अधित्यकामें लाल, पीली, काली इत्यादि विविध रङ्गकी मिट्टी देखी जाती हैं । ये सब प्राचीन समयकी अग्निदग्ध मिट्टी मालूम होती हैं * ।

* हिमालय बहुत प्राचीन कालका आग्नेयगिरि है । सैकड़ों ज्वालामुखी पहाड़ोंके एकत्रित होनेसे हिमालय पहाड़की उत्पत्ति

यह सब मिट्टी अनेक अंशमें एटल मिट्टीके समान है; पर इसकी योगाकर्षण शक्ति बहुत कम है। यथार्थमें जली हुई मिट्टीमें योगाकर्षणका अभाव हुआ करता है। बहुत दिनोंके ईंटका चूर्ण सड़के मिट्टी हो जाने पर जैसा होता है, उपत्यका अधित्यकाकी मिट्टी भी प्रायः वैसीही है; उसके साथ छोटे छोटे पत्थरके टुकड़े प्रचुर परिमाणसे मिले रहते हैं; किसी किसी स्थलमें बालूका भी मेल

है। कहते हैं कि जब भारतवर्षसृष्टिके आदिमें अप्रकाश था, उस समय अग्नि की सहायसे गिरिराज हिमालय समुद्रमेंसे निकला था। भूत भारतके उत्तर प्रदेशमें उस समय न मालूम कैसा अग्नि का उत्पात हुआ होगा, उसे विचारनेसे लोगोंको विस्मयसागरमें निमग्न होना होता है। कई युग युगान्तर व्यतीत होगये, इस लिये वह अग्नि बुझ गई; लेकिन उसके सब चिह्न अब तक दिखाई देते हैं। इस सङ्गीर्ण स्थलमें-केवल उसके उल्लेखके सिवाय पूरा विवरण लिखनेकी उपाय नहीं है। हिमालयके जिस किसी अंश पर खड़े होकर देखनेसे मालूम होता है कि, उसके सब शृङ्ग चारों ओरसे धतूरपुष्प की तरह गोलाकार हैं, और उनके बीचमें गहरी गुफा हैं; उस गुफामें वर्षाका जल बन्द होकर शृङ्गके एक भागको तोड़े हुए है। शृङ्गस्थलमें जिन सब भरनोंकी उत्पत्ति हुई है, वे भी शृङ्गके टूटे हुए दरारसे बहा करते हैं। शृङ्ग उपशृङ्गके ऊपर जो मिट्टीका ढेर देखा जाता है, वह भी प्राचीन समयकी अग्निदग्ध मिट्टीकी तरह दिखाई देता है। प्रत्येक शृङ्गके धातुनिस्रव-स्तर गुफामें उर्ध्वमुख दीखते हैं। अग्नि निकलनेके समय बालू अथवा जलके संयोगसे राख आदि निकल कर दूर गिरनेसे शैलतलकी उत्पत्ति हुई है। इसी लिये मोरङ्ग, तराई और दुआरकी मिट्टी बालू और राखमिली पूर्व कालकी मिट्टी समझी जाती है।

रहता है; लेकिन उससे मिट्टीकी उर्वरा शक्तिकी हानि नहीं होती। मालूम होता है, कि, शैलतलकी मृत्तिका प्राचीन कालमें राख और बालूके मेलसे उत्पन्न हुई है; इसे एक तरहकी राखयुक्त मिट्टी भी कहा जा सकता है। ऐसा कहनेमें अन्याय न होगा कि, इसमें भी योगाकर्षण शक्ति नहीं है; लेकिन पहाड़ी मिट्टी क्रमसे वर्षाके जलसे बहकर धीरे धीरे शैलतलमें एकत्रित हुई है। इसलिये उसके अनेक स्थानकी मिट्टी प्रायः उपत्यका और अधित्यकाकी भांति है, पर उसमें भी सूक्ष्म परिमाणसे बालू मिली हुई देखी जाती है। शैलतलकी मिट्टी घरकी दीवाल उठाने तथा ईंट बनाने के उपयोगी नहीं है; लेकिन उत्पादिकाशक्तिमें यह मिट्टी अद्वितीय समझी जाती है।

—०—

सार (खाद)का वर्णन ।

गऊ आदि पशुओंके मल मूत्र प्रभृति विस्तृत मिट्टीके समान होनेसे उसे सार (खाद) कहते हैं। खाद अनेक प्रकारकी होती है; यद्यपि खादका वर्णन हमारी बनाई “कृषिशिक्षा” नाम पुस्तक में किया है; पर इस स्थानमें उसका विशेष वर्णन करते हैं; अर्थात् कई एक जातिके खादका वर्णन नीचे करते हैं, —

उज्जिज, लता, वृक्षोंके पत्ते, तूष, तृण आदिके सड़नेसे एक प्रकारके खादकी उत्पत्ति होती है। यह खाद साधारण समझी जाती है; यह वृक्षोंके पौधे वा फुलवारीके लिये उपयोगी होती है।

खलोको सड़ा कर जो खाद तैयार होती है, वह बहुत बढ़ियां समझी जाती है। चैती फसल तथा अगहनी फसलोंके लिये यह खलीकी खाद बहुत फायदेमन्द है, सड़ी हुई खली जिस किसी मिट्टीमें डाली जावे उसीकी उत्पादिका शक्तिकी अत्यन्तही वृद्धि

हुआ करती है । तिल और तीसीकी खलीस रेंडीकी खली खादके लिये बढ़ियां समझी जाती है ।

मलमूत्र—मनुष्य और पशुपक्षी प्रभृतिके मलमूत्रसे भी खाद तैयार हुआ करती है, यहांके किसानलोग मनुष्यकी बिछा और शूकर बिछाको बहुत अपवित्र समझते हैं, उससे खाद बनाना तो दूर रहे, बल्कि देवात् स्पर्श होनेसे जबतक स्नान नहीं करते तबतक अपनेको अत्यन्त अशुचि समझते हैं । इस लिये इन दोनों प्रकारकी खादोंको व्यवहार करनेमें हिन्दू और मुसलमान सम्प्रदायके कोई कृषिकार की कदापि प्रवृत्ति होगी, — ऐसी प्रत्याशा नहीं की जाती*

पशुओंके गोबर और मूत्रसे जो खाद बनती है, वह प्राचीन कालसे उत्कृष्ट सार (खाद) कहके कृषिक्षेत्रोंमें व्यवहारकी जा रही है । गोबरकी खाद डालनेसे ऐसी कोई भृतिका नहीं है, जिनकी उर्वरताशक्ति न बढ़े, ऐसी कोई उद्भिज्ज विरले ही होंगे, जो गोबरकी खादसे तेजस्वी न होते होंगे ।

जो सब प्राणी अन्यान्य जीव देह को भक्षण करके जीवन धारण करते हैं, वे निरामिषभोजी प्राणियोंसे ज्यादा शक्तिशाली होते हैं, और उनके मलमूत्र आदिकी खाद भी बहुत ताकतवाली हुआ करती है ।

पक्षियोंके बीच कितनेही पक्षी वृक्षादिके फल और कीट पतङ्ग

* बहुतैरे लोग समझते हैं कि, मनुष्य और शूकरकी बिछा इस देशमें कृषकलोग व्यवहार नहीं करते, इस लिये वह अयत्नसे नष्ट हो जाती है । लेकिन वह कदापि नष्ट नहीं होती ; यह सब बिछा जहां तहां पड़कर भूमिकी समतारक्षा करती है । बल्कि अपने हाथसे व्यवहार न करनेसे उसकी स्वच्छा प्रत्येक कृषककी समान अंशसे प्राप्त हुआ करती है ।

आदि भक्षण किया करते हैं अन्यान्य कितनेही पक्षी मत्स्य मांस खाके जीवन धारण करते हैं । इस लिये इन दोनों प्रकारके पक्षियों के मलमूत्रसे बहुत बढ़ियां खाद तैयार हुआ करती है ।

यद्यपि भारतवर्षमें पक्षियोंके मलादिसे खाद बनानेकी रीति प्रचलित नहीं है । लेकिन यूरोपियन कृषिकार लोग समुद्री पक्षी विशेषके मलकी बहुतसी खाद संग्रह करके खेतोंमें डाला करते हैं ।

हड्डी और मांस * से भी बहुत उत्तम खाद तैयार होती है । लेकिन मांससे खाद बनानेकी रीति किसी स्थानमें प्रचलित नहीं है । तथापि इस देशमें बहुतेरे कृषक लोग आम, कटहल, नीच आदिके पौधोंके रोपण करनेवाली जगहमें सड़ी मछलियां, हड्डी का चूरा ; मरी भेड़ बकरियोंकी अंतड़ी प्रभृति डाल कर उसीमें पौधोंको रोपण किया करते हैं ; जिससे वृक्षोंके पौधे बहुत ही तेजस्वी होजाते हैं । अब इस देशमें क्रमसे हड्डीके चूराको खाद अल्प परिमाणसे व्यवहारकी जाने लगी है, यह हड्डी चूर्ण सर्वोत्कृष्ट सार (खाद) है । कोई कोई कृषिविद कहते हैं, हड्डीका चूरा पटेल मिट्टीके लिये विशेष फाइदेमन्द है ।

लेकिन देखा गया है कि उसे जिस मिट्टी तथा उद्भिजोंके पौधोंमें डालते हैं, वे ही बलशाली हो जाते हैं ।

* हड्डीके सम्बन्धमें कितनेही लोग समझते हैं कि, इस देशकी हड्डियां निरर्थक मिट्टी होजाती हैं । यह ठीक है कि, हड्डी मिट्टी होजाती है, परन्तु निरर्थक नष्ट नहीं होजातीं । बल्कि भूमिमें पड़के सड़कर मिट्टीमें मिल जानेसे हड्डियोंके द्वारा भूमिके उत्पादिका शक्तिकी समतारचा होती है । इस पर्यायक्रमसे यहांवाले सब कृषकोंकोही निःसन्देह हड्डियोंका समभावसे उपसत्त्व प्राप्त होता है ।

राख भी बहुत बढ़िया खाद समझी जाती है, सड़े हुए गोबरके साथ मिलाकर राखकी खेतमें डालनेसे बहुत फायदा होता है। एटेल मिट्टीमें राखकी खाद डालनेसे उसका चिकनापन दूर हुआ करता है।

तमाकू, अरबी, जमीकन्द, खीरा, कुम्हड़ा, कद्दू इत्यादिके खेतोंमें राखकी खाद डालनेसे विशेष फायदा होता है।

किसी वृक्षके पत्तोंमें कीट वा चींटी मांटा वगैरह लगें, तो उन पर राख छीटना होता है, पत्तों पर राख छीट देनेसे कीट आदि भाग जाते हैं। कीट तथा चींटी प्रभृतिको फसलोंके मूल वा पत्तियोंमेंसे भगानेके लिये उनपर हल्दीका चूर्ण भी छीटा जा सकता है; और हुक्केका पानी भी डालना फायदेमन्द है, पृथ्वीके भीतर से उद्भिजोंके शेष अंशसे एक स्तर मिट्टी बनी है, जिसे बोंद मिट्टी कहते हैं; यह बोंद मिट्टी खाद रूपसे व्यवहार की जाती है।

तालाब और कूआ खोदनेके समयके अतिरिक्त बोंद मिट्टी सदा सर्वदा सब स्थानोंमें नहीं मिलती।

नदियोंके स्रोतके साथ जो मिट्टी बहके आती और तट पर एकट्ठी हो जाती है, उसे पली मिट्टी कहते हैं। कृषक लोग इस पली मिट्टीसे आलू, गोभी, तमाकू और अनेक प्रकारके शाक सब्जी उत्पन्न किया करते हैं।

पली मिट्टीकी उपजाऊ शक्ति अन्यान्य खादकी अपेक्षा कम नहीं है। भारतवर्षमें नदियोंके द्वारा पली मिट्टी दोनों तटोंमें पड़ कर जहाँके जमीनकी उत्पादिका शक्तिको बढ़ाती है, वहाँके कृषिकार लोग बहुत थोड़ी मिहनतसे ही अधिक परिमाणसे अन्नदि उत्पन्न करनेमें समर्थ होते हैं।

नदीके तटमें पली मिट्टी और बालू दीखती है। जब ये दोनों एकत्र मिलें, तब उनमें सब तरहकी फसलें पैदा हो सकती

हैं ; लेकिन किसी खेतमें अधिक परिमाणसे बालू पड़ जाने पर वह जमीन अनुर्वरा हो जाती है । यदि एटेस मिट्टीमें थोड़ी सी बालू मिली रहे, तो वह खादका कार्य करती है, बालूके सूक्ष्म अंशोंको आकर्षण करके उद्भिजादि सतेज होकर बढ़ते हैं ; परन्तु केवल बालूवाले खेतमें कुछ भी नहीं पैदा होता । गांव गंवईमें छोटे छोटे गड़हे गड़ही रहती हैं, वर्षाके पानीसे चारों ओरकी मिट्टी बह कर उन्हींमें जाकर एकत्रित होती है, इसलिये वे धीरे धीरे मिट्टीसे परिपूरित होते हैं । इन छोटे छोटे गड़होंकी वह एकत्रित हुई मिट्टी भी खाद रूपसे गिनी जाती है ।

शीतकाल उपस्थित होनेपर कृषिकार लोग उन गड़होंकी मिट्टी निकाल कर एक जगह जमा कर रखते हैं, जब यह मिट्टी कुछ सूख जाती है, तो उसे वहांसे उठा कर खेतोंमें डाला करते हैं जिससे कि, खेत जोरावर हो जाते हैं, इस मिट्टीसे खेतकी उत्पादिका-शक्ति खूब बढ़ती है । यह भी गोबरके खादकी तरह हर एक मिट्टी वाले खेतोंके उपयोगी है । विशेष करके यह कटहल और नारियल प्रभृति वृक्षोंके मूलमें दी जाती है, और ऊखके खेतमें डालनेसे बहुत ही फायदा होता है । तालाब गड़हो तथा अन्यान्य जलाशयोंके सड़ें हुए कीचड़की भी अच्छी खाद तयार होती है । यह खाद भी सब तरहके उद्भिज्जोंके लिये पुष्टिकारक हुआ करती है ।

जली हुई मिट्टी कम ताकतवाली नहीं है । जब मिट्टी आगसे जल जाती है, तब उसकी उपजाऊ शक्ति बड़े जोरसे प्रकाशित होती है । इस लिये जो खेत अनुपजाऊ हैं, उनकी मिट्टी को अगर किसी तरह जलाय दिया, जाय, तो वे भली भांति उत्पादिका-शक्तियुक्त हो जायंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ।

चूनाको भी लोग खादके बीच गिनते हैं, लेकिन अन्यान्य खाद जिस प्रकारसे खेतोंमें व्यवहार की जाती है, चूना उस तरह व्यवहृत

नहीं हो सकता। घास फूसकी जड़ें नष्ट करनेके लिये चूना खेतमें डाला जाता है, और प्रस्फुटित लोनामिट्टीमें चूना डालनेसे उसका लोना फूटना बन्द हो जाता है; लेकिन खेतमें किसी तरहका शस्य वर्तमान रहे, तो उसमें चूना डालना उचित नहीं है।

नमक और सोरा * ये दोनों पदार्थ अन्यान्य खादके साथ मिलाकर खेतमें छोड़े जाते हैं। आधुनिक रसायनिक मतसे गेहूंकी जमीनमें सोरा और तमाकूकी जमीनमें नमक डालनेसे विशेष फाइदा होता है। लेकिन नमक और सोरा कृषिक्षेत्रमें ज्यादा व्यवहार करना उचित नहीं है, विशेष करके भारतवर्षकी प्रकृतिके अनुसार उसका भविष्यत फल बहुत ही हानिकारक है, वल्कि जिस भारतवर्षका परिमाण फल तीनसौ सैंतिस करोड़ बानबे लाख बीघा भूमि है; उस देशके कृषिक्षेत्रोंमें नमक, सोरा और हड्डीका चूरा डालना भी सहज कार्य नहीं है।

ऊपर जो कईएक तरहके खादका वर्णन किया, उसके बीच पली मिट्टी, तालाबके सड़े हुए कीचड़ और बौद मिट्टी स्वयंही तैयार हुआ करती हैं; उनके लिये कृषिकारोंको विशेष परिश्रम

* इस देशमें जिस मिट्टीमें अधिक परिमाणसे नमक सोरा (यवचारजान) मिला रहता है, उसे "लोना सोरा" मिट्टी कहते हैं। यह प्रत्यक्ष देखा गया है, कि लोना सोरा मिट्टीमें किसी प्रकारकी धान्य आदि फसलें अच्छी तरह उत्पन्न नहीं होतीं। अधिक समयतक खेतमें नमक और सोरा डालनेसे उसमें नमक का अंश ज्यादा होजाता है, ऐसा होनेसे निश्चयही वह खेत अनुर्वरा होजाता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, क्योंकि जब जमीनमें नमकका हिस्सा ज्यादा बढ़ जाता है, तब उसमें तृण आदि भी अच्छी तरह उत्पन्न नहीं होसकती, वल्कि खारके बढ़ जानेसे वह जमीन ऊपर होजाती है।

नहीं करना होता, इसलिये कृषिक्षेत्रके लिये अन्यान्य खाद पृथक् पृथक् रूपसे बनानेकी बहुत कम आवश्यकता रहती है। पर हड्डीको स्वतन्त्र रीतिसे बिना चूर्ण किये उसकी खाद तैयार नहीं होती और खलीके चूर्णको भी किसी किसी समय पृथक् रूपसे खेतमें छोड़नेकी जरूरत रहती है।

जैसे सोनाभस्म मनुष्योंके शरीरके लिये उपकारी और पुष्टिकारक है, वृक्षादिकोंके लिये खादकी भी उसी प्रकार उपयोगिता है; क्योंकि प्रतिवर्ष शस्यादि उत्पन्न करनेके अनन्तर भूमिकी जितनी शक्ति घटती है, वह सार (खाद) के डालनेसे पुनर्वापरिपूरित हुआ करती है। इस लिये कृषकोंको चाहिये कि, प्रतिवर्षमें कृषिक्षेत्रमें थोड़ी बहुत खाद डाला करें; नहीं तो खेतोंकी उपजाऊशक्ति बहुतही निस्तेज हो जायगी। जिन सब खेतोंमें “पलीमिट्टी” की ज्यादाती हो, उनमें खाद डालनेकी जरूरत नहीं रहती।

पड़ती जमीनको तोड़के जो खेत बनाये जाते हैं, उनमें दो तीन वर्ष तक खाद न डालनेसे भी कार्य चल सकता है; परन्तु इसके अनन्तर उसमें खाद डालना जरूरी कार्य है। तीन वर्ष तक फसल प्रभृति उत्पन्न करके यदि फिर उसे तीन वर्ष पर्यन्त पड़ी रहने दें तो क्रमसे उसका अभाव परिपूर्ण हो जाता है।

जो खेत सदा सर्वदा जोते बोये जाते हैं। उनमें यदि खाद न डाली जाय, तो उत्पादिकाशक्तिके अभावसे कृषिकारोंको यथोचित शस्यप्राप्तिसे वञ्चित होना होता है।

कृषिक्षेत्रमें खाद डालकर आबाद करना हो, तो पहिले खेतको जोतवाकर दुरुस्त कर रखे, नहीं तो खेतमें खाद डालनेसे प्रायः फलप्राप्ति सम्बन्धमें पछताना होता है; क्योंकि समतल प्रभृति क्षेत्रमें वर्षाका पानी पड़नेसे खादका हिस्सा बह जाता है और खादके बह जानेसे खेतके जमीनकी उत्पादिकाशक्तिमें कुछ विशेषता नहीं

देखी जाती ; इसलिये कृषिकारको उचित है, कि खेतको चौतरफा ऐसी खाई वा थोड़ी ऊंची दीवार बनादे, कि जिससे खेतोंका पानी निकलकर अन्य स्थानमें न जा सके ।

पश्चिमोत्तर देशकी भूमि कुछ कड़ी और किञ्चित् अनुर्वरा समझी जाती है, इसीलिये वहाँके कृषाण लोग बहुत दिनोंसे खेतों में खाद डालते आते हैं ; उस देशमें आबादी भूमि मात्रका ही संस्कार किया हुआ देखा जाता है । उस स्थलके सब खेत प्रत्येक अंशमें समतल हैं और समतलांशके शेष भागमें ऊँचा डाँड़ तथा चौतरफा खाँवा बन्धा रहता है । ज्यादा परिमाणसे वृष्टि होने पर जब तक जल डाँड़को उल्लङ्घन नहीं करता, तब तक एक खेत का पानी दूसरे खेतमें नहीं जा सकता । इससे खेतकी खाद खेत में ही रह जाती है और वह एक खेतसे निकल कर दूसरे खेतमें नहीं जा सकती ।

पश्चिमीय भारतभूमिकी अपेक्षा पूरबकी भारत भूमिकी अवस्था अच्छी है । पूर्व भारतकी भूमि अधिक कोमल तथा उर्वरा है, वहाँ खाद डालनेकी रीति प्रचलित नहीं थी । पर बहुत दिनोंसे शस्य उत्पन्न करते रहनेसे इस समय बहुतसे खेतोंकी मिट्टी अनुर्वरा हो गई है । मालूम होता है कि, थोड़ेही दिनोंके बीच पूर्व-भारत भूमिमें भी सार (खाद) डालनेका नियम प्रवर्तित होगा । इस समय भी वहाँ थोड़ेसे कृषिकार जहाँ तहाँ खेतोंमें खाद डालने लगे हैं । लेकिन क्षेत्र संस्कार करना वहाँ अब तक भी किसीके मनमें नहीं आया है ।

यद्यपि बहुत प्राचीन समयसे भारतवर्षके किसी किसी प्रदेशमें कृषक लोग खेतोंमें खाद डालते चले आते हैं, तो भी उनके द्वारा खादके सम्बन्धमें कोई उत्कर्ष साधित नहीं हुआ ; यह भारतीय कृषक सम्प्रदायका दोष नहीं है ; बल्कि भूमिकी उर्वरता शक्तिकी

गुणसे ऐसी अवस्था दुर्लभ है । अभाव न रहनेसे कदापि पूरणकी चेष्टा नहीं हो सकती ।

भारतवर्षके साथ तुलना करनेसे इङ्ग्लैन्ड प्रभृति शीतप्रधान देशोंकी मृत्तिकाकी अनेक अंशोंमें निकृष्ट कहना होगा । इसलिये वहाँके कृषिक्षेत्रोंमें प्रचुर परिमाणसे सार (खाद) बिना डाली शस्यदि अच्छी प्रकार उत्पन्न नहीं हो सकते । अब वहाँके कृषिविद पण्डितोंके यत्नसे खादके सम्बन्धमें जहाँ तक उत्कर्षता होनी सम्भव है, वहाँ तक दुर्लभ है । पर वे लोग चाहे जितनी उत्कर्षता क्यों न करें, वह सब एक मूलशक्तिके अन्तर्गत कहना होगा, जिस मूल शक्तिका वर्णन इस पुस्तकमें आवश्यकतानुसार जगह जगह किया गया है ।

खाद बनानेकी रीति बहुत सहज है । गोशालाके निकट थोड़ा गहरा एक गढ़ा खोद रखते हैं ; उसमें पशुओंके गोबर मूत्र, राख, खड़, वृक्षोंके पत्ते घरके कूड़ा प्रभृति बटोरकर उसीमें एकत्रित करके सञ्चय कर रखते हैं । ये सब पदार्थ वर्षाके पानीसे क्रमसे सड़कर मिट्टीके समान हो जाते हैं, उसेही खाद कहते हैं । इसी प्रकार बहुतेरे ग्रामीण लोग अपने अपने घरसे थोड़े फासिले पर एक एक गढ़ा खोद रखते हैं और उसीमें गोबर प्रभृति एकत्रित करते हैं, वह सब वर्षाके पानीसे यथा समयमें सड़के खाद हो जाते हैं, तब आवश्यकताके मुताबिक वही खाद धूरमेंसे निकालकर यथा योग्य समयमें खेतोंमें डाल देते हैं । यद्यपि ग्रामीण कृषिकार लोग धूरके लिये कच्चा गढ़ा बनाते हैं और उसके ऊपर छाया भी नहीं रखते, तथापि उन्हें फसलोंके उपयोगी बहुतसी खाद प्राप्त होती है । पर यदि कृषक लोग धूरके लिये पक्का गढ़ा बनावें, तो उन्हें बहुत फायदा होनेकी सम्भावना है, क्योंकि कच्चा गढ़ा रहनेसे सार (खाद)के बहुतसे पदार्थ मिट्टीमें प्रविष्ट हो जाते हैं और ऊपरसे

घूर पर छाया न रहनेसे सार (खाद)के बहुतेरे पदार्थ बरसातके पानीसे अन्यत्र बहके चले जाते हैं ; इसलिये कृषिकारोंको चाहिये कि, खाद एकत्रित करनेके लिये पक्का गढ़ा बनावें और उसके ऊपर किसी वस्तुसे छाया रखें, जिससे कि खादके बहुतेरे सारांश पदार्थ मिट्टीके भीतर प्रविष्ट न हो सकें और न जलकी दृष्टिसे बहकर अन्य स्थानोंमें ही जा सकें ।

—०—

मिट्टीकी परीक्षा ।

मिट्टीकी परीक्षा कृषिकार्यका एक प्रधान विषय है ; उद्भिजोंके स्वभावके अनुसार बिना मिट्टी निर्वाचन किये, कृषिकर्ममें सारा परिश्रम निष्फल हो जाता है । लेकिन यथार्थ परीक्षा द्वारा मिट्टी का निश्चय करना बहुत कठिन है । पर नीचे लिखे साधारण रीतिसे मिट्टीकी परीक्षा करना खूब सहज है ।

किसी स्थानकी मिट्टीको १सेर लेकर आगमें जलाओ । तो उसमेंसे सार (खाद)का हिस्सा जलके निकल जावेगा । बाकी उसमें चिकनी मिट्टी और बालूका हिस्सा ही मुख्य करके रह जावेगा; क्योंकि इन्हीं दोनोंके मेलसे मुख्य करके सब तरहकी मिट्टी बनी है, तीसरा पदार्थ उनमें सार (खाद) है । इसलिये जलाने पर खादका अंश जल जाता है और केवल चिकनी मिट्टी और बालू रह जाती है । अनन्तर उसे पानीमें घोलनेसे दीखता है कि चिकनी मिट्टी घुलकर पानीके साथ मिल गई है और बालूका हिस्सा जलके नीचे बैठ गया है । अनन्तर बालूको जलमेंसे निकाल कर सुखाके तौलनेसे बालू और चिकनी मिट्टी तथा खादका परिमाण अर्थात् तौल मालूम हो जाता है । केवल बालू तथा शुद्ध एटेल मिट्टीमें कोई दृष्टादि अच्छी तरह उत्पन्न नहीं होसकते; ये दोनों तथा

इनके साथ अन्यान्य उपादानोंके सम्मिलित होनेसे जो मिट्टी तैयार होती है, वही कृषिकार्यके उपयोगी समझी जाती है ।

जिन वृक्षोंके मूलकाण्ड अनेक शाखा विशिष्ट हैं, तथा जिन फसलोंकी जड़ें जमीनमें बहुत नीचे तक प्रविष्ट होती हैं, जैसे कि आम, जामुन, कटहल और अरहर इत्यादि, इन वृक्षों तथा ऐसे पौधोंके लिये एटेल मिट्टीका हिस्सा ज्यादा रहना चाहिये ; इन पौधोंके लिये ऐसीही मिट्टी उत्तम समझी जाती है । जिन फसलोंके मूल शाखा और फलमें जलका अंश ज्यादा रहता है ; जैसे तर्बूज, कंकड़ी खर्बूजा इत्यादि, — ऐसी फसलों तथा तरकारियोंके लिये बालूका हिस्सा ज्यादा रहना चाहिये ; ऐसी फसलोंके लिये ज्यादा बालू मिली हुई मिट्टीही ज्यादा उपयोगी है । जिन फसलों वा तरकारियोंके मूलकाण्ड जमीनके भीतर बढ़ती हैं, कोमल तथा सरस होती हैं, जैसे — आलू, अरबी, जमीकन्द, शकरकन्द इत्यादि, ऐसी फसलों वा तरकारियोंके लिये बालू और एटेल मिट्टीको बराबर हिस्सा रहना चाहिये । यथार्थमें उद्भिज, तथा फसलोंके स्वभावके अनुसार किसीके लिये एटेलमिट्टीका हिस्सा ज्यादा रहना उचित है, किसीके लिये बालूका हिस्सा अधिक रहना चाहिये और किसी किसी फसलोंके लिये बाल और एटेल मिट्टीकी समानता रहनी उचित है । किन मिट्टीमें बालू एटेल तथा खादका हिस्सा ज्यादा है, उसे तो बहुदर्शी विचारवान कृषक लोग देखतेही बतला सकते हैं । तब जिन्हे ज्यादा अनुभव नहीं है, वे ऊपर कही हुई उपाय से मिट्टीमेंसे बालू, एटेल मिट्टी तथा खादके अंशका परिमाण मालूम कर सकते हैं । इसके सिवाय और भी बहुतसो मिट्टी पहचाननेकी सहज उपाय हैं । किसी किसी स्थानमें मिट्टी खाद कर उसमें जल ढालते हैं, जब जल सूखने पर उसमें चाक बन्ध जावे, तो जानना चाहिये कि, इसमें एटेल मिट्टीका हिस्सा ज्यादा

है । इसके विपरीत तुरन्त जल सूखने तथा चाक न बन्धनेसे बालू का हिस्सा ज्यादा समझना चाहिये ।

उल्लिखित रीतिसे मिट्टीकी परीक्षा करके फसलके उपयोगी मिट्टीको परस्पर मिश्रित कर यथा योग्य रीतिसे तैयार कर ले सकते हैं । जैसे कि एक जगहकी मिट्टीमें बालूका हिस्सा ज्यादा है, उसे यदि एटेल मिट्टीके साथ समभाग करना हो, तो दूसरे स्थानसे एटेल मिट्टी लाकर उसमें मिलाकर समभागवाली मिट्टी बना सकते हैं । यहां पर यह भी कह देना उचित है कि, शुद्ध एटेल मिट्टीका मिलना बहुत मुश्किल है, क्योंकि यह मिट्टी प्रायः बालू मिली हुई रहती है ; इसलिये मिलानेके समय अच्छी तरह विचारकर कार्य करे ।

किसी जगहके मिट्टीकी उपजाऊशक्तिको साधारण रीतिसे जानना हो, तो उस जगहके उत्पन्न हुए तृण वृक्ष आदिको भली भांति देखना चाहिये कि, ये सन्तोषजनक हैं, वा नहीं । क्योंकि तृण आदि स्वभाविक उर्वरामिट्टी बिना कदापि तेजस्वी नहीं हो सकते । इसके सिवाय खेतमेंकी थोड़ी सूखी मिट्टी और थोड़ी भीगी मिट्टी लेकर अङ्गुलिसे दबाकर देखे ; यदि मिट्टीका शुष्क अंश बहुत कड़ा हो और भीगा अंश अङ्गुलीमें एकवारगी चिपक जाय, कुड़ानेसे जल्द न कुटे, तो उस मिट्टीको बहुतही अनुर्वरा समझना होगा । ऐसी मिट्टीमें कृषिकर्मा कदापि उत्तम रीतिसे नहीं हो सकता । लेकिन यदि मिट्टीमें कुछ चिकनाहट रहे और अङ्गुलिमें दृढ़रूपसे न चिपके तो, उस मिट्टीको उर्वरा समझना होगा ।

जो मिट्टी अत्यन्त उर्वरा नहीं है, उसे उपजाऊशक्तियुक्त करनेके लिये उसमें खाद डालनेसे यद्यपि वह जोरावर होजाती है, तथापि उद्भिज्जोंके स्वभावको विना जाने खेतमें सार डालनेसे अनेक स्थलोंमें लाभके पलटे उल्टी हानि हुआ करती है । मटरकी खेतमें सार

डालनेसे मटरके फसलोंकी अनेक स्थलमें नुक्सानी हुआ करती है । योग्य मिट्टी और सारके अभावसे अनेक फसलोंके पौधे क्षीणजीवी हुआ करते हैं और पौधोंके क्षीण होनेसे फल फूलकी अवस्था भी सन्तोषजनक नहीं होती ; इसके अतिरिक्त हहसे ज्यादा खाद पानेसे बहुतेरी फसलोंके पौधे बहुत बढ़ जाते और फल प्रसव करनेमें धिरत रहते हैं । जिन शाक आदिके पत्ते शाखा प्रभृति हमलोगोंके खाद्य हैं, उनके खेतोंमें प्रचुर परिमाणसे खाद डालना उचित है, क्योंकि ऐसा करनेसे उनके अङ्गप्रत्यङ्ग सतेज होकर बढ़ते हैं । इस लिये गोभी, शलगम, गाजर, मूली प्रभृतिके खेतमें प्रचुर परिमाणसे खाद डालना उचित है ।

—०—

खादका विशेष विवरण ।

मिट्टी और उद्भिज्जकी प्रकृति जानके खादका परिमाण निश्चय करना होता है ; इस लिये निश्चित नहीं है कि, प्रतिबीघा पौधे किस परिमाणसे खाद डालना होगा । जो हो, नीचे परीक्षा की हुई मिट्टी और फसलोंकी अवस्थाको विचार कर स्थूल रीतिसे खेतोंमें योग्य खाद डालनेका संक्षेप विवरण लिखते हैं ।

गौ भैंसके गोबर तथा भेड़ बकरीकी मगनी शस्य और शाक सब्जी के खेतोंमें डालना चाहिये । गोबर प्रत्येक बीघामें १६ से २० मन तक ; भेड़ बकरीकी मगनी प्रति बीघामें तीन चार मन और घोड़ा शूकर इत्यादिकी बिछा प्रति बीघामें ३ से ५ मन तक छोड़नेकी जरूरत रहती है ।

कुकुट (मुर्ग) कबूतर प्रभृतिके बीट अधिक करके पुष्पवृक्ष वाले खेतोंमें डालनेसे ज्यादा फाइदा होता है ; यह प्रति बीघा जमीनमें १ मन डालनेसे ही यथेष्ट होता है । मनुष्यकी बिछा प्राय सब तरहकी



कृषिके लिये बढ़ियां खाद है । बम्बई प्रदेशमें खाद (सार)के लिये म्युनिसिपैलिटीकी ओरसे मनुष्यकी बिछा विनाय हुआ करती है । गऊ बैल आदि पशुओंके मल सूखके सड़ जाने पर जब मिट्टी रूपसे परिणत होते अर्थात् खेतकी मिट्टीमें मिल जाते हैं, तब उसे फांस मिट्टी कहते हैं ; यह भी बढ़ियां खाद है, प्रतिबीघा जमीनमें आठ दस मनके करीब डालनेसे यथेष्ट फायदा होता है । सड़े हुए जीव जन्तुओंके शरीरकी खाद फूल और फलवाले वृक्षोंके बहुतही उपयोगी होती है; शाक सब्जीके लिये भी यह खाद बढ़ियां समझी जाती है । वृक्षोंके पत्ते और शाखाके सड़नेसे जो उद्भिज सार (खाद) तैयार होती है, वह सब प्रकारके कृषिक्षेत्रमें व्यवहृत हो सकती है, विशेष करके यह खाद शाक सब्जीके खेतोंके लिये बहुत ही बढ़ियां है । उद्भिज सार प्रति बीघामें १५ मनसे २५मन तक डाल सकते हैं । वृक्षोंके पत्ते और शाखा प्रभृतिको जलानेसे जो राख तैयार होती है, वह भी किसी किसी उद्भिजके लिये विशेष फाइदेमन्द है, यह धान्य और तमाकूके पौधोंके लिये बहुत ही उपकारी समझी जाती है । समस्त सामुद्रिक उद्भिजोंके लिये नमक बढ़ियां सार समझा जाता है । प्रति बीघामें ६से ७सेर तक नमक छींट देनेसे लवणांश युक्त साक सब्जीको विशेष फाइदा पहुँचता है । चूना एटेल मिट्टीके खेतमें १०से १२सेर तक छीटने से विशेष उपकार दीखता है । खलीको सड़ाकर जो खाद तैयार की जाती है, वह सब तरहके शाक सब्जी तथा फल फूलके वृक्षोंके लिये विशेष फाइदेमन्द समझी जाती है । यह ईख, शन, पाट, कपास, आलू, गोभी आदिके लिये ज्यादा उपकारी है ।

ऊपर जिन सब सार (खाद)का वर्णन किया गया है, वे प्राणिज उद्भिज, धातुज और मिश्रित भेदसे चार प्रकार की हैं । सब प्रकारकी खाद इन्हीं चारोंके अन्तर्गत समझी जाती हैं । पर इन

चार प्रकारके खादोंके बीच धातुज सारके बीच केवल नमक और चूनाके सिवाय अन्य किसी प्रकारकी खाद इस देशमें प्रचलित नहीं है ; इनकी भी सचराचर आवश्यकता नहीं होती, इसलिये धातुज सारकी छोड़के अन्य तीन प्रकारकी खाद तैयार करनेका संक्षेपमें विवरण लिखते हैं ।

—०—

उद्भिज्ज सार ।

वृक्षोंकी शाखा और पत्ते प्रभृति सड़कर खूब तेजस्वी जोरदार खाद तैयार होती है, इसे उद्भिज्ज खाद कहते हैं ; इसके बनानेकी यह रीति है ; कि लता पत्र शाखा आदिको इकट्ठा करके थोड़े जल युक्त किसी मढ़में छोड़ देवे, वारह तेरह महीने तक इसी प्रकार सड़कर उद्भिज्ज खाद तैयार होजाती है । लेकिन ज्यादा पानी रहने से जल्दी नहीं सड़ती, जब वृक्षोंकी शाखा तथा पत्ते वगैरः अच्छी तरह नहीं सड़ते, तो उसे पौधोंके मूलमें छोड़नेसे कई प्रकारके कीट उत्पन्न होकर पौधोंकी जड़ोंको काट डालते हैं ।

उद्भिज्ज सारके बीच खली सबसे बढ़ियां खाद है ; खलीके मेल से मिट्टीकी उपजाऊशक्ति बहुत बढ़ती है, परन्तु परिमाणके अतिरिक्त होने पर इसके जरिये पौधोंकी हानि होनेकी सम्भावना है ।

जिस जमीनमें खली छीटना हो, उसके लिये पहलेसे ही खलीका चूरा सड़े हुए गोबरकी खादके साथ मिलाकर खेतमें सर्वत्र छीट देवे, अनन्तर खेतकी हलसे जोतवा देवे, जिससे कि ऊपरकी खाद थोड़ी मिट्टीके नीचे हो जाय ; उसके बाद खेतको जलसे सींचना चाहिये । कई एक दिनके अनन्तर उसमें फिर खलीका चूरा छीटकर तरकारी प्रभृतिके पौधोंकी रोपना उचित है, पौधोंके बड़े होने पर फिर सड़े हुए खलीका चूर्ण उनके मूल जड़ोंमें देना चाहिये ।

सरसो, तीसी, तिल और रेंड़ीकी खलीको खाद बढ़िया समझी जाती है । खलीको खादसे फसलोंके दाने तथा वृक्षोंके फल बड़े हुआ करते हैं । नीलकी सिद्धी बहुत ही बढ़िया उद्भिज्ज खाद है ।

—०—

प्राणिज खाद ।

जीव जन्तुओंका चमड़ा, मांस, रुधिर, हड्डी, सींग प्रभृति सड़ कर मिट्टीके साथ मिल जाने पर बहुत बढ़िया खाद समझी जाती है । प्राणिज खाद बनानेकी यह रीति है, कि मरे हुए जीव जन्तुओंके शरीरको मिट्टीके किसी गढ़ेमें फेंक दे, और उसके ऊपर चूना छीट कर मिट्टीसे ढाक देवे ; दो तीन महीने तक इसी तरह रखनेसे प्राणिज खाद तैयार होजाती है । अनन्तर उसे गढ़ेमेंसे निकाल कर थोड़ा चूना मिलाके जोते हुए खेतोंमें डाल देवे ।

जीव जन्तुओंकी हड्डीके छोटे छोटे टुकड़े खेतोंमें डाल देनेसे कई वर्षतक भूमिकी उपजाऊशक्ति प्रबल बनी रहती है ।

हड्डीको बहुत मिहीन चूर्ण करके खेतोंमें छोड़नेसे पक्षिलेही वर्ष ज्यादा फाइदा दिखाई देता है । फिर उसका तेज घट जाता है, इस लिये हड्डियोंके बहुत छोटे टुकड़े न करके किञ्चित बड़े करना चाहिये । सींगका चूरा हड्डीके चूरासे अधिक फाइदेमन्द है । जिस खेतमें एटल मिट्टीका हिस्सा ज्यादा रहता है उसमें प्राणिज खाद अधिक परिमाणसे बिना डाले विशेष उपकार नहीं दिखाई देता । लेकिन मिश्रित मिट्टीमें डालसेसे इसकी द्वारा उत्पादिकाशक्ति अधिक परिमाणसे बहुत जल्द प्रकाशित हुआ करती है ।

—०—

मिश्रित खाद ।

उज्जिज खाद, प्राणिजखाद और धातुजखाद, इन तीनोंके परस्पर मिलनेसे जो खाद तय्यार होती है उसे मिश्रित खाद कहते हैं । हमारे देशमें गऊ, भैंस, घोड़ा, गदहा, सूअर, प्रभृति प्राणियोंकी बिछा मिश्रित खादके बीच प्रधान रूपसे प्रचलित है । उनके बीच गवादि पशुओंकी गोबर ही अधिक प्रसिद्ध है । लेकिन ताजा गोबर कृषीकार्यके लिये विशेष उपयोगी नहीं है । सूखे हुए गोबरका चूरा वां सड़े हुए गोबरकी खाद ही खेतोंमें डालनेसे अधिक फाइदा होता है ।

गोमूत्र और गोबरको सड़ाकर उसमें खलीका चूरा मिला देनेसे एकतरहकी बढ़ियां मिश्रित खाद तय्यार हो जाती है उससे मिट्टी की उपजाऊशक्ति (उर्वरताशक्ति)की वृद्धि हुआ करती है । गोमूत्र की भांति घोड़े, गधे, और भैंस इत्यादि पशुओंके मूत्र और गोबर भी कृषिकार्यके उपयोगी हैं । लेकिन ताजे मूत्र और गोबरके तेजकी पीधे सह नहीं सकते, ताजा मूत्र और गोबर पीधोंके मूलमें डालनेसे वे दग्ध प्राय हो जाते हैं इस लिये पशुओंके मूत्र और गोबरको कुछ रोज तक सड़ाकर पीधोंके मूलमें डालना उचित है ।

सड़ा हुआ गोबर वृक्षोंके सड़े पत्ते, नदी तटकी बालू और साधारण मिट्टी इन चारोंके सम मेलसे जो खाद तय्यार होती है । उनसे ज्यादा करके फूलोंके पीधे बड़े तेजस्वी होते हैं । गुलाब फूल के खेतों तथा बेला चमेली इत्यादिकी फुलवारीमें इस खादको उचित रीतिसे डालने पर विशेष उपकार होने की सम्भावना रहती है । पच्छियोंके बीट वगैरहमें जो खाद तय्यार होती है, वह भी फूलोंके पीधोंके लिये अधिक उपकारी समझी जाती है ।

खेती की जमीन ।

जिस जमीनमें खेती करना हो, उसका स्वत्व स्थायी रहना चाहिये । खेती करनेके लिये जिन कृषिकारोंके पास निजको जमीन नहीं है, उन्हें चाहिये कि, जमींदारोंसे सुकररौ सुइती वा मीरूसी पट्टावाली जमीन लेकर कृषिकार्य करें । खेती करनेके लिये लाखराज (निष्कार) जमीनही अच्छी समझी जाती है, इसलिये जहां तक हो सके, कृषिकार लोग लाखराज जमीन लेकर कृषिकर्मके द्वारा यथोचित फाइदा उठावें । लाखराज जमीन न मिलने पर मीरूसी स्वत्ववाली भूमि लेकर खेती करें । इसके अभावमें सुइती पट्टावाली जमीन लेकर कृषक लोग साधारण रीतिसे खेती कर सकते हैं । क्योंकि मीरूसी पट्टा तथा सुइती पट्टावाली जमीन न रहनेसे जमींदार जब चाहे, तभी कृषिकारको उस जमीनसे पृथक् कर सकता है । अर्थात् किसी तरहका सुइत न रहने पर कृषिकारका उस जमीन पर कुछ भी दावा नहीं रहता । इस लिये लोगोंको उचित है कि, कृषिकार्यके लिये लाखराज जमीन, लेवें अथवा मीरूसी वा सुइती पट्टेवाली जमीन लेकर यथायोग्य कृषिकार्य द्वारा उचित लाभ उठावें । इसके विपरीत खेती करनेवाले कृषिकारोंको अनेक समय विविध प्रकारकी नुक़्सानी उठाकर लाभ वा आमदनीसे वञ्चित होना होता है । जो लोग लाखराज जमीन खरीद लेते हैं, उन्हें कुछ भी राजकर नहीं देना होता, इससे उन्हें अधिक लाभकी सम्भावना रहती है । इसके सुकररौ वा तथा मीरूसी पट्टावाली जमीन लेकर खेती करते हैं, उन्हें स्थायी रूपसे भूमिकर देना होता है । नियम पूर्वक सुकररौ हुए भूमिकरको देनेसे उनका स्वत्व उस जमीन परसे नहीं उठ सकता, इसके अतिरिक्त स्वल्पसुइती पट्टावाली जमीनमेंसे कृषिकार सुइत भरके बीचमें अपना

फाड़दा उठाकर उस जमीनसे पृथक् हो सकता है, अथवा फिर कुछ दिनोंकी मुहत्तका नया पट्टा जमींदारसे करा कर इच्छानुसार कृषि-कार्य कर सकता है । पर स्वल्प मुहत्ती पट्टेवाली जमीनका भूमि कर समय बीतने पर बढ़ाया जा सकता है । लेकिन मीरूसी वा सुकररी पट्टेवाली जमीनका भूमिकर सदा सर्वदा नियमित रीतिसे ही रहता है, उसमें कुछ रद बदल नहीं हो सकता ।

जिस जमीनमें बारहों महीनेतक कृषिकार्य हो सके, वैसी जमीन कृषिकर्मके लिये बहुतही उपयोगी समझी जाती है । कृषिकार को चाहिये कि खेतके ऊपरके मिट्टी और उसके नीचेकी तहवाली मिट्टीके गुणको जानता रहे । क्योंकि मिट्टी खराब होनेसे फसलों के तेजस्वी पौधे भी क्रमसे क्षीण होकर बलहीन होजाते हैं ; पौधे जिन सब पदार्थोंको जमीनमेंसे खींच कर जीवन धारण करते हैं, उसके अभाव होनेसे वे कदापि सतेज नहीं रह सकते । सब जगह की जमीनमें ऐसे पदार्थों का संचित रहना सम्भव नहीं है । इसीसे मिट्टी और फसलकी प्रकृतिको विचार कर खेतमें खाद डालना चाहिये । यदि जमीन अच्छी उपजाऊ हो, तो उसमें खाद डालनेकी जरूरत नहीं रहती । अच्छी उपजाऊ जमीनमें खेत ही वृक्ष आदि बढ़ते और पुष्ट होते हैं । निष्कष्ट मिट्टीका लक्षण यह है कि उसमें दुर्ब्राघास भी अच्छीतरह उत्पन्न नहीं हो सकती । ऐसी जमीन वा मिट्टीको खेतीके उपयोगी बनानेमें ज्यादा खाद डालने तथा अधिक परिश्रम करनेकी आवश्यकता रहती है । जो हो, खेतीके लिये जैसे बढ़ियां जमीनकी जरूरत रहती है, उसी तरह खेतकी फसलोंमें सूरजकी रोशनी और वायुके प्रवेशकी भी विशेष आवश्यकता समझनी चाहिये । इसके सिवाय फसल युक्त खेतीमें जल सींचनेके लिये निकटमें ही तालाब तथा कंधा प्रभृतिका रहना भी बहुत ही आवश्यकीय है ।

क्षेत्र भेद ।

भूमिके सम्बन्धमें ऊपर जो सब विषय वर्णन किये गये, उससे पाठकोंको उपजाऊ और अनुपजाऊ जमीनका विवरण भली भांति हृदयङ्गम हो गया होगा, इसके सिवाय भूमि और फसलोंकी प्रकृति अनुसार यथायोग्य मिट्टीमें उचित खाद डालके उसे कृषिके उपयोगी करनेकी रीति भी पाठकोंको विदित हो गई होगी । परन्तु भूमिके सब स्थान समान आकृतिवाले नहीं हैं ; इस लिये उनमें बहुतसे आवांतर भेद दीखते हैं । भूमिके इन सब ऊँचे नीचे स्थानोंको क्षेत्रभेद कहा करते हैं । आकृति प्रकृति भेदसे प्रत्येक खेतोंकी भी पृथक् पृथक् नाम हुए हैं ; उनमेंसे कर्ष एक क्षेत्रोंका वर्णन नीचे करते हैं ।

१ कूर्मपृष्ठ क्षेत्र, दूसरा क्रमनिम्न क्षेत्र, तीसरा समतल क्षेत्र, चौथा कूँड़ी और पांचवां विलान क्षेत्र है ।

इनके बीच कूर्मपृष्ठ क्रमनिम्न और समतल क्षेत्र, ये तीनों ऊँचे क्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध हैं, और कूँड़ी तथा विलान, ये दोनों नीचे क्षेत्रके नाम विख्यात हैं । इन सब क्षेत्रोंके नाम और लक्षण क्रमसे नीचे लिखते हैं ।

—०—

कूर्मपृष्ठ क्षेत्र ।

लम्बे चौड़े मैदानके बीच चारों ओरके भूमिकी अपेक्षा जो खेत कुछ अधिक ऊँचा होता है, उसे “कूर्मपृष्ठ क्षेत्र” कहा करते हैं । यह खेत देखनेमें कुछ कछुयेकी पीठकी तरह कुब्जाकार होता है, कहीं समतल और किसी स्थलमें ढालू रहता है ; इस खेतमें बरसातका पानी एकचित नहीं होता ; जलकी वर्षा होनेसे चारों ओरसे पानी बह जाता है । वर्षाके जलसे इस खेतके पृष्ठस्थलकी

मिट्टी बहकर अन्य स्थानोंमें चली जाती है, इस लिये इस खेतकी उत्पादिकाशक्तिमें बहुत कुछ घटती हुआ करती है। इस लिये समतल, कूँड़ी और विलान क्षेत्रकी अपेक्षा यह “कूर्मपृष्ठ” खेत अनेक अंशोंमें निकृष्ट गिना जाता है।

—०—

क्रम-निम्न क्षेत्र ।

स्वभाविक ऊँची भूमि किसी नीची जमीन वा तालाब प्रभृतिके साथ जिस स्थलमें मिलती है, उस सन्धि-स्थलकी जमीन क्रमसे अधोभागमें नीची हुआ करती है; ऐसे जमीनके खेतको “क्रमनिम्न” क्षेत्र कहते हैं।

इस “क्रमनिम्नक्षेत्र” में भी वर्षाका पानी एकत्रित नहीं होता, बल्कि जिस तरफ जमीनका हिस्सा क्रमसे नीचा रहता है, उसी ओरको स्रोत करके बह जाता है। इसी प्रकार स्रोतके जलसे क्रमनिम्नक्षेत्रका समस्त सार (खाद)का अंश बहकर नीचेकी ओर जाकर पली रूपसे नीचेकी तरफ सब मिट्टी एकत्रित होती है। इस लिये “क्रमनिम्नक्षेत्र”के उत्पादिकाशक्ति कासकी विलक्षण सम्भावना है। यथार्थमें यह खेत “कूर्मपृष्ठ” खेतसे भी घटिया है।

—०—

समतल क्षेत्र ।

ऊँचाई निचाई रहित सम-भूमिखण्ड वाले खेतको “समतल” क्षेत्र कहते हैं। यह समतल क्षेत्र कृषिकारोंके लिये बहुत उपयोगी समझी जाती है। इस खेतके पृष्ठस्थल ठीक समान होते हैं, यह किसी तरफ ऊँचा नीचा नहीं होता, समतल क्षेत्रमें वर्षाका पानी प्रड़के सब स्थानोंमें व्याप्त हुआ करता है। इस क्षेत्रके चारों ओर

जो चार ऊँचे डाँड़ बन्दे रहते हैं, जब तक पानी खेतमें पूरी तरह से भरकर डाँड़को उलटान नहीं करता, तबतक किसी तरफ नहीं बह सकता । इसलिये इस “समतल” क्षेत्रके सार (खाद)का हिस्सा निकलकर कदापि कहीं नहीं जा सकता ।

इस खेतके किसी एक स्थानमें जल सींचनेसे स्वयं ही उस जलसे सारे खेतकी मिट्टी भीगकर तर हो जाती है ; कृषक लोग ऐसे खेतको अधिक पसन्द करते हैं । ऊँची भूमिके बीच “समतल” क्षेत्र उपजाऊ समझे जाते हैं, और ऐसे खेतोंके द्वारा कृषिकार्यसे विशेष सुविधा होता है ।

—०—

कूँड़ी क्षेत्र ।

चारों ओर ऊँची जमीन हो और मध्यमें गहरा हो, ऐसे क्षेत्रको “कूँड़ीक्षेत्र” कहते हैं । सब तरहके “कूँड़ीक्षेत्र” देखनेमें एक समान नहीं होते, कोई खेत एक फुट कोई दो फुट और कोई तीन फुट तक गहरे होते हैं । गहराईकी कमी ज्यादातीके अनुसार उपजाऊशक्तिमें भी तारतम्य हुआ करता है । वर्षाकालका पानी इस खेतमें पड़तेही सिमिट कर मध्यमें बह हुआ करता है, तथा चारों ओरसे ऊँची भूमिका पानी आके इस “कूँड़ीक्षेत्र”को परि पूरित करता है । धानकी खेतीके लिये “कूँड़ीक्षेत्र” बहुतही प्रसिद्ध है ।

—०—

बिलान क्षेत्र ।

कूँड़ीक्षेत्रके बहुत विस्तीर्ण होनेसे उसे “बिल” कहते हैं । साधारण “कूँड़ीक्षेत्र” से इसकी गहराई ज्यादा होती है । यह बिल देखनेमें पहाड़की गुफा, गड़ही और कहीं कहीं नदीके समान दीर्घ-

कार होती है। किसी किसी विलानक्षेत्रमें बूड़ाका पानी प्रवेश नहीं करता; वर्षाकालके पानीसे ऐसा विलानक्षेत्र परिपूर्ण हुआ करता है। वर्षा बन्द होनेपर खेतका सब पानी प्रायः सूख जाता है। किसी किसी विलानक्षेत्रकी गहराई क्रमसे एकतरफ़की बढ़कर निकटवर्ती जलाशयके साथ सम्मिलित होती है। कहीं कहीं के विलानक्षेत्र नदीके साथ संयुक्त हुआ करते हैं, उस नदीकी सहाय से प्रतिवर्ष उनमें बूड़ाका पानी आके प्रवेश करता है। नदीके स्रोत जलसे आई हुई मिट्टी उसक्षेत्रमें पलीरूपसे परिणत होती है; उस पली मिट्टीके मेलसे इस विलानक्षेत्रकी भूमि उर्वरा हुआ करती है। अनन्तर वर्षाके शेषमें विलानक्षेत्रका सब जल नदीमें चला जाता है, तब वह जलसे डूबा हुआ क्षेत्र फिर शुष्क हुआ करता है। जिस विलानक्षेत्रकी गहराई कम होती है, उसे प्रायः लोग कूड़ी-क्षेत्र कहा करते हैं। हरएक प्रकारके विलानक्षेत्रोंके गहराईकी सीमा प्रायः मध्यस्थलमें ही दीखती है, कदापि किसी किसी विलानक्षेत्रकी एकपार्श्व (वगल) में भी गहराईका शेष हुआ करता है। इस गहरे स्थानको “रई” कहते हैं। किसी किसी ज्यादा गहराईयुक्त विलानक्षेत्रकी “रई” प्रायः सूखती हुई नहीं दीखती; वहां बारहों महीने जलप्राप्तिकी सम्भवना रहती है। ऐसे जलसीमा के दोनो किनारेवाली मिट्टी बहुत दूरतक प्रायः कीचड़युक्त दिखाई देती है, उसका नाम कीचड़मयी भूमि है। कीचड़मयी जमीनमें बोर धान भली भांति उत्पन्न होता है।

कूर्मपृष्ठ इत्यादि जो पांच प्रकारके खेतोंका वर्णन ऊपर किया है, अनेक स्थानोंमें उनके आकार तरह तरहके दिखाई देते हैं। पर चाहे किसी प्रकारके क्षेत्र क्यों न हों, विशेष अनुसन्धान करके देखनेसे वे सब इन पांच प्रकारके खेतोंके अन्तर्गतही समझे जा सकते हैं।

क्षेत्र खोदना ।

खेतकी मिट्टीको अच्छी तरह खोदवाके हलसे जोतकर पोली तथा नरम कर देना उचित है। खेतको अच्छी तरह बिना जोते तथा फावड़ीसे बिना खोदे उसमेंसे पूरी तरह शस्यাদिकीकी उत्पत्ति नहीं होती। खेतकी मिट्टीको खोदके पोली करनेका नियम बहुत सहज है। लेकिन हाथसे फावड़ीके द्वारा खोदनेसे परिश्रम कुछ ज्यादा हुआ करता है। फावड़ा दोनो हाथसे धारण करके भूमिमें आघात करना होता है, फावड़ेका पात खेतकी मिट्टीमें प्रविष्ट होने पर उसे अपनी ओर खींच लेनेसे मिट्टी उलट आती है। यदि कुदालके द्वारा उल्टी हुई मिट्टीके ठेले बड़े बड़े हों, तो उन्हें फावड़े के पाशसे पीट कर मिचीन कर देते हैं। इस तरहसे मिट्टीको खोदकर मिचीन और पोली कर देनेसे उसमें वायु प्रवेश करके उसे शस्योत्पत्तिके योग्य बनाता है, और ऐसी मिट्टीमें सूरजकी रोशनी भी उचित रीतिसे प्रविष्ट होकर उसे फसल उत्पन्न करनेके उपयोगी बनाती है, इस लिये खेत बोनके पहिले उसकी मिट्टीको जोतकर वा फावड़ीसे खोदकर पहिलेसेही शस्य आदि उत्पन्न करनेके उपयुक्त बना लेना प्रत्येक कृषिकारकाही मुख्य कर्तव्यकार्य है।

—०—

क्षेत्र कर्षण ।

मृत्तिका कर्षण करनेको खेत जोतना कहते हैं। मिट्टीके बिना पोली और मिचीन हुए उद्भिज्जीकी जड़ें मिट्टीके भीतर प्रविष्ट होकर रस ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होतीं और खेतको बिना जोते मिट्टीकी उर्वरताशक्ति भी प्रकाशित नहीं होती; इस लिये कृषिकारीको उचित है कि, फसल प्रभृति बोनके पहिले खेतकी अच्छी तरह

जोतकर दुरुस्त कर रखें । मिट्टी और फसलकी प्रकृतिके अनुसार खेतको कभी थोड़ा और कभी ज्यादा जोतनेकी जरूरत रहती है ।

खेत कर्षण करनेके लिये हलकी विशेष आवश्यकता रहती है । ऊपर फावड़ोंसे भी क्षेत्र कर्षणकी रीति लिख आये हैं; लेकिन फल और फूलोंके बगीचेकी भूमिको ही विशेषकरके फावड़ोंसे खोद कर दुरुस्त करते हैं; इसके सिवाय फसलोंके खेतोंको कर्षण करनेके लिये हल ही उत्तम गिना जाता है ।

हमारे देशीय हलकी अपेक्षा विलायती हलके सहारे थोड़े ही समयके बीच अधिक परिमाणसे भूमि कर्षित हो सकती है, पर वर्तमान अवस्थामें विलायती हल भारतवर्षीय कृषिकारोंके लिये सर्वथा उपयोगी नहीं है । क्योंकि विलायती चक्रयुक्त हल समतल क्षेत्रके अतिरिक्त कूर्मपृष्ठ और क्रमनिम्न क्षेत्रमें नहीं चल सकता और इस हलको कीमत भी ज्यादा है, तथा एक जोड़े दुर्बल बैल इसे नहीं खींच सकते । इस देशके सब क्षेत्र समतल नहीं हैं, तथा यहांके कृषिकार लोग भी प्रायः गरीब दीखते हैं, इन्हीं सब कारणोंसे विलायती हल खेत जोतनेके लिये ज्यादा उपयोगी होने पर भी वर्तमान समयमें वह इस देशके उपयुक्त नहीं है । देशी बैलोंके बीच जो बलवान हैं, उनके द्वारा एक हलसे एक दिनमें दो बीघा जमीन जोती जा सकती है । लेकिन जो बैल निर्वल होते हैं उनके जरिये एकदिनसे पन्द्रह कट्ठा वा एक बीघासे ज्यादा जमीन नहीं जोती जा सकती ।

उचित समय पहुंचनेसे ही खेतको जोतना होता है, वर्षा होनेके अनन्तर जब खेतका पानी सूखकर खेत ऐसा हो जाय कि, उसमें टहलनेसे पैरके तलवेमें मिट्टी न लगे, लेकिन मिट्टी कुछ सरस रहे; — खेत जोतनेके लिये यही उत्तम समय है । ऐसी अवस्थामें खेतके बीच हल चलानेसे उसमें कीचड़ नहीं लगता, और

मिट्टीके भीतर हलका फाल अधिक दूर तक प्रवेश करता है, इसही लिये ऐसी हालतमें अच्छी तरह खेत जोता जाता है, और उससे फसल प्रभृति बोनिके लिये विशेष फाइदा हुआ करता है ।

तृण प्रभृतिसे संयुक्त पड़ती जमीनको जोतनेके लिये उत्तम समयकी विशेष आवश्यकता नहीं रहती । जब ज्यादा परिमाणसे जलकी वर्षा हो, और मिट्टी पानीसे खूब तर हो जावे, तभी उसे फावड़ोंसे खोदना वा हलसे जोतना उचित है ; ऐसी अवस्थामें खेतको बेर बेर जोतने और हेंगा देनेसे उसमेंको घास वगैरह की जड़ें मिट्टीके साथ क्रमसे उलट पुलट हो जानेसे सड़कर उस खेतकी मिट्टीमें ही मिल जाती हैं और इससे खेत और भी जोरदार होजाता है । इसप्रकारसे जब उस खेतमेंके सब तृण और उनकी जड़ें सड़कर मिट्टीमें मिल जाती हैं, तब समयके अनुसार दो तीन बेर जोतनेसे ही वह फसलोंके उत्पन्न करने योग्य हो जाता है ।

विलान क्षेत्रकी पानी बरसनेके पहिलेही जोतकर दुरुस्त रखना होता है, ऐसे खेतमें धानके सिवाय अन्य कोई फसल प्राय उत्पन्न नहीं होसकती ; लेकिन यदि कातिक महीनेमें ऐसे खेतका जल निकल जावे वा सूख जावे, तो किसी किसी विलान क्षेत्रमें रब्बीफ फसल उत्पन्न हो सकती है । उठित भूमिमें दो तीन बेर हल चलाने पर ही उसमें फसल हो सकती है । नदियोंके किनारेवाले जिन खेतोंमें पलीमिट्टी पड़ जाती है, उन्हें प्राय जोतनेकी जरूरत नहीं होती, क्योंकि ऐसे खेतकी मिट्टी स्वभाविक कोमल और पोली रहती है ।

खेतको हलसे जोतनेके अनन्तर मिट्टीके ढेले चूर्ण हो जाते हैं और खेत समतल भावको धारण करता है । मिट्टी खोदना, ढेला तोड़ना और हेंगा देना प्रभृति खेतकी दुरुस्तीके सम्बन्धमें प्रधान कार्य्य समझे जाते हैं । इस प्रकार खेतको बिना दुरुस्त किये

उसमें फसल प्रभृति बोनसे उसके द्वारा उचित फल प्राप्ति नहीं होती ।

जैसे खेतकी अवस्थाके अनुसार थोड़ी वा ज्यादा जोतनेकी जरूरत रहती है, उसी तरह फसलकी प्रकृति विशेषके लिये भी कम वा अधिक जोतनेकी आवश्यकता हुआ करती है ।

मूल अर्थात् जिस फसलों वा तरकारियोंके मूलकाण्ड मिट्टीके भीतर प्रविष्ट होकर बढ़ती है, जैसे—आलू, धरवी, जमीकन्ध, मूली इत्यादि, इनके लिये खेतका ज्यादा जोतना जरूरी है । कपास, पटुआ, शन प्रभृति सूत्रोत्पादक उद्भिजोंके लिये खेतकी मूलवाले खेतोंकी अपेक्षा कम जोतनेकी आवश्यकता रहती है । धानके खेत कपास आदिके खेतोंसे भी कम जोते जाते हैं ।

ताप और वायुके संयोगसे भूपृष्ठ परिशुष्क हुआ करता है, आकर्षित मिट्टीके परमाणुओंके परस्पर संलित रहनेसे भूगर्भस्थ मृत्तिकाका रस आके इस भूपृष्ठवाली शुष्क मिट्टीको जिस प्रकार आर्द्र करनेकी चेष्टा करता है, उसी भांति सूर्य और वायुके प्रभावसे मिट्टीका ऊपरी जलीय अंश भाफरूपसे ऊपरकी ओर उठकर आकाशमें चला जाता है । अनाकर्षित क्षेत्रमें योगाकर्षणशक्तिके प्रभावसे ऐसीही क्रिया क्रमागत चलती रहती है ; इसी लिये थोड़े दिनोंके बीचमेंही वे-जोते खेत नीचेके तहतक निरस होजाते हैं ; लेकिन जोते हुए खेतमें ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि हलाकर्षणके प्रभावसे मिट्टीके परमाणु अलग अलग होजाते हैं, मृत्तिकाके परमाणुओंका परस्पर मिल न रहनेसे उनमें योगाकर्षण क्रियाका प्रभाव विनष्ट होजाता है । भूमिपृष्ठकी मिट्टी चाहे कितनीही सूखी क्यों न रहे । जमीनके भीतरका रस अत्यन्त कम मात्राके सिवाय ज्यादा आकर्षित नहीं होता ; इसलिये खेत जोतनेसे मिट्टी बहुत रोज तक सरस रहता करती है । लेकिन खेत जोतनेके अनन्तर यदि उसकी

मिट्टीको हेंगा देकर दबाके समान न कर दी जाये, तो परस्पर विच्छिन्न मिट्टीके परमाणुओंमें सूरजकी धूप और वायु प्रविष्ट होकर उसे बिना जोतौ भूमिसे भी ज्यादा शुष्क वा निरस कर देती है, इसी इस देशके साधारण कृषिकार भी अच्छी प्रकार जानते हैं, इस लिये अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है ।

विलायती चक्र युक्त नये हलसे तथा कलके हलसे एकही बेर जोत देनेसे खेतकी नीचेवाली मिट्टी ऊपर हो जाती है । लेकिन बहुत दिनकी पड़ती जमीनमें केवल एक दो बेर जोत करही उसमें फसलोंके बोनेसे उनके द्वारा अच्छी तरह शस्योत्पत्ति नहीं होती । भूमिको क्रमसे बेर बेर बिना जोते उसमें फसल तथा तरकारियोंके बीजको बोनेसे उनके द्वारा भली भांति फलप्राप्ति नहीं होती ; यह बात इस देशके कृषकोंको बहुतसी परीक्षाके बाद मालूम हुई है । बेर बेर खेतकी जोतनेसे तथा उसमें योग्य खाद मिला देनेसे मिट्टी की उर्वरताशक्ति बढ़ जाती है ।

वर्षाकालमें एटेल मिट्टीके खेत काँची होजाते हैं, तब वैसी हालतमें उस मिट्टीके बीच हलका फालसहजमें प्रविष्ट होकर खेतकी भलीभांति जोतनेमें समर्थ नहीं होता ; लेकिन शुष्क एटेल मिट्टी वर्षाके जलसे एकबेर वा दो बेर अच्छी तरह भींग जानेसे उसे जोतनेमें खूब सुविधा होता है । समयके अनुसार खेत एकबेर अच्छी तरह जोते जानेसेही फसल बोनेके उपयुक्त होजाते हैं, समय बीत जानेसे कृषिकार्य अच्छी तरह सुसम्पन्न नहीं हो सकता । वर्षाकालमें अन्यान्य मिट्टीवाले खेतकी मिट्टी भी काँची होकर परमाणुओंके परस्पर सम्मिलित होनेसे कुछ दिनोंतक जोतने योग्य नहीं रहती, पर एटेल मिट्टीकी तरह ज्यादा कड़ी नहीं होती । काँची होने से चाकबन्ध जाने पर जिस प्रकार एटेल मिट्टीमें हल प्रविष्ट नहीं हो सकता, पत्ती प्रभृति मिट्टियोंका स्वभाव वैसा नहीं है, जिस

किसी समयमें हो वह जलसे भीगी रहे वा जलयुक्त होनेसे भी उसे हलसे जोत सकते हैं ।

... चाहे किसी प्रकारके खेत क्यों न हों, बेर बेर हल जोतने और हिंगा देनेसे सारी मिट्टी अच्छी तरह परिचालित होकर जब धूलकी तरह मिहीन हो जाय, खेतमेंकी घास वगैरः उखड़के सूखकर सड़ कर मिट्टीमें मिल जावें, उसमें एक भी तृण घास वगैरः दिखाई न देवे ; तब उसे बीज बोनेके उपयुक्त खेत समझ कर यथायोग्य मिट्टीको प्रकृति विचार कर उसमें योग्य बीज बोना उचित है ।

जिस तरह वर्षा होनेके पहिले विलान क्षेत्रको जोतकर दुरुस्त करते तथा उसमें बोने योग्य फसल वोर धान इत्यादि बोते हैं, उसी प्रकार कूँड़ी क्षेत्रको भी आवाद किया जा सकता है ; पर सब समय कूँड़ी क्षेत्रके लिये ऐसा करनेकी आवश्यकता नहीं होती । कूँड़ीक्षेत्रमें जो जलबद्ध होता है, उसकी गहराईके परिमाणसे थोड़े गहराईयुक्त जलवाले खेतमें भी हल चला सकते हैं । जलयुक्त खेतमें बेर बेर हल चलानेसे उसकी मिट्टी कीचड़मयी हो जाती है और उसमेंके सब तृण आदि जड़मूलसे उखड़ कर उसीमें सड़के खेतकी उर्वरताशक्तिको बढ़ाते हैं, इस लिये इस खेतको अन्य प्रकारसे आवाद करनेकी जरूरत नहीं रहती ।

आषाढ़ सावन महीनेमें कीचड़युक्त कूँड़ी क्षेत्रको हलसे जोतकर उसमें अगहनी धान रोपण किया जा सकता है ; ऐसे खेतको वर्षाके प्रारम्भमें दो एक बेर जोत रखनेसे शेषमें धान रोपनेके समय दो एक बेर हल चलानेसे ही वह खेत भलीभांति कीचड़युक्त होकर धान रोपनेके उपयुक्त होजाता है ।

जो सब कूँड़ी क्षेत्र ज्यादा गहरे होते हैं, जिनमें रोपण किये हुए धान अच्छी तरह नहीं होते, बल्कि उनमें रोग लगकर धानके सींका सूख जाते हैं ; ऐसे खेतोंमें रोपण करनेवाले धानको न रोप

कर केवल वैशाख वा जेठ महीनेमें ही उन्हें जोतवा कर उसमें भादवी वा कुआरी धान बोना उत्तम समझा जाता है ।

—०—

भूमि आबादका तात्पर्य ।

मिट्टी, जल, ताप और वायुके संयोगसे वृक्ष लतादिके बीज अंकुरित होकर एक अंश मूल रूपसे भूगर्भमें प्रवेश करते दूसरे अंशसे ऊपरको उठा करते हैं । तिसके अनन्तर मूल अंशसे भूगर्भस्थ शक्ति आकर्षित होकर वृक्ष लता तथा फसलादिकोंके पौधोंके काण्डमें उपस्थित हुआ करती है, क्रमसे यह शक्ति शाखा प्रशाखा और पत्ते आदिमें सर्वत्र व्याप्त हुआ करती है । किन्तु थोड़े जोते हुए वा पड़ती जमीनके उद्भिज्ज प्रभृतिके मूल (जड़) कड़ी मिट्टीको भेदकर शीघ्रही भूगर्भस्थ मिट्टीमें दूर तक नहीं फैल सकती । इस लिये फसल आदिके सम्पूर्ण अवयवोंमें तेजाकर्षणमें व्यक्तिक्रम होनेसे वे क्षुद्र अवयव धारण करती हैं ; इसी हेतु शाखा प्रशाखा अच्छी तरह फैल नहीं सकती, और फूलफलमें भी बहुत सा व्याघात होता है ; इसके सिवाय भिन्न जातीय उद्भिज्जोंके एकही स्थानमें वर्तमान रहनेसे परस्पर तेजाकर्षणमें विलक्षण विरोध उपस्थित हुआ करता है । इन सब दोषोंको दूर करनेके लिये खेतको अच्छी तरह जोतना उचित है ।

जमीनको जोतनेमें हलही मुख्य समझा जाता है । जोती हुई जमीनमें बीज बोनेसे उनकी जड़ें शीघ्रतासे निकलकर उस पोली मिट्टीमें दूर तक फैलकर अपने आहारार्थ पदार्थोंको सुगमतासे खींचा करती हैं, तथा विजातीय उद्भिज्ज अणुओंके अभाव रहनेसे निर्विरोध मिट्टीमेंसे निज आहारार्थ पदार्थोंको अपने मूल जड़ोंके द्वारा आकर्षण करके शीघ्रतासे बढ़ती और प्रचुर परिमाणसे फूल

फसल प्रसव करनेमें समर्थ होती हैं । बीज बोनेके बाद खेतमें जो वृक्ष वगैरह उत्पन्न होते हैं, वे भी शस्यादि फसलोंके लिये विशेष हानिकारक हैं ; इस लिये बोये हुये खेतमें उत्पन्न हुई घास वगैरह को खुरपी प्रभृतिसे निराकर दुरुस्त कर देना चाहिये ।

इस स्थलमें कितनेही लोग ऐसा कह सकते हैं कि, वस्तीके बाहिर बन (जङ्गलों) में जो सब उद्भिजादि दीखते हैं, वे सब प्रायः अनाबादी (बेजोती) भूमिमें ही उत्पन्न हुआ करते हैं । पर उनकी अवयव नितान्त तेजरहित नहीं होते और न उनमें फल फूलका विशेष अभाव ही दिखाई देता है । लेकिन किञ्चित विचारनेसे यह आपत्ति सहजमें दूर हो सकती है ; क्योंकि अनाबादी जमीनमें जो सब वृक्ष लतादि उत्पन्न होते हैं, उनमें अधिकांशही उद्भिज्ज दीर्घायु और बृहदाकार होते हैं ; उनकी सफलताका वक्त ४।५ वा उससे भी ज्यादा वर्ष जानना चाहिये । इतने समयके बीच वृक्ष लता प्रभृतिके मूलभाग पहिले बहुत सङ्कोच भावसे भूमिकी कड़ी मिट्टीको भेदकर नीचेकी ओर प्रविष्ट होते रहते हैं । सूर्यकी धूपसे जिस प्रकार ऊपरी भूमि शुष्क वा कड़ी होती है, भूगर्भकी मिट्टीके उस तरह सूखने वा कड़ी होनेकी सम्भावना नहीं है । सूर्यकिरणके अभावसे जङ्गलोंकी मिट्टी सरस और कोमल रहती है — इस कोमल मिट्टीको वृक्षमूल सहजमें ही भेदकर बहुत दूरी तक फैल जाते हैं ; और इसी प्रकार पूरी तरहसे भूमिके तेजको आकर्षण करके वे वृक्षादि खूब तेजस्वी हो जाते हैं तथा धीरे धीरे उनकी शाखा प्रशाखा चारों ओर फैलकर पूर्ण अवयवोंको प्राप्त होती हैं ।

वृक्षोंके नीचे जो सब घास प्रभृति उत्पन्न होती हैं, उनकी मूल (जड़ें) वृक्षादिकोंकी भांति समस्थानव्यापी नहीं होतीं । उद्भिज्जों के जाति विशेषकी प्रकृति अनुसार वृक्षादिकोंके मूल पांच छ हाथ

तथा उससे भी ज्यादा नीचे तक जमीनमें प्रविष्ट होती है । लेकिन तृण आदि छोटे छोटे पौधोंकी जड़ें आधे हाथसे लगाय दो हाथ तककी गहराई तक ही भूमिमें प्रवेश कर सकती हैं ; इस लिये मूल द्वारा भूमिके तेजको आकर्षण करनेमें किसी तरहसे परस्पर विरुद्धता नहीं होती । इसीलिये बस्तीके बाहिर जङ्गलोंमें तृणादि विविध पौधोंसे युक्त अनाबादी जमीनमेंही अनेक प्रकारके उद्भिज्ज वा दीर्घायु वृक्ष आदि उत्पन्न होते हुए देखते हैं । यदि इन वृक्षों के नीचेकी मिट्टी अच्छी तरह जोतकर वा फावड़ोंसे खोदकर नरम तथा पोली कर दी जावे, तो उन जङ्गली वृक्षादिकोंके तेजकी और भी अधिक बढ़ती हो, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । वृक्षोंके नीचेकी मिट्टी सदा कड़ी और समपृष्ठ हुआ करती है, वहां वर्षा-कालका पानी गिरतेही उस जगहकी मिट्टीके ऊपरसे बहकर स्थानान्तरमें चला जाता है ; इन वृक्षोंके नीचेकी मिट्टीको खोदकर पोली वा नरम कर रखनेसे उसकी कड़ाई दूर हो जाती है ; ऐसी मिट्टी में वर्षाकालका पानी पड़तेही उसे सहज रीतिसे भेदकर भीतर प्रवेश कर सकता है और उसके साथही साथ भूमिपृष्ठका कुछ तेज नीचेकी ओर जाकर वृक्षादि उद्भिज्जोंके तेजको और भी बढ़ा सकता है । अनाबादी जमीनमें जो सब तृण वगैरह उत्पन्न होती हैं, उन्हें हमलोग सदा एकही भावसे देखते आते हैं, हम उन्हें जिस अवस्थामें देख रहे हैं, उसेही उनका पूर्ण अवयव समझा करते हैं । लेकिन यथार्थमें यह बात ठीक नहीं है, क्योंकि उन्हीं तृणादिकोंके जोती हुई अर्थात् आबादी जमीनमें उत्पन्न होने पर जङ्गलोंकी जमीनकी अपेक्षा द्विगुन परिमाणसे बढ़ते हुए देखा जाता है । कृषिक्षेत्रोंमें जो सब तृण प्रभृति उत्पन्न होती हैं, उनके सम्बन्धमें अच्छी प्रकार ध्यान देकर देखनेसे इस विषयको प्रायः सब लोग भली भाँति समझ सकते हैं । जो हो, तृण और औषधी वाचक उद्भिज्जोंकी शक्ति

प्रकृति वृक्ष, लतादिकोंकी भांति नहीं होती उनकी जाति विशेषके अनुसार आयुका परिमाण भी थोड़ा अर्थात् दो महीनेसे लगाय एक वर्षतक है ; कहीं कहीं किसी किसी औषधी श्रेणीवाले उद्भिज्जों को अधिक समय भी जीवित रहते देखा जाता है । इतने थोड़े समयके बीच उनकी उत्पत्ति, वृद्धि, फलप्रसव और जीवनान्त सब कार्य पूर्ण हुआ करते हैं । औषधीवाचक उद्भिज्जोंके मूलगुच्छ भूगर्भस्थ मिट्टीमें जितनी दूरतक अधिकार करते हैं ; उनकी ऊपरी सीमा आधे हाथसे डेढ़ हाथ मात्र है । पहिले लिख आये हैं, कि भूमिपृष्ठ सूर्यकी धूपसे सदा सर्वदा शुष्क और कड़ा रहता है ; इस लिये औषधीवाचक उद्भिज्जश्रेणीकी मूलाधिकृत मिट्टी स्वभाविक कोमल न रहनेसे उनकी मूल (जड़ें) एकवारगी बढ़ नहीं सकतीं ; इसी हेतु स्वभाविक उत्पन्न औषधीवाचक उद्भिज्ज बहुतही अपूर्ण अवस्थामें निवास करते हैं और ऐसी उद्भिज्जश्रेणी अत्यन्त ऊंचे पहाड़ोंकी चोटीसे लगाय समुद्रतट पर्यन्त विस्तृत है । जोती हुई आवादी भूमिमें कपास, ईख, यव, मटर, चना, गेहूं, ज्वार, बाजरा प्रभृति जो सब शस्य उत्पन्न होते हैं, उन सबकोही प्रायः औषधीवाचक उद्भिज्ज कहते हैं ; इस सब उद्भिज्जश्रेणीकी जड़ें भी प्रायः समस्थान व्यापी हुआ करती हैं ; उन सबके एकस्थानमें रहनेसे भूमिके तेजकी आकर्षण करनेमें परस्पर विरोध होता है । इसके सिवाय भूमिको अच्छी तरह जोतके जब तक उसकी कड़ाईकी दूर नहीं किया जाता, तबतक ये सब औषधी नामवाची उद्भिज्ज भी तृणादियुक्त पड़ती जमीनमें अपनी मूल (जड़ों) को न बढ़ा सकनेसे बहुतही निर्वल होजाते हैं, निर्वल होनेसे उनके फलोत्पत्तिमें भी विघ्न उपस्थित होता है, जिससे कि फाइदाके पल्टे उल्टी नुक्सानी ही हुआ करती है । इसी तरहसे असावधान रहके औषधीवाचक उद्भिज्ज तथा फसलोंके उत्पत्ति विषयमें भलीभांति ध्यान न देनेसे

कृषकोंका मूलधन भी विनष्ट हुआ करता है । इस लिये फसलोंके आवादी सम्बन्धमें विशेष रीतिसे सावधान रहना चाहिये ।

जो मनुष्य बिना जोती हुई (अकर्षित) भूमिमें बीजोंको बोते तथा पौधोंको रोपण करते हैं । और योग्य समयमें शस्य क्षेत्रोंमें बोये वा रोपण किये हुए फसलोंके पौधोंकी उचित परिचर्या नहीं कर सकते, वे आशानुरूप फल प्राप्तिसे वञ्चित होते हैं ; बल्कि हानि उठानेसे वे उत्साह रहित हो जाते हैं और उत्साह भङ्ग होनेसे कार्यको पूरा नहीं कर सकते ; इस लिये लाभके बदले हानि होने से उनका हृदय शोकाग्निसे सदा जलता रहता है और वह शोक रूपी आग किसी प्रकार नहीं बुझ सकती । चाहे भूमि बिना बीज बोयेही पड़ी रहे, पर कृषकोंको उचित है कि, अनावादी वा अल्प कर्षित जमीनमें बीज न बोयें अथवा पौधोंको रोपण न करें ; नहीं तो लाभके बदले नुकसानीही होगी । कोई फसल बीजसे उत्पन्न होती है, कोई काण्डसे कोई, उभयज और कोई कोई त्रिविधज रूपसे उत्पन्न हुआ करती है ।

कोई कोई उद्भिज्ज ऐसे होते हैं कि, जिनकी बीजसे उत्पत्ति नहीं होती, उनके मूलकाण्डमें आंख होती है, उनसेही शाखा निकला करती है, उन्हें एक जगहसे उठाकर अन्य स्थानमें भी रोपण कर सकते हैं ; जैसे कि, ईख शकरकन्द पान इत्यादि ।

धान, गेहूँ, चना, सरसों, तीसी, यव, मटर, मक्का, ज्वार, बाजरा प्रभृति कितनीही फसलें बीजसे ही उत्पन्न हुआ करती हैं । शकर कन्द आदि मूल तथा शाखा दोनोंसे पैदा होते हैं । परवल आदिकी उत्पत्ति मूल, शाखा और बीज तीनोंसेही हुआ करती है, इन्हे त्रिविधज उद्भिज्ज कहते हैं ।

फसल तरकारी तथा वृक्ष लता प्रभृतिके फूल वा फलके भीतरमें कोई विशेष पदार्थ (दाना वा गुठली) बीज शब्दसे वर्णित हुआ

करते हैं। कितनेही बीज ऐसे होते हैं कि, प्रतिवर्ष विना बीय उनकी उत्पादिका शक्ति नष्ट हो जाती है और कितनेही बीजोंकी उपजाऊ शक्ति शीघ्र विनष्ट नहीं होती। क्योंकि ऐसा निश्चय हुआ है कि, एकसौवर्षसे ज्यादा बहुतेरे पुराने बीजोंसे भी फसल वा पौधे उत्पन्न हो सकते हैं। मूलोंके पुराने बीजसे पौधे उत्पन्न हो सकते हैं। पचास वर्ष तकके धान मिट्टी और जलके संयोगसे उत्पन्न होते हुए देखे गये हैं। तीसोंके बीज भी दो तीन वर्ष बाद तक बोनेसे अंकुरित हुआ करते हैं। जो हो, इस विषयमें बहुतेरे प्रमाण मिल चुके हैं कि, बहुतसी फसल प्रभृतिके बीजोंकी उत्पादिका शक्ति जल्दी विनष्ट नहीं होती; तभी पुराने दूषित बीजोंको बोना तथा रोपणकरना उचित नहीं है। निर्दोष नवीन ताजे बीजसे जैसे फसलोंके पौधे उत्पन्न होकर बढ़ते और यथा योग्य समय में फूल फल प्रदान करनेमें समर्थ होते हैं, अनेक कारणोंसे दूषित बीजों द्वारा उत्पन्न हुए पौधोंसे उस प्रकार फल फूल उचित समयमें प्राप्त होनेकी आशा नहीं रहती। इस लिये लोगोंकी उचित है कि, अच्छे ताजे बीजको ही भली भांति जोती हुई भूमिमें बोकर यथा उचित फावदा उठावें।

कृषिकारोंको उचित है, कि यथा समयमें खेतकी जोते, बीयें, निरावें, जलसे सींचें और फसलोंकी उचित परिचर्या करें। यह सत्य है कि, कृषिकार्यमें प्रवृत्त होकर कृषकोंको बहुत परिश्रम करना होता है; परन्तु खेतीके सब कार्य यथा योग्य समयके ऊपर ही निर्भर करते हैं; समय बीत जानेसे फिर शेषमें हजार तरहसे मिहनत करने पर भी कुछ फल मिलनेकी आशा नहीं रहती। शिल्प प्रभृति कितने अन्यान्य कार्योंमें कारीगरको बहुत कुछ कर्त्तव्य करनेकी अधिकार है। पर खेतीके ऊपर कृषकोंका कुछ विशेष कर्त्तृत्व नहीं दीखता; कृषिकारोंको सदा प्रकृतिका अनुगमन

कारके चलना होता है, प्रकृति जिस मार्गसे लेजाती है, कृषक लोग उसी रस्तेमें जाते हैं। प्रकृतिकी गतिका बिना अनुसरण किये कृषक लोग एक चरण भी नहीं चल सकते। इस लिये खेती करनेवालोंको चाहिये कि खेतीके सब कार्य उचित समय पर किया करें। समय पर चूक जानेसे पीछे हाथ मल कर पछिताना होता है। गुसाईं तुलसीदासने भी कहा है,—

“का वर्षा जब कृषी सुखाने ।

समय चूकि पुनि का पछिताने ॥”

इसलिये खेतमें जिन फसलोंके बीज बोनेका निश्चय किया गया हो, उसे पहिलेही योग्य समयमें जोतकर दुरुस्त रखे और उचित समयमें बीज बोये, तभी आशानुरूप कृषिकार्यके द्वारा कृषकोंको यथोचित लाभ होनेको सम्भावना रहती है।

प्रिय पाठकवन्द ! जो समयकी कदरको जानते हैं, वे कृषिकार्यको पूर्ण रीतिसे सुसम्पन्न कर सकते हैं। जिन्हें देश, काल और समयका ज्ञान नहीं है, वे कृषिकार्यमें व्यर्थ परिश्रम करके उसटी छानि उठाया करते हैं। इसलिये मनुष्यको उचित है कि, खूब सोच विचारकर यत्नपूर्वक फसलकी प्रकृति और देश कालके अनुसार खेतको बोवे और योग्य रीतिसे उचित समयमें सींचे, गोंडे, निरावे और यथायोग्य परिचर्या करे, क्योंकि उचित समय पर सोच विचारकर कार्य करनेवालोंको यथोचित लाभ होता है ; इसके विपरीत नुकसानों हुआ करती है। अतएव बुद्धिमान पुरुषकी चाहिये कि, समय पर न चूकें क्योंकि सब कार्य समय परही ठीक होते हैं ; उचित समयमें सूर्य तपता है; नदी बेगसे बहती है, शर्ही बसन्त, शिशिर, हेमन्त यथोचित समय पर होती हैं इसी प्रकार शीतकालकी फसलें ग्रीष्म और वर्षाकालमें नहीं होसकती, और न

ग्रीष्मकालके फलने फूलनेवाले उद्भिज्ज शीतकालमें ही भली भांति हो सकते हैं, कदाचित् कृत्रिम उपायसे कोई पुरुष यन्त्रादिके सहाय से शीतकाल और ग्रीष्मकालके उद्भिज्जोंके योग्य शर्ही और गरमी तय्यार करके शीत वा ग्रीष्मप्रधान उद्भिज्जोंको किसी स्थानमें उत्पन्न भी कर लें तो, ऐसे कृत्रिम रीतिसे उत्पन्न हुए उद्भिज्जोंसे स्वाभाविक उद्भिज्जोंकी अपेक्षा फल फूलोंमें बहुत कुछ तारतम्य हुआ करता है, इसके अतिरिक्त आमदनीकी अपेक्षा खर्च भी अधिक पड़ता है जिस कार्यमें व्यय अधिक हो और आमदनी कम हो, उस कार्यको करना बुद्धिमान कृषकको उचित नहीं है क्योंकि राजा टोडरमलने स्पष्टही कहा है।

“दाना खाय लींदको करे ।

अस रोजगार कृषक न करे ॥

खाय घास दूध बहु देय ।

ऐसा कार्य कृषक करि लीय ॥”

अर्थात् जिस खेतीमें खरचकी अपेक्षा आमदनी कम हो, और मिहनत भी ज्यादा लगती हो, वैसा कार्य बुद्धिमान कृषक न करे, जिस कृषिकार्यमें थोड़ी लागत लगे और मिहनत भी कम हो और सहजमें प्रचुर परिमाणसे अन्नादि फसल प्राप्त हो, ऐसी खेती कृषक को करना उचित है ।

जब समय पर खेती की जाती है और सब ऋतु भी अपने समय पर ठीक आती हैं, तब यथोचित अन्नादि फसलें उत्पन्न होती हैं । और ऐसा होनेसे अन्नादि अपनी स्वाभाविक प्रकृतिके अनुसार उत्पन्न होते हैं । उनमें किसी प्रकारका रोग इत्यादि, नहीं रहता फसलों के दाने रिष्ट पुष्ट हुआ करते हैं, जिन्हें खाके मनुष्य आदि प्राणी

भी मोटे ताजे और निरीग रखा करते हैं । जब प्रकृति बिगड़ जाती है अर्थात् योगायोग अतियोग और अयोगमें विकृति दीखती है अर्थात् जाड़ेके समयमें गरमी गरमीके समयमें शर्ही, उचित वर्षाके समयमें अतिवर्षा और उचित गरमीके समयमें अति गरमी वा यथोचित शीतके समयमें अत्यन्त शीत का प्रादुर्भाव होता है तब अन्नादि फसलें तथा प्राणियोंमें भी प्रकृतिविभ्राट उपस्थित हुआ करता है । ऐसा होनेसे समस्त संसार चराचर जगत रोग शोकसे परिपूरित हो जाता है अर्थात् जल, ऋतु, अन्न, वायु और तापकी विकृति अनुसार प्राणियोंके शरीरमें विविध प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं । जब ग्रीष्मकालके उद्भिज्ज शीतकालमें फूलने फलने लगते हैं, तब बुद्धिमान पुरुष पहलेही समझ जाते हैं कि, ऋतुमें अयोग उपस्थित हुआ है इसलिये चराचर प्राणियोंमें रोग शोककी भविष्य सूचना होरही है । तुलसीदासने भी कहा है कि,

“भयदायक खलकी अति बानी ।

जिमि असमयके कुसुम भवानी ॥”

अर्थात् जैसे खलोंके वचन भयदायक होते हैं, वैसेही योग्यकाल के फूल फल अयोग्य समयमें फूलने फलनेसे भविष्य काल अथवा वर्तमानके लिये महा भयकी सूचना किया करते हैं । यद्यपि इस दैवी उत्पातको निवारण करनेकी यथोचित उपाय आजतक निर्धारित नहीं हुई है, और कृषकको सदा सर्वदा प्रकृतिका अनुगमन करके चलना होता है, तथापि यथाशक्य बुद्धिमान कृषककी चाहिये कि, जहांतक हो सके देश, काल, बीज और फसलकी प्रकृति अनुसार सावधानीसे कृषिकर्म को करता रहे । अर्थात् जिस खेतकी मिट्टीमें जैसी फसलोंके बीज भली भांति उत्पन्न हो सकें, उन्हें वैसीही मिट्टीवाले खेतमें योग्य समय पर बीजकी यथोचित

फाड़दा उठावे । यह पृथिवी प्राणियोंकी उत्पत्ति सम्बन्धमें नित्या योनि समझी गई है और बीज पुरुषरूपसे वर्णित हुआ करता है ; क्षेत्र और बीजके सम्बन्धसे अन्नादि फसल वा प्राणियोंकी उत्पत्ति हुआ करती है । परन्तु खेतमें जैसा बीज बोते हैं, उस बीजके स्वभाव अनुसार उससे वैसीही फसलें उत्पन्न हुआ करती हैं, इसलिये बीज की प्रधानता सर्वत्र मानी जाती है । यद्यपि बीज प्रधान गिना जाता है, तथापि बीजके स्वभावानुसार उचित रीतिसे बिना संस्कार युक्त योग्य मिट्टीवाले खेतमें बिना बोये उससे यथोचित फलप्राप्ति की आशा नहीं रहती । भगवान् मनुने स्पष्ट कहा है कि, किसी स्थलमें बीजकी श्रेष्ठता रहती है और कहीं क्षेत्रकी विशिष्टता देखी जाती है ; पर जहां क्षेत्र और बीज दोनोंका समभाव रहता है, वैसी उत्पत्ति श्रेष्ठ गिनी जाती है । इसलिये फसल और मिट्टीकी प्रकृति अनुसार देश कालकी विचारकर खेतमें बीज बोना चाहिये अनेक जातिके बीजवाली फसलोंके लिये अलग अलग खेतको जोत कर दुरुस्त करनेकी आवश्यकता रहती है, निम्न लिखित ग्रामप्रवाद से संक्षेपमें उसका नीचे वर्णन करते हैं ।

“सौ मूल, पचास तूल, पचीस धान ।

बिना जोते पान ॥”

कोई कोई किसान इस उपरोक्त वचनका ऊपर कहे हुए शब्दके अनुसार केवल चारही फसलका वर्णन किया करते हैं, परन्तु यह अर्थ ठीक नहीं है । इस चार चरणवाले ग्रामीण कविताके बीच सम्पूर्ण शस्योंकी बात वर्णित है । मूल कहनेसे केवल मूलीही नहीं समझना चाहिये बल्कि मूल शब्दसे हल्दी, अदरक, आलू, ईख जमीकन्द, शकरकन्द प्रभृति सम्पूर्ण मूलजातीय उद्भिज्ज वा शस्यादि

श्रीषधियां समझी जाती हैं । जो कुछ पहले समयमें तुलादण्ड (तराजू) पर तौलकर बिकती थीं वा अब भी बिकती हैं जैसे कि, कपास, ईख, बैंगन प्रभृति इन सबको तूल शब्दके अन्तर्गत मानते हैं । ये फसलें प्रायः पचास बेर हलसे जोतकर खेतमें बीज बोनेसे अच्छी प्रकार उत्पन्न हो सकती हैं । अनेक प्रकारके धान्य जी, गेहूं प्रभृति धान शब्दके अन्तर्गत मानी गई हैं, ऐसी फसलों के बीज बोनेके लिये खेतको अनुमान पच्चीस बाह तक जुतवानेकी आवश्यकता रहती है । लताजातीय उद्भिज्ज माचही उपरोक्त “ग्राम प्रवाद” वाली कविताके बीच पान शब्दके अन्तर्गत माने गये हैं । इन लता जातीय उद्भिज्जों वा फसलोंके लिये खेतकी अधिक जोतनेकी जरूरत नहीं रहती, खेतको एकवार माच जोतकेही उड़द, मूंग, मोथी प्रभृति लता जातीय फसलोंके बीजको बो देते हैं और उनसे अच्छी पैदावार होती हुई देखी जाती है, बहुतेरे लोग खीरा, कांकाड़ी, लीचा, कुम्हड़ा सेम प्रभृतिके बीजको बिना जोतेही जमीनमें जहां तहां बो देते हैं और उनसे बेशुमार फल फूल और पत्ते पाते हैं । इसी प्रकार परवल, पान प्रभृतिकी आबादीमें भी जमीनको जोतनेकी जरूरत नहीं रहती । इन चार (मूल, तूल, धान और पान) शब्दके बीच प्रत्येक जातिके फसलोंके लिये भूमि आबाद करनेकी रीति वर्णित है ।

कृषिकारको कृषिकर्मके लिये भूमि अर्थात् क्षेत्रको दुरुस्त करना पहिला कार्य है, क्योंकि बिना भूमिकी मिट्टीको दुरुस्त किये उसमें हर एक फसलोंके बीजको बोनेसे सफलता नहीं होती ; जो कृषिकार भूमिकी मिट्टीकी प्रकृति, देश काल और फसलोंके बीज आदिकी प्रकृतिको विचार कर कृषिकार्यको उचित रीतिसे करता है, वह यथा समयमें शस्यादिकीके द्वारा यथोचित फावदा उठाकर अपना तथा अपने पोष्यवर्गोंका भरण पोषण करते हुए

सुख-सहित आनन्दसे अपना जीवन समय स्वतन्त्रता पूर्वक व्यतीत कर सकता है ।

यह कृषिकार्य बहुतही सरल अर्थात् सीधा व्यवसाय है, इस कृषिकर्ममें सदा सर्वदा धनकी हृष्टि हुआ करती है और हर एक मौसिममें ही कोई न कोई फसल उत्पन्न हो सकती है, इसलिये शास्त्रमें वर्णित है कि, “सुभिन्नं कृषके नित्यं” अर्थात् कृषिकारको नित्यही सुभिन्न रहता है, क्योंकि वह मिट्टीमें बीज बोके थोड़ेही समयके बीच कोई न कोई फसल अर्थात् शाक सब्जी गन्नादि उत्पन्न कर सकता है । इसलिये लोगोंको उचित है कि, ऐसे सरल सीधे कृषिकार्यमें योग्य परिश्रम करके यथोचित फाइदा उठावें ।

कृषिदर्पणका प्रथम भाग सम्पूर्ण ।

कृषि-दर्पण ।

द्वितीय भाग ।

द्वितीय अध्याय ।

कृषिकार्य्य ।

पृथ्वी मण्डल पर स्वाभाविक अनेक प्रकारके उद्भिज्ज उत्पन्न हुआ करते हैं । हम लोग प्रति दिन भात, रोटी, दाल, चीनी तथा अन्यान्य जो सब फल, मूल, शाक तरकारी प्रभृति खाकर जीवन धारण करते हैं, वे सब उद्भिज्ज पदार्थोंकी ही सम्पत्ति हैं । इसके सिवाय सूता और पाटके वस्त्र आदि जो कि, हम लोगोंके पहननेमें आते हैं, वे भी किसी उद्भिज्ज विशेषसे प्राप्त हुआ करते हैं । पर स्वाभाविक उत्पन्न उद्भिज्जोंसे जिस परिमाणसे उद्भिज्ज पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उससे सभ्य मनुष्यसमाजके सांसारिक व्यय भली भांति पूरे नहीं हो सकते ; इसलिये उनका अधिक फैलाव और तरकी करनेके लिये मनुष्योंको शारीरिक और मानसिक परिश्रम स्वीकार करके कृषिकार्य्यमें प्रवृत्त होना होता है । संक्षेपमें कृषिकार्य्य और उसके साधनका वर्णन करते हैं । कृषिकार्य्यका प्रधान साधन जमीनको हलसे जोतना है । इस देशमें बैल आदि पशुओंके द्वारा हल चलाया जाता है, इसलिये गवादि पशुओंको भारतवर्षकी प्रधान सम्पत्ति और हमारे जीवनके रक्षक तथा अन्नदाता कहनेसे भी अत्युक्ति न होगी । बोध होता है, प्राचीन ऋषियोंने इसी निमित्त गोजातिको परम पूजनीय कहके वर्णन किया है । जो हो, इस

समय इस भारतवर्षमें प्रायः सब ठौर जिस प्रकार कृषिकार्य्य हो रहा है, उसे देखकर सबको ही मुक्त कण्ठसे स्वीकार करना होगा । कि, गवादि पशुही इस कृषिकार्य्यके प्रधान अवलम्ब है ; उनका यत्नपूर्वक भरण पोषण, रक्षण करना हमारा मुख्य कर्त्तव्य कार्य्य है इसी प्रकार गो वंशकी उन्नति भी बहुतही बांछनीय है । क्योंकि गो बैलोंके समान महत् उपकारो और कृषिकर्मके प्रधान सहायक पशु जगतमें प्राय दूसरे नहीं दीखते । बैलोंके परिश्रमसे कृषिकार्य्य द्वारा उत्पन्न हुए अन्नादि खाकर मनुष्योंका शरीर दृष्ट पुष्ट और बलिष्ठ हुआ करता है । इसके सिवाय जन्म लेनेके अनन्तर दो ढाई वर्ष तक हम लोग माताका दूध पीया करते हैं । परन्तु गौका दूध जीवन पर्य्यन्त पीनेमें विरत नहीं होते । इसलिये जो लोग पिता माता सदृश्य शरीरके रक्षक और कृषिकर्मके प्रधान अवलम्ब गवादि पशुओंके सम्बन्धमें निर्दयी होकर किसी प्रकारका अत्याचार करते या उनके जीवनके ऊपर आघात करते हैं उन लोगोंको हम श्लेच्छके सिवाय हिन्दू (आर्य्य) नहीं कह सकते । जो ही, भारत-वर्षीय कृषकों तथा खेतीके प्रधान अवलम्ब गो जातिके प्रतिपालन करनेमें आर्य्य (हिन्दू) मातृको सदा यत्नशील होना उचित है । नीचे संक्षेपमें गो प्रतिपालनका विषय वर्णन करते हैं ।

—०—

गो प्रतिपालन ।

गवादि पशु घास प्रभृति खाके मनुष्योंका उपकार किया करते हैं । इसलिये वे जिस प्रकार सुखसे आहार करके अपना जीवन समय बित्ता सकें, उस विषयमें हम लोगोंको विशेष दृष्टि रखना और सावधान रहना तथा यत्नशील होना उचित है । जब गो बैलोंकी

चरवाहे चराकर सन्धाके समय घर पर लेआते हैं, तब उन्हें भूसा भूसी खली प्रभृतिके संयोगसे सानी बनाकर खिलाना चाहिये। सबेरेके समय भी इसी प्रकार जलके मेलसे गो बैलोंको सानी खाने को देना चाहिये। प्रतिदिन यथा उचित परिमाणसे कच्ची घास खिलाना उचित है। बीच बीचमें जौ, मटर, चना प्रभृति अन्न भी थोड़ा बहुत पकाके गो बैलोंको देना चाहिए। भातका मांड़ और आटेका धोवन भी गौओंके लिए विशेष फायदेमन्द है। महुआ और गाजर खिलानेसे गौओंका दूध अधिक परिमाणसे बढ़ता है और उनके बच्चे छष्ट पुष्ट हुआ करते हैं। सत्तू और गुड़को जलके संयोग से गो बैलोंको खिलानेसे वे छष्ट पुष्ट हुआ करते हैं। इसी प्रकार गो बैलोंकी सेवा करनेसे वे बलवान होकर मनुष्योंके अधिक उपकार किया करते हैं। गवादि पशुओंको रातके समय कुछ खिलानेसे अधिक फाइदा होता है। दिनमें अधिक परिमाणसे खिलानेसे जो फाइदा होता है, रातमें थोड़ा भी आहार करानेसे वैसाही उपकार हुआ करता है। इसका तात्पर्य यह है कि, दिनमें गवादि पशु चाहे कितनाही आहार क्यों न किये हों, रातके समय उन्हें कुछ न कुछ अवश्य खानेको देना चाहिए। रातमें उपवास करनेसे गवादि पशु अत्यन्त दुबले हो जाते हैं, इसलिए उन्हें रातके समय भूखा रखना किसी प्रकार उचित नहीं है।

वसन्त ऋतुमें एक पहर रात रहते गो बैलोंको मैदानमें ले जाकर ओसयुक्त घास वगैरः चराना चाहिये, ऐसा करनेसे गवादिकों का स्वास्थ्य ठीक रहता है। इसी प्रकार जब घास वगैरः चरके वे घर आवें, तब उन्हें सानी प्रभृति खिलाकर अच्छे स्थानमें विश्राम कराना चाहिये, क्योंकि गो बैलोंके विश्रामस्थान खराब होनेसे उन्हें बहुत कष्ट हुआ करता है। साधारण पशु समझ कर गोजाति के रक्षण पोषण पालन करनेके सम्बन्धमें उपेक्षा करना उचित नहीं

है । उनका विश्रामस्थान सब तरहसे साफ सुथरा रहना चाहिये । गवादि पशुओंके सोनेके लिये गोशाला ऐसा होना चाहिये कि, सोनेपर परस्पर शरीर स्पर्श न हो ; गोशालामें यथेष्ट वायु प्रविष्ट होनेके लिये मार्ग भी रखना उचित है, क्योंकि वायुके आने जानेके लिये यथेष्ट मार्ग न रहनेसे गोशालाका वायु भली भांति परिवर्तित नहीं हो सकता ; और परस्पर श्वास प्रश्वास मिश्रित दूषित वायुसे पशुओंके अनेक तरहके रोग होनेकी सम्भावना रहनी है ; इस लिये गोशालाके चारों ओर खिड़की वा झरोखा रखना उचित है ।

गोबर और गोमूत्र भी गोशालाके बहुत निकट न रखना चाहिये गोशालाको प्रतिदिन साफ रखने तथा उसमें राख छींट देनेसे गवादि पशु सुखपूर्वक विश्राम करते हैं । शीतकालमें गवादिकोंकी शीत निवारण करनेके लिये गोशालाके द्वारपर अग्निकुण्ड रखना चाहिये ; ग्रीष्मकालके सिवाय अन्योन्य सब ऋतुओंमें ही मच्छड़ मक्खी भगानेके लिये आगमें थोड़ीसी धूप (राल) डालकर सन्ध्या सबेरे नित्य धूआं देना चाहिये । धूआंसे गौवोंके शरीरमें दंशन करनेवाले मच्छड़, मक्खी दंशादि भाग जाते हैं और गवादिकोंकी स्वास्थ्यरक्षाके लिये भी सन्ध्या सबेरेके धूप (राल) के धूआंसे विशेष फाइदा हुआ करता है ।

शीतकालमें गोबौलोंकी शींगमें तेल लगा देनेसे उन्हें जाड़ा कम लगता है । पर यदि बारह महीने गो-बौलोंकी शींगमें तेल लगाया जाय, तो उनका शरीर खूब आरोग्य रहता है । वर्षाकालके सिवाय अन्योन्य ऋतुओंमें आठवें दिन गवादि पशुओंका शरीर जलसे धो देना उचित है, और प्रति दिन उनके देह पर किलनी, मक्खी, मच्छड़ प्रभृति न बैठने देवे । वर्षाकालमें भी गवादि पशुओंका शरीर धो देनेसे प्रायः उपकारके सिवाय हानि होनेकी सम्भावना नहीं रहती ।

हमारे देशमें गवादि पशुओंके पीड़ित होने पर उन्हें पृथक् स्थानमें रखनेकी व्यवस्था नहीं की जाती। वे सब पीड़ित (रोगी) पशु गोशालामें निरोग पशुओंके साथ एकत्र रखे जाते हैं, इससे छूतसे होनेवाले रोग संक्रामक होकर महामारी उपस्थित करते हैं, जिस ग्राममें पशुओंके बीच बसन्त (चेचक) रोगकी उत्पत्ति होती है, उस ग्रामके प्रायः सम्पूर्ण पशुही सरके कालके गालमें चले जाते हैं। देवात् यदि किसी बैल वा गायके खुरमें रोग उत्पन्न होता है, तो फिर उस ग्रामके और दूसरे एक भी गोबैलोंको इस रोगसे छुटकारा नहीं मिलता। इसही प्रकार पश्चिमा प्रभृति रोग भी संक्रामक होकर ग्रामके ग्राम और कभी कभी एक एक प्रदेश भरमें महामारी उपस्थित करते हैं। परन्तु दुःखका विषय यह है कि, इस देशके पशुपालक लोग प्रायः उन रोगोंको दूर करनेके लिये कुछ उपाय नहीं करते। पशुओंके पीड़ित होने पर उनकी भली भाँति चिकित्सा तो होती ही नहीं और किसी नियमके अधीन भी उन्हें नहीं रखा जाता; यह बहुत ही अवैध कार्य है।

रोगी गवादि पशुओंको गोशालामें न रखकर तथा पशुओंके साथ एकत्रित करके मैदानमें चरनेके लिये न भेजके उन्हें पृथक् किसी सूने स्थानसे रखना चाहिये। लेकिन पीड़ित पशुओंको स्वतन्त्र रीतिसे पृथक् रखनेके लिये इस देशमें कहीं रुग्ण पशुशाला नहीं बनती हैं। प्रत्येक ग्रामसे कुछ बाहिर एक एक रुग्ण पशुशाला बना रखना ग्रामीण कृषकोंका मुख्य कर्त्तव्य कार्य है; हर एक पशुशालामें प्रथम रोगाक्रान्त पशुओं, तथा निरोग होते हुए पशुओंको रखनेके लिये पृथक् पृथक् स्थान बनाना उचित है। ग्राम के बीच जब कोई गो-बैल बीमार हो, तो उसे रुग्ण पशुशालामें लेजाकर रखे और उसकी सेवा चिकित्सा करावे, जबतक रोगी गो बैल आराम न हो जाय, तबतक उन्हें उस रुग्णपशुशालासे अपने

घरपर लेजाना गृहस्थोंको उचित नहीं है । किसी गो बैलको भी उस रंगन पशुशालाके निकट न जाने देना चाहिये, इस विषयमें गृहस्थों तथा कृषकोंको विशेष रीतिके सावधान रहना उचित है । ऐसी आशा भरोसा नहीं रहती कि सम्पूर्ण रोगी पशुमात्रही रोगसे छूटेंगे ; इस लिये संक्रामक रोगसे मरे हुए पशुओंको किसी एक स्थानमें जमीनके भीतर गाड़ देना बहुत ही जरूरी कार्य है, नहीं तो जहां तहां उन मृत पशुओंको फेंक देनेसे चारों ओर उस संक्रामक रोगके फैलनेकी सम्भावना रहती है ।

मृत महात्मा प्यारीचरण मित्रके यत्नसे पशुओंके विषयमें “अत्याचार-निवारणी सभा” प्रतिष्ठित होनेके अनन्तर हमारी ब्रिटिश गवर्नमेण्ट पशु रक्षाके सम्बन्धमें विशेष मनोयोगी हुई है । कलकत्ता तथा मुफ्फसलके प्रधान प्रधान स्थानोंमें इस सभाकी शाखा सभा प्रतिष्ठित हुई हैं और प्यासे पशुओंको जल पिलानेके लिये रास्तोंके किनारे प्रकाश्य जलाधार स्थापित हुए हैं । गवादि पशुओंके सम्बन्धमें अत्याचार निवारण करनेके लिये जो राजविधि तैयार हुई है ; वह भी जगह जगह प्रचलित होती देखी जाती है । कई वर्ष व्यतीत हुए कलकत्ता गजटमें वङ्गाल गवर्नमेण्टकी तरफसे इस पशु चिकित्सा के सम्बन्धमें एक प्रयोजनीय मन्तव्य प्रकाशित हुआ, और उसके साथही साथ एक अङ्गरेजी पुस्तक तथा उसका देशीय अनुवाद भी साधारण लोगोंको बेदाम बांटा गया । गवादि पशुओंकी चिकित्सा का पूरा विवरण हम पशु चिकित्सा नाम पुस्तकमें विस्तारसे लिखेंगे, इस स्थलमें केवल पशुओंके सम्बन्धमें गवर्नमेण्टका मत प्रकाशित करते हैं ।

गवर्नमेण्ट कहती है कि, पशुओंके बीच टीका देनेकी रीति प्रचलित होनेसे उनके अनेक प्रकारके रोगोंकी कमी होगी । पञ्जाब में समय समय पर पशुओंके बीच भयानक महामारी उपस्थित

होनेसे बहुतेरे गौ बैल मर जाती है, इसके सम्बन्धमें वहांकी गवर्न-
मेण्टने भारत गवर्नमेण्टके निकट इस टीकाकी रीतिको चलानेको
लिख भेजा, इण्डिया गवर्नमेण्टने इसके सम्बन्धमें विलायतमें स्टेट
सेक्रेटरीको लिखा था । फ्रान्सदेशकी प्रसिद्ध कृषितत्त्वविद पण्डित
एम्, एल्, पाष्टर साहबने इसके बारेमें बहुत कुछ अनुभव किया है ।
और कहा है कि, टीकाके द्वारा पशुओंका बहुतही मङ्गल होगा ।
वह दो सप्ताह तक पशुओंको टीका देकर विशेष कृतकार्य
हुए । १८८१।८२ और ८३ तीन वर्षोंके बीच परीक्षा करने
बाद उनका सब तरहका सन्देह दूर हुआ । पाष्टर साहबने हिसाब
लगा कर देखा कि पांच लाख टीका दिये हुए गौबैल और घोड़ोंके
बीच हजार पीछे एकसे ज्यादा पशु नहीं मरे । उनके मतमें हिन्दु-
स्तानमें पशुओंके बीच टीका देनेकी रीति प्रचलित होनेसे यहांके कृषि-
कारोंके सम्बन्धमें पूरी उन्नति होगी । पाष्टरसाहबने कहा है कि, किसी
बुद्धिमान पुरुषको इस कार्यको सीखनेके लिये फ्रांस देशमें भेज देना
उचित है ; शिक्षा समाप्त होनेपर भारतमें इसका कार्यालय
खोलना होगा ; उसमें पन्द्रह हजार मुद्रासे ज्यादा खर्च पड़ना
सम्भव नहीं होता है । जर्मनीदेशमें भी इस प्रकार टीकाका उत्तम
फल हुआ है ।

वियना नगरमें इसकी फाइदेमन्दी विशेष रीतिसे अनुभव की गई
है । “१८८० ई० में १८ फरवरीको पशुओंके बीच यहां पर टीका
देनेकी रीतिकी परीक्षा हुई थी । जिन भेड़ आदि पशुओंको टीका
दिया गया, उन्हे वसन्त (चेचक) की बीमारी नहीं हुई । पछले वर्षमें
यह रोग तीन बेर दिखलाई देता था” ।

बङ्गदेशी गवर्नमेण्टने पाष्टर साहबकी इस रीतिकी अनुमोदन
करके उत्तम कार्य किया है, हमारे देशके लोगोंको भी एक बेर इस
की परीक्षा करनी उचित है ।

बैलकी तीनवर्षकी उमरमेंही इस देशके कृषक हलमें जोता करते हैं । यद्यपि पहले वर्ष उससे पूरी मिहनत नहीं कराई जाती, तो भी यह नियम प्रशंसनीय नहीं है । चार वर्षके उमरमें बैलको हल जोतना सिखाकर पांचवें वर्ष उससे पूरी मिहनत लेनेसे उतना दोष नहीं होता । इस देशमें गौ बैल दिनोंदिन अत्यन्त तनक्षीण हो रहे हैं पचीस तीस वर्षसे पशुओंकी ऐसी दुर्दशा उपस्थित हुई है, इससे कृषिकार्यकी बहुतही अवनति हो रही है । इस समय जिस प्रकार गौ वंशकी उन्नति हो, इस विषयमें गृहस्थ मात्र तथा कृषिकारोंको विशेष रीतिसे यत्नवान होना चाहिये ।

कोई कोई अनुमान करते हैं कि, इस देशके दुर्बल गोवंशसे हृष्ट पुष्ट, बृहत्काय, बलवान बैल उत्पन्न होना सम्भव नहीं है; परन्तु ऐसा अनुमान बहुतही भ्रमात्मक मालूम होता है । यह तो सब ही जानते हैं कि, आषाढकालमें जो सब बैल दागकर छोड़ दिये जाते हैं, वे बाह्यकालसे यथच्छा आहार बिहार करके तीन चार वर्षके बीच जङ्गली बैलकी भांति बृहत् शरीरवाले तथा बलवान हो जाते हैं; इस लिये विशेष यत्न करनेसे अन्यान्य गोबैल उस प्रकारसे क्यों न उन्नत होंगी । एक ही पुरुषकी तीन चार वर्षके बीच जब ऐसी अवस्था दीखती है, तब तीन चार पुरुष (पुस्त) तक विशेष रीतिसे यत्न किया जाय, तो इस दुर्बल गोवंशसे बृहत् शरीरवाले बलवान गौ बैल उत्पन्न होंगी, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।

हिन्दूशास्त्रके मतसे आषाढके समय षांड दागकर छोड़ देते हैं, तथा अन्यान्य समयमें भी हिन्दूलोग देव देवी प्रभृतिके नामसे षांड छोड़ा करते हैं । इस प्रकार षांड छोड़नेसे क्या उपकार होता है; उसे प्राचीन आर्य ऋषियोंने भली भांति समझा था । जो हो, इस देशमें जबतक ख्रीष्टधर्म और फरासी धर्मका प्रचार नहीं हुआ था, तबतक षांडके ऊपर कोई किसी प्रकारका अत्याचार नहीं करता

था। उस समय सब षांड इच्छानुसार स्वच्छन्द रीतिसे विचरते तथा घास प्रभृति चरके ऐसे हृष्ट पुष्ट और बलिष्ठ हो जाते थे कि, गुजराती हाथीके साथ ऊंचाई, मुट्ठाई, बड़ाई प्रभृतिमें अधिक प्रभेद नहीं मालूम होता था ; लेकिन अब इस देशमें षांडकी ज्यादा संख्या नहीं दीखती । अधिकांश षांड ही गवर्नमेंण्टके द्वारा पकड़े जानेसे म्युनिसिपैलिटीकी मैलागाड़ीमें जोते जाते हैं और कितनोंको अवसर-पाके मुसलमान, क़स्तान, प्रभृति उदरसात् करते हैं ! इससे गोवंशका कितना अनिष्ट हो रहा है, उसे लिखकर शेष नहीं किया जा सकता । षांडोंके अभावसे अनेकांशमें गोवंशकी अवनति हो रही है अर्थात् गोवंशकी दिनीं दिन बढ़ती न होकर बल्कि घटती हो रही है ; और अधिकांश स्थलोंमें ही हलवाहक दुर्बल बैलोंके औरससे गौवोंके बच्चे उत्पन्न होकर बकरोंकी तरह छोटे आकार-वाले दिखाई देते हैं ।

इन सब कारणोंसे विदित होता है कि, षांड छोड़नेकी रीति बहुत ही उपकारक समझ कर प्रचलित की गई है ; इस लिये षांडोंके ऊपर जिससे कोई हस्तक्षेप न कर सके, और वे सुख-स्वच्छन्दता सहित यथेच्छा विचरण कर सकें, उसकी लिये सबको यत्नवान होना उचित है । अर्थात् षांडोंके सिवाय हलचालक बैलोंके औरससे गोवंशकी उन्नति होना सम्भव नहीं है । केवल इतना ही मत समझो कि, अर्थात् षांडोंके औरससे ही गोवंशकी उन्नति होगी, बल्कि उन्हें उपयुक्त रीतिसे आहारादि देना उचित है । हम जानते हैं कि, इस देशके गोबैल वारही महीने अच्छी तरह पेटभर खानेकी नहीं पाते, तिस पर भी उन्हें इतने ज्यादा परिश्रम करना होता है ; यह बड़े ही दुःखका विषय है । कालक्रमसे इसका फल भी बहुत बुरा हो गया है ; बैल ऐसे दुर्बल होगये हैं कि, दिन भरमें एक हलसे एक बीघा जमीन भी नहीं जीत सकते, इस लिये गोबैलोंको सदा सर्वदा जिस

प्रकार पेट भर आहार मिल सके, उसका उचित प्रबन्ध करना बहुतही आवश्यकीय कार्य है । तथा रुग्ण गोबैलोंकी यथा उचित चिकित्सा करानी चाहिये ।

पूर्वदेशमें एक सम्प्रदाय गो चिकित्सक कहके प्रसिद्ध है । वह वर्षके बाद शीतकालमें गो चिकित्साके लिये जगह जगह विचरण किया करती है ; उसकी चिकित्सा प्रणाली भी खराब नहीं है । वह रुग्ण गोबैलोंको देखते ही रोगका सम्पूर्ण विवरण मुखसे कहती तथा प्रत्यक्ष दिखा सकती है ; उसकी औषधिसे गवादि पशु प्रायः रोगसे आराम हुआ करते हैं । दुःखका विषय यह है कि, वह दूसरे लोगों को गो चिकित्सा प्रणालीकी शिक्षा नहीं दिया चाहती ।

जो हो, इस समय इस महदुपकारी गोवंशके ऊपर चारों ओर से विपत उपस्थित हुई है ; विना चिकित्साके चेचक तथा पश्चिमा प्रभृति रोगोंसे अनेक गोबैलोंकी इकबारगी मृत्यु हो जाती है । इसके सिवाय कसार्दियोंके हाथसे भी प्रतिवर्ष बहुतेरे गोबैलोंकी अप-मृत्यु हुआ करती है । और बीच बीचमें चमार लोग भी विष खिला कर अनेक गोबैलोंको मार डालते हैं । इस देशमें गोबैलोंके मरनेसे उनका चमड़ा चमार जाति निकाल लिया करती तथा मृत गोबैलों का मांस भी खाया करती है ; जिस समय गोजातिके जीवनके ऊपर किसी प्रकारकी आपदा नहीं रहती उस समय चमारोंका व्यवसाय मन्द हो जाता है, ऐसे समयमें चमार लोग एक प्रकारका विष इधर उधरसे खरीद लाते हैं और किसी वस्तुमें मिला कर गोबैलोंको खिला देते हैं ; सुना जाता है कि, इस प्रकार पशुओंको विषका खिलाना अब कुछ कम होगया है । इसके सिवाय चमार लोग और भी एक प्रकारकी विषगोली बना रखते हैं और उसे गो बैलोंके गुह्यस्थलमें किसी लकड़ी प्रभृतिसे भीतर प्रविष्ट कर देते हैं ; इस विषगोलीके गुह्यस्थलमें प्रवेश करानेके थोड़ी देरके बाद ही

गोबैलीकी मृत्यु हो जाती है ; चमड़ा निकालनेके समय चमार लोग फिर उस विषगोलीकी निकाल लिया करते हैं । गोबैलीके पेटमें इस विषके प्रवेश करनेसे पश्चिमारोगकी भांति सम्पूर्ण बाह्य लक्षण प्रकाशित हुआ करते हैं । एक और विविध रोग, दूसरी तरफसे कसाई, मुसलमान, कस्तान तथा चमारीके द्वारा गोवंश क्रमसे निर्मूल हुआ चाहता है । यदि गोबैलीके सम्बन्धमें यह आपद शीघ्र दूर न होगी, तो जल्दही इस स्वर्णभूमि भारतवर्षमें दूध घी आदि गोरसका अभाव तथा हलवाहक बैलीके न मिलनेसे आर्य्य सन्तान तनक्षीण, हौन, मलिन, दीन और निर्बल होकर क्रमसे स्वतः ही विनष्ट होजायगी ; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।

चमार जातिके सिवाय आर्य्य (हिन्दू) वंशमात्रही गो रक्षामें सर्वदा यत्नशील तथा गो प्रतिपालनमें अनुरक्त और विशेष पारदर्शी हैं । हिन्दू लोग मनुष्य जीवनकी अपेक्षा गो जीवनको अधिक आदरणीय धन्य और पूजनीय समझते हैं, यदि इस समय मुसलमान कस्तान प्रभृति भी हिन्दूजातिकी भांति गोरक्षामें यत्नशील हों तो भारतका बहुतही हित हो और उनके आहार विहारमें भी कोई हानि होनेकी सम्भावना नहीं है । इस देशमें अनेक प्रकारके अन्न, फल, मूल, दूध, घी तथा अनेक प्रकारके पशु पक्षी प्रभृतिके मांस प्रचुर परिमाणसे मौजूद रहने पर भी गोहत्या करनेकी क्या आवश्यकता है । हमारी समझमें गोरक्षासे विशेष फायदा होनेकी सम्भावना है, क्योंकि एक गज अपने जीवन समय भरमें ६।७ बर ब्याती हैं, उसमें से यदि चार बछिया और ३ बछवा हों, तो उनसे कितना लाभ होना सम्भव है ? ईश्वरने जितने जीव जन्तु जगत्की बीच उत्पन्न किये हैं ; उन्हें ठुथा नष्ट न करके संसार का उपकार कराना मनुष्य मातृका प्रधान कर्त्तव्य कार्य है । अब एकही गोके दूध आदिका हिसाब लगाकर देखिये कि, पन्द्रह वर्षके बीच

कितना लाभ होता है ? पन्द्रह वर्षके बीच यदि गऊ ७ बेर व्यावे और बछिया बछवाके अतिरिक्त प्रति दिन १ सेरके हिसाबसे उसका दूध मान लें, तो एक वर्षमें नव मन दूध होता है और सात बेर व्याने के अनुसार सात वर्षमें ६३ मन दूध हुआ । यदि इस ६३ मन दूधकी खीर बनाई जाय, तो कमसे कम २१ मन खीर तैयार होगी । यदि यह २१ मन खीर मनुष्योंको खिलाई जाय, तो उससे कमसे कम १००० एक हजार आदमियोंकी भोजनसे दृष्टि हो सकती है ; अब यदि इतनेही समय अर्थात् उस गऊके जीवन काल भर तक उसकी सन्ततियोंके दूध घीका हिसाब लगाया जाय, तो उससे कितना लाभ होनेकी सम्भावना है । अर्थात् चार पांच वर्षकी अवस्थाकी होनेसे ही गोवं व्याने लगती हैं, इस प्रकार यदि वे चार बछियां चार२ बेर अपनी माताके जीवन कालमें ही व्यावे तो उनके दूधसे भी प्राय तीन हजार मनुष्योंकी दृष्टि हो सकती है, और इनके बछड़े जो कि, इतने समयमें आठ दसके अनुमान उत्पन्न होंगे, उनसे कृषकोंके प्राय चार पांच हल चल सकते हैं, गो बैल ही कृषकोंके प्रधान बल और धन हैं । पहिले समयमें जब तक इस भारतमें सुसलकानोंका राज्य नहीं था, तब तक यहांके कृषकोंको खाने पीने का किसी तरहका अभाव नहीं था, भारतमें गोवं प्रचुर परिमाणसे उपस्थित थीं, सम्पूर्ण हिन्दू (आर्य) सन्तान गौ को माता तुल्य समझते थे, तथा अब भी सदैव ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य प्रभृति हिन्दू (आर्य) सन्तान गोवैलोंको देवता तुल्य पूज्य समझते हैं और गौ रक्षामें सदा सर्वदा उद्योगी रहते हैं । सबेरेके समय निद्रासे जागने पर गौका दर्शन करनेसे हिन्दू लोग अपनेको बहुत ही कृतकृत्य पुण्यकर्मा तथा भाग्यशाली समझते हैं, यहां तक कि, गोवैलोंके मूत्र और गोबर तकको परमपवित्र मानते हैं ; यदि कोई हिन्दू सन्तान खाद्याखाद्य स्नेच्छादिके साथ-साथ लिये हो, तो उसे गऊ

का पञ्चगव्य पिला कर शुद्ध कर लेते हैं ; जो गोमूत्र, गोबर, गोदुग्ध, गोघृत और गोदधि इन पाँचोंके मेलसे बनता है, जो कि पान करानेसे बहुतेरे स्नेच्छ संसर्गी पतित लोगोंको भी पवित्र कर देता है । हिन्दुओं (आर्यों) के प्राचीन धर्म ग्रन्थों तथा इतिहास और पुराणादिमें मुक्त कण्ठसे गौवोंकी महिमा गाई है । प्रिय पाठक ! यथार्थमें गौवोंके समान हिन्दुओंके लिये महत् उपकारी पशु इस सम्पूर्ण चराचर जगत्में दूसरे नहीं दिखार्हे देते । हिन्दुओंके धर्म कर्म, जन्म, विवाह और मरणकालमें सब दानोंसे बढ़कर गोदान करनेकी रीति इसी लिये सदा सर्वदासे प्रचलित है । हिन्दु गृहस्थ मात्रके घर घर गोप्रास निकालनेकी रीति अब तक प्रचलित है, अर्थात् निज सन्तानोंकी भांति गोरक्षा करना हिन्दुओंका प्रधान धर्म गिना जाता है । किम्बदन्ती प्रसिद्ध है कि, गोरक्षाके लिये सदा सर्वदासे आर्य सन्तान तत्पर रहती है ; महाभारतमें अर्जुन की कथा प्रसिद्ध है कि, गोरक्षाके लिये उन्होंने बारह वर्षका बनवास भी स्वीकार किया ; पर गोरक्षासे सुख न मोड़ा ; इसी प्रकार गौके सम्बन्धमें अवन कृषि प्रभृतिकी बहुतेरी कथा प्रसिद्ध हैं । अभी थोड़े ही दिनोंकी बात है कि, हमारी ब्रिटिश सरकारकी ओरसे यज्ञाकी रीति नीति और धर्म कर्मके बारेमें अनभिज्ञ कई एक कर्मचारियों ने १८५७ ई० में गौकी चर्बीसे बना हुआ बन्दूकका पल्लोता हिन्दु सिपाहियोंसे बन्दूक पर लगानेको कहा था, जिसे सिपाहियोंने लगाना अस्वीकार किया, कहते हैं कि, उसमें जब उनके साथ कड़ार्ह का वर्तव किया गया, तब सिपाहियोंने कहा कि,—

“भलो प्राण जो धर्मके हित जाहूँ ।

न टोटा कटै, शीश चाहे कटाहूँ ॥”

अर्थात् यदि धर्मके लिये सिर चला जाय, तो बहुत ही अच्छी

बात है ; यह टोटा नहीं कटेगा, चाहे हम लोगोंका सिर कट जाय । इसका परिणाम यह हुआ कि भयानक गदर होगया । जिसे सम्पूर्ण संसारके विज्ञ लोग भली भांति जानते हैं, जिसमें लखों हिन्दू, अंगरेज और मुसलमान कटकर मर गये इत्यादि ।

जो हो, यद्यपि हिन्दूमात्र गोरक्षाको परम धर्म समझते हैं और यथा शक्य गौरीके पालन पोषणमें सदा सर्वदा अब भी कटिबद्ध रहते हैं ; तथापि जहांतक हो सके, इस विषय में विशेष उद्योगी होना बहुत ही उचित और प्रयोजनीय कार्य है ; क्योंकि यह उनका धर्म ही है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।

हिन्दू (आर्य) मात्रको उचित है कि, इस विषयके लिये अपने महाराज अर्थात् ब्रिटिश सरकारके पास गोरक्षाके सम्बन्धमें निवेदन करें और यह भली भांति दर्शावे कि, गो हत्याकी अपेक्षा गोरक्षासे प्रजामात्रका बहुत ज्यादा उपकार होना सम्भव है । अर्थात् एक ही गऊके जीवनकाल भरमें उसके दूध, घी प्रभृतिसे प्रायः चार पांच हजार आदमी भली भांति तृप्त हो सकते हैं और उसके बछड़े आदि बच्चोंसे भी कृषि कर्म प्रभृतिके लिये बहुत ही फाइदा पहुंचता है । इसके विपरीत एक गौका बध करनेसे ज्यादासे ज्यादा गोमांसभक्षी पचोस तीस आदमियोंको एक रोज तृप्ति हो सकती है और उसके द्वारा जो उत्पत्ति उसके सन्ततियोंसे होनी सम्भव थी, वह एक-वारगी निरुद्ध होजाती है और इससे प्रजाका बहुत ही अनिष्ट हुआ करता है, जिस कार्यमें गोहत्याके बदले गोरक्षामें सैकड़ों सहस्रों गुना फाइदा ज्यादा है, उस कार्यको करना राजा और प्रजा मात्रका मुख्य कर्तव्य है ; हम आशा करते हैं कि, इक्कीश करोड़ हिन्दू प्रजाकी प्रार्थना हमारी ब्रिटिश सरकार गोरक्षाका लाभ समझ लेनेसे अवश्य पूरी करेगी । हिन्दू (आर्य) मात्रको उचित है कि, गोरक्षा की फाईदेमन्दीको सम्पूर्ण बाले सरकारको अच्छी तरह विदित करें।

यद्यपि भारतहितैषी बहुतेरे धार्मिक गोरक्षक आर्य (हिन्दु) सन्तानीके उद्योगसे स्थान स्थानमें गोरक्षिणी सभा स्थापित हुई हैं ; तथापि इतनेसे ही सन्तुष्ट न रहना चाहिये ; बल्कि अधिक उद्योग और उत्साह सहित पूर्णरीतिसे गोरक्षामें तत्पर रहना हिन्दु मातृका मुख्य कर्त्तव्य कार्य है । गोशौके रक्षण, पालन, पोषणमें विशेष रीतिसे ध्यान देना उचित है । गवादि पशुशौके चरनेके लिये घास प्रभृतिके लिये स्वतन्त्र मैदान वा बारी बगोचा तथा उपवन और वन बहुत ही प्रयोजनीय हैं । पूर्वकालमें जब इस देशमें गवादि पशुशौकी कमी नहीं थी, उस समयमें उनके चरनेके लिये प्रचुर परिमाणसे जमीन पड़ती पड़ी रहती थी, तथा ठीर ठीर जङ्गल प्रभृति मौजूद थे और इस देशमें गोभक्षक क्लृप्तादिका भी विशेष आगमन नहीं होता था ; तब गौवं इच्छानुसार पड़ती भूमि बाग बगीचे तथा जङ्गलोंमें चरती थीं ; और भली भांति दूध देती थी, गौवं के बछड़े भी नाचते कूदते उनके साथ ही साथ घूमा करते थे और इच्छानुसार अपनी साका दूध पीकर खूब हटपुष्ट तथा बलवान हो जाते थे । भारतवर्षीय लीगोंके लिये खेतों ही मुख्य व्यवसाय है और मलबेन बैलही खेतीके कार्यमें प्रधान अवलम्ब तथा सहाय है । निर्बल बैलोंके द्वारा अच्छी तरह कृषिकार्य्य सुसम्पन्न नहीं हो सकता, इस लिये गोबैल प्रभृतिको रक्षामें विशेष मनोयोगी होना उचित है । आज कल दिनों दिन पड़ती जमीन तथा जङ्गल प्रभृति तोड़कर कृषिकार्य्यके लिये खेत बनाये जा रहे हैं और मनुष्योंकी संख्या भी क्रमसे बढ़ रही है ; इसी हेतु अधिक अनादि गन्ध उत्पन्न करनेको विशेष आवश्यकता होनेसे कृषक लोग धीरे धीरे पड़ती जमीनको तोड़ कर खेत बनाते जाते हैं, और पुराने तरीकेसे सुता-विक यथाशक्य कृषिकर्ममें परिश्रम भी यथेष्ट करते हैं, ली भी वे लोग प्रायः प्रतिवर्ष यथोचितन्नभादि नहीं प्राप्त कर सकते । कहने

में अत्युक्ति न होगी कि, सैकड़ा पीछे नब्बे भारतवर्षीय कृषिकारों की प्रतिदिन केवल सूखा सूखा अन्न भी नहीं मिलता, दूध, घी प्रभृति गोरसकी तो बात ही क्या है ।

जब हम भारतीय कृषकोंकी इस दीन हीन अवस्था पर ध्यान देते हैं, तब यही प्रतिपन्न होता है कि, गवादि पशुओंके अभावसे ही यहांवालोंकी ऐसी शोचनीय दशा उपस्थित हुई है । जङ्गलोंके कट जाने और पड़ती जमीनके टूट कर खेत बन जानेसे गोबैलोंके चरनेके लिये बहुत ही असुविधा हुआ है । गवादिकोंको यथोचित पेटभर तृणादि न मिलनेसे उनके शरीरमें उपयुक्त रीतिसे दूध प्रभृति की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती, और गौवोंके स्तनोंमें भली भांति दूध न होनेसे उनके बच्चे भी दूधके अभावसे निर्वल होजाते हैं, इसी प्रकार से उन निर्वल गोवत्सोंकी सन्तति भी क्रमसे बलहीन हुई जाती है और खाद्याभावसे तनक्षीण बलहीन बैलोंके द्वारा कृषिकार्यमें पूरी तरहसे सहायता नहीं मिल सकती । इसी तरह दुग्धादिके अभावसे भारत सन्तान भी दिनों दिन तनक्षीण, हीन, मलिन, और बलहीन हुई जाती है । इससे हमारी समझमें भारतीय लोगोंका मुख्य कर्त्तव्य कार्य यह है कि, वे यथाशक्य गौवोंकी रक्षामें विशेष रीतिसे दत्तचित्त हों, ऐसा होनेसे धीरे धीरे भारत-वर्षीय लोगोंकी अवस्था स्वयं ही सुधर जायगी ।

कहना नहीं होगा कि, गोरक्षा हिन्दू-सन्तानोंका सबसे प्रधान कार्य है । किस्बदन्ती प्रसिद्ध है,—

गौवनके हित अवतरे, तजि गोकुल गोपाल ।

जीव चराचर ईश जो, बने नन्दके लाल ।

बने नन्दके लाल, बनहि बन धेनु चराई ।

गोरक्षाकी रीति, कृष्णाने प्रगट दिखाई ॥

किसी समय गौवोंको बहुतही लेश होरहा था, उस समय स्नेच्छा तथा राजसादिकोंके द्वारा गौवोंका वंश निर्मूल हुआ जाता था ; तब अधर्मके नाश करने तथा दुष्टोंको मारने और साधुओंकी रक्षा करनेवाले चराचर जगत्के ईश श्रीकृष्ण भगवानने गोलोकको परित्याग करके पृथ्वी पर अवतार लिया ; जो कि परब्रह्म परमेश्वर कहे जाते हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियोंमें व्यापक समझे जाते हैं ; वह गोरक्षाके हेतु नन्दके लाल बने और वन जङ्गल प्रभृतिमें स्वयं ग्वाल-वालोंके साथ गौवोंको चराते फिरे । श्रीकृष्णचन्द आनन्द-कन्द श्रीगिरिधारी वृन्दावन-विहारीके समयमें पूरी रीतिसे गोरक्षा हुई थी । और सम्पूर्ण भारत धनधान्यसे परिपूरित था ; कहीं अन्न धनादिका भारतमें अभाव नहीं था ; लोग गौवोंके द्वारा प्रचुर परिमाणसे दूध, घी प्रभृति प्राप्त होनेसे उसे खा पीके खूब हठ, पुष्ट, निरोग और बलवान होते थे तथा उस समय कृषिकर्ममें भी यथोचित उन्नति हुई थी अर्थात् उस समयमें दूध, घी और अन्नादिका भारतवर्षीय लोगोंको किसी प्रकार का अभाव नहीं था । जो हो, वर्तमान समयमें गवादिकोंको यथेष्ट परिमाण चरनेके लिये पड़ती जमीन और जङ्गल प्रभृति न रहनेसे गोरक्षाके सम्बन्धमें बहुत ही व्याघात उपस्थित हुआ है । गौवोंकी यथोचित रक्षा न कर सकनेसे भारतीय कृषिकार भी दूध, घी तथा अन्नादिके अभावसे स्वयं ही खाने बिन मर रहे हैं, तथा परार्द्ध नीकरी (गुलामी) करनेमें भी परांसुख नहीं होती, ती भी बहुतेरे लोगोंको पेट भर खानेकी अन्न नहीं मिलता है । क्या यह कम दुःखका विषय है ? भली भाँति विचारनेसे यह स्पष्ट ही विदित होता है कि, गोरक्षा कर सकनेसे यहाँवालोंको कृषि सम्बन्धमें विशेष उन्नति होनेकी सम्भावना है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ।

बैलोंको हलमें जोतना ।

हमारे भारतवर्षमें बैलोंके द्वारा हल चलाया जाता है । मनु-संहिताके मतसे आठ बैल और छः बैलका हल प्रशंसनीय मिला जाता है ; चार बैल और दो बैलयुक्त हल निकृष्ट कहा गया है । अब यहाँ पर यह प्रश्न खड़ा उपस्थित होता है कि, एकही हलमें आठ बैल वा छः बैल जोतना चाहिये अथवा चार हलमें आठ बैलका जोतना श्रेयस्कर है ! हमारी समझमें एक एक हलमें एक एक जोड़ा बैलका जोतना ही कल्याणदायक है । कृषकके लिये छः बैलवाले हलसे प्रायः तीस बीघा जमीनकी खेती हो सकती है और आठ बैल के द्वारा प्रायः चालीस बीघा जमीन जोती जा सकती है । इसलिये एक अच्छे गृहस्थको निज पोष्यवर्गोंके भरण पोषणके लिये कम से कम पचीस तीस बीघा जमीन जोतनेकी आवश्यकता रहती है, और कम परिवारवाले सामान्य गृहस्थको चार बैलयुक्त दो हल अथवा दो बैलयुक्त एक हल चलानेसे भी कथंचित संसारयात्रा निर्व्विघ्नकी योग्य अन्नादि प्राप्त हो सकता है । परन्तु यथार्थमें तीन हल तथा चार हल और इससे भी अधिक हलकी खेती करनेवाले गृहस्थ कृषक ही सुख स्वच्छन्दतासे अपनी जीवनयात्रा निर्व्विघ्न करनेमें समर्थ हो सकते हैं । ग्राम प्रवाद प्रसिद्ध है,—

एक बैल भांड की नार्ड ।

दुसरे बलदा फिर हराई ।

तिसरे बैले अर्द्ध किसान ।

चौथे बलदे पूर किसान ॥

अर्थात् एक बैलवाले कृषकको बहुत तकलीफ उठानी पड़ती है, वह दूसरेके बैलके साथ हल साझेमें चलानेका बन्दोबस्त करता

है ; परन्तु एक बैलवाले कृषकको बहुतेरे समय उचित बखत पर जोतनेके लिये बैलका बन्दोबस्त न हो सकनेसे उसे हाथ मलवार पछिताना होता है । क्योंकि जोतने तथा खेतकी फसलीमें जल सींचनेका समय बीत जानेसे फिर कृषिकार्यसे विशेष फलप्राप्तिकी आशा नहीं रहती ; इसलिये एक बैलकी खेतीवाले किसान भाड़की भांति सबके द्वार द्वार भटकता फिरता है और ताव तरकासे कृषिकार्यको सञ्चालनेमें असमर्थ रहता है । लोकाके बीच किम्बदन्ती प्रसिद्ध है,—

एक बैलकी खेती, ताव तरका नहिं सीती ।

अर्थात् एक बैलकी खेती ताव तरकासे नहीं होती, क्योंकि जिस समय खेतकी जोतनेका यथार्थ समय उपस्थित हुआ हो, उस समय पर दूसरा बैल न मिलनेसे समय बीत जाने पर उस खेतकी जोतने से आशानुरूप फलप्राप्ति होनी बहुतही सुश्रुंक्लि रहती है इत्यादि ।

दो बैलकी द्वारा एक हल चल सकता है, इसलिये दो बैलवाले कृषकके खेतीमें कथंचित् हराई फिर जाती है अर्थात् छः सात बीघे खेतकी दो बैलवाला कृषिकार जोत सकता है, परन्तु यदि उन दोनों बैलोंके बीच देवात् एक बैल बीमार होजाय, अथवा खेत जोतने की प्रधान-समयमें अगर एक बैल मर जावे, तो फिर ऐसे कृषिकारको खेतीके सम्बन्धमें बहुतही भ्रज्झट और तकलीफ उठानी होती है । और फिर यथोचित* रीतिसे उसे कृषिकर्मकी द्वारा फलप्राप्तिमें सन्देह रहता है; इसी हेतु दो बैलवाले कृषकको भी निष्पष्ट कष्टके वर्णन किया है ; बल्कि एक बैल और दो बैलवाले कृषकको कृषि-कार ही नहीं कह सकते ।

तीन बैलयुक्त हल चलानेवालेको अर्ध-कृषक वा आधा-कृषिकार नामसे सम्बोधन किया है, क्योंकि तीन-बैलवाले कृषकका

यदि एक बैल बीमार हो वा मर जाय तभी वह किसी तरह दो बैलोंके द्वारा अपने खेतीके कार्यको ज्यों त्यों पूरा कर सकता है ; अर्थात् स्वतन्त्रतापूर्वक बिना किसीकी सहायके केवल अपने दो बैलोंके द्वारा ही अपना कृषिकार्य कथंचित सम्भाल सकता है, इसीलिये उपरोक्त ग्राम प्रवादवाली कवितामें उस तीन-बैलवाले कृषकको “अर्ध-किसान” नामसे वर्णन किया है ।

चार-बैलवाले कृषकको पूरा कृषिकार कहके उपरोक्त ग्रामप्रवाद की कवितामें वर्णन किया गया है । यथार्थमें चार-बैलवाला कृषक अपने दो हलसे स्वतन्त्रतापूर्वक अपने परिवारवर्गके भरण पोषणके उपयोगी खेतको उचित समय पर जोत सकता है, समय पर ठीक रीतिसे बीज बो सकता और उपयुक्त समय अनुसार जलसे सींच भी सकता है ; बिना किसीकी सहायके केवल अपने बल पुरुषार्थ और साधनोंके प्रभावसे कृषिकार्यको पूरी तरहसे निर्वह कर सकनेसे चार बैलयुक्त कृषकको “पूरा किसान” कहते हैं ।

इसी प्रकार चार बैलसे ज्यादा पांच, छ, सात, आठ, दस, बीस जितने ही जिसके ज्यादा बैलयुक्त हल चलते होंगे, वह कृषिकारोंके बीच उतना ही श्रेष्ठ नामी, प्रसिद्ध तथा धनी समझा जाता है । इस लिये ज्यादा खेती करनेके लिये अधिक बैल रखनेकी जरूरत रहती है । कृषिकर्ममें बैल ही प्रधान साधन हैं ; निर्धन बैलोंके द्वारा भली भाँति खेतीके कार्य सुसम्पन्न नहीं हो सकते ; इस लिये हलमें जोतनेके लिये खूब दृष्ट, पुष्ट, बलवान बैल होना चाहिये ।

कहीं कहीं एकही हलमें चार बैल, कहीं छः बैल और कहीं आठ बैल भी जोते जाते हैं । परन्तु भारतवर्षमें प्रचलित कृषिकार्य के नियम अनुसार दो बैल और चार बैलवाले हलही प्रशंसनीय कहे गये हैं ; यद्यपि आज कल बिलायत और अमेरिका प्रभृति देशोंमें नई रीतिसे हल बनाये गये हैं, पर उनसे हमारे देशके कृषिकारोंको

देश, काल तथा भूमिकी प्रकृति अनुसार अधिक लाभवान होनेकी बहुत कम सम्भावना रहती है, तथापि विनायती प्रक्रियासे बने हुए हलोंके बीच दो एक तरहके हल यज्ञावालोंके कृषिकार्यके लिये उत्तम समझे जाते हैं। कलकत्तेमें “शिवपुर-झाव” नाम हल भी कृषिके कार्यमें जमीनके जोतनेमें श्रेष्ठ समझा जाता है और खूब बलवान एक जोड़ा बैल इस हलको खींच भी सकता है। इस हलमें विशेषता यह रहती है कि, इसमें नीचेकी ओर एक तराही लगी रहती है और जोतनेके समय जमीनको यह हल ज्यादा महाराई तक जोत सकता है, तथा इस हलके द्वारा जोतनेसे जमीनके नीचे की मिट्टी उस तराहीके छेदसे निकल कर ऊपरकी आजाती है, इस लिये यदि नीचेके तहवाली मिट्टी अधिक जोरदार रहती है, तो उसमें बीज बोनेसे ज्यादा फाइदा हो सकता है और यदि नीचेके तहकी मिट्टी खराब हो, तो उसमें बीज बोनेसे लाभके पल्ले हानि ही होनेकी सम्भावना रहती है। यदि बैल खूब छष्ट, पुष्ट और बलवान न हो, तो इस हलमें दो जोड़ा अर्थात् चार बैलके जोतनेकी आवश्यकता हुआ करती है। पड़ती जमीनको तोड़नेके समय इस हलके द्वारा विशेष सुविधा होता है; परन्तु कदवाही भूमिमें चलाने के लिये यह हल विलकुलही अयोग्य समझा जाता है।

जो हो, जितने हल आज तक बने हैं, उन सबकी बनावटमें प्राचीन समयके रीति मुताबिक बने हुए हिन्दुस्तानी हलका ही बहुत कुछ अनुकरण दिखाई देता है। संस्कृतमें “कृषि-पराशर-स्मृति” जो कि, पराशर-मुनिकी बनाई हुई बहुत प्राचीन समझी जाती है, उसमेंसे हलके सम्बन्धमें निम्न लिखित श्लोक यज्ञा पर उद्धृत किये गये,—

ईषा युगो हलस्थाणु निर्योलस्तस्य पाशिका ।

अङ्गुचस्तश्च शीलश्च पञ्चमी च हलाष्टकम् ॥

पञ्चहस्ता भवेद्दीर्घो स्थाणु पञ्चवितस्तिकः ।
 सार्द्धहस्तस्तु निर्योऽलो युगः कर्ण समानकः ॥
 लाङ्गुल पाशिका चैव अङ्गुलस्तथैव च ।
 द्वादशाङ्गुल मानो हि शौलोऽरन्नि प्रमाणकः ॥
 पञ्चसुष्टि पञ्चनिका अग्रान्त्रि वंशसम्भवा ।
 दृढा स्रग्धा परिज्ञेया पराशरेण भाषिता ॥
 योक्त्रहस्त चतुष्कश्च रज्जुः पञ्चकरात्मिका ।
 पञ्चाङ्गुलोधिको हस्तो हस्तो वा फालकः स्मृतः ॥
 चर्कपत्र सदृशी पाशिका च नवाङ्गुला ।
 एकविंशक शल्यस्तु विषकः परिकीर्तितः ॥
 नवहस्तातु मदिका प्रशस्ता कृषिकर्मषु ।
 इयं हि हलसामग्री पराशर मुनेर्मता ॥
 सुदृढा कर्षकैः कार्य्या शुभदा कृषिकर्मणि ।
 अदृढा युज्यमाना सा सामग्री वाहनस्य च ।
 विघ्नं पदे पदे कुर्याद् कर्षकालेन संशयः ॥

हल चक्षामेकी विधि ।

शुभेऽर्के चन्द्रसंयुक्ते शुक्लयुग्मेन वाससा ।
 शुक्लपुष्पैश्च गन्धैश्च पूजयित्वा यथाविधि ॥
 पृथिवीं हलसंयुक्तां पृथुञ्चैव प्रजापतिम् ।
 अग्नेः प्रदक्षिणं कृत्वा भूरिदत्ता च दक्षिणाम् ।

फाल्गुन' स्वर्णसंयुक्तं कृत्वा च मधुलिपनम् ॥
अहिः क्रोडे वामपार्श्वे कुर्याच्चल प्रसारणम् ।
स्मर्त्तव्यो वासवो व्यासः पृथु राम पराशरः ॥

हल चलानेका शुभ समय ।

सम्पूज्याग्निं द्विजं देव कुर्याच्चल प्रसारणम् ।
अमिलोत्तर रोहिण्या मृग मूल पुनर्वसौ ॥
पुष्य श्रवण हस्तेषु कुर्याच्चल प्रसारणम् ।
हलप्रसारणं कार्यं कार्पकैः शस्यवृक्षये ।
शुक्रेन्दु बीजवासरेषु शशिनस्य विशेषतः ॥

तिथि विशेषमे हल चलानेके फलाफल ।

सुखदा प्रतिपच्चैव द्वितीया कार्यसाधिनी ।
आरोग्यदा तृतीया च चतुर्थी कीटहृत् सदा ॥
पञ्चमी श्रीप्रदा नूनं षष्ठी च कलहप्रिया ।
सप्तमी स्थानदा भोग्या वृषं हन्ति तथाष्टमी ॥
नवमी शस्यनाशाय दशमी भूतिदा सदा ।
एकादशी तथा कुर्याच्चल धान्यं मनोरथम् ॥
द्वादशी प्राणसन्देहा सर्वसिद्धा त्रयोदशी ।
चतुर्दशी पतिं हन्ति पञ्चदश्येव निष्फलाम् ॥

लग्न विशेषमे हल चलानेके फल ।

मेषलग्ने पशुं हन्यात् कर्कटे जलजाह्वयम् ।
सिंहे चौरभयञ्चैव कुम्भे सर्पभयन्तथा ॥

मकरे शस्यनाशः स्यात् तुलायां प्राणसंशयः ।
 तस्मात्तुल्यप्रयत्नेन कृष्यारम्भे विचारयेत् ॥
 वारे शशिज शुक्रे च जीवे शीत करे तथा ।
 लग्ने स्त्री मीनयुग्मे च कृष्यारम्भं शुभं विदुः ॥
 निविष्टा विष्टरेभक्तं संस्थाप्य जानुनिक्षिप्तौ ।
 प्रणमेद्वासवं देवं मन्त्रेणानेन कर्षकः ॥
 वृषो महाकटिर्वज्र्यं छिन्नलाङ्गुलकर्णकः ।
 सर्वशुक्लस्तथावज्र्यः कृषकैर्हलकर्मणि ॥
 हलप्रसारणं कार्यं मीरुग्भिर्बृषकर्षकैः ।
 छिन्नरेखा न कर्तव्या यथा प्राह पराशरः ॥
 एकातिस्त्रस्तथा पञ्च हलरेखाः प्रकीर्त्तिताः ।
 एका जयकरी रेखा तृतीया चार्धसिद्धिदा ॥
 पञ्चमाख्यातु या रेखा बहुशस्य प्रदायिनी ॥

लक्षणालक्षण निर्णय ।

हलप्रवाहकाले तु कूर्ममुत्पादयेत् यदि ।
 गृहिणी मृयते तस्य तथाचाग्निभयं भवेत् ॥
 फालोत्पाटे च भङ्गे च देशत्यागो भवेद्ध्रुवम् ।
 लाङ्गुलीभिद्यते वापि प्रभु तस्य विनश्यति ॥
 ईषा भङ्गो भवेद्वापि कृषको जीवनाक्षमः ।
 भ्रातृनाशो युगे भङ्गे शैले च मृयते वृषः ॥

योक्तच्छेदे च रोगं स्यात् शस्यहानिञ्च जायते ।
 निपाते कर्षकस्यापि कष्टं स्यात् राजमन्दिरे ॥
 हलप्रवाहकालेतु गौरेक प्रपतेद् यदि ।
 ज्वरातिसार रोगेण मानुषो म्रियते तदा ॥
 हलप्रवाहमानेतु वृषो धावन् यदि व्रजेत् ।
 कृषिभङ्गो भवेत्तस्य पीडाचापि शरीरजा ॥
 हलप्रवाह मात्रस्तु गौरेकनर्दते यदि ।
 नासालीढं प्रकुर्वीत तदा शस्य चतुर्गुणम् ॥
 प्रवाहान्मुक्तमात्रस्तु गौरेक स्वनते यदि ।
 अन्यस्य लेहनं कुर्यात् तदा शस्य चतुर्गुणम् ॥
 हले प्रवाहमानेतु शकृन्मूलं यदा स्रवेत् ।
 शस्य वृद्धिं शकृत्पाते मूले वन्या प्रजायते ॥

विशेष आदेश ।

हेमन्ते कृष्यते हेम वसन्ते ताम्ररौप्यकम् ।
 धान्यं निदाघकालेतु दारिद्र्यान्तु धनागमः ॥
 भृतं सुवर्णसमा माघे कुम्भे रजत सन्निभा ।
 चैत्रे ताम्र समाख्याता धान्यतुल्या च माघवे ॥
 ज्यैष्ठ्येदेव विज्ञेया आषाढे कर्द्दमाह्वया ।
 निष्फला कर्कटे चैव हलैरुत्पाटिता तु या ॥
 हल प्रसारणं नैव कृत्वा यः कर्षणं व्रजेत् ।
 केवलं बलदर्पणं स करोति कृषिं यथा ॥

(कृषि पराशरि)

ईसा, युग, स्थाणु, निर्योत्त, पाशिका, अड्डचक्र, शौल और पञ्चनी ये आठो हलके अंग हैं । ईशाका परिमाण पांच हाथ, स्थाणु पांच विसस्ति अर्थात् सवा दो हाथके ऊपर, निर्योत्त डेढ़ हाथ, युग (जूआ) कर्णसमान अर्थात् सवा तीन हाथ, पाशिका और अड्डचक्र बारह अङ्गुल, शौल प्रायः १ हाथ परिमाण गांठरहित दृढ़ सुडौल और बांसका बना हुआ रहे, योक्तु चार हाथ परिमाण, रज्जु पांच हाथ, फाल एक हाथ वा एक हाथ पांच अङ्गुल परिमाणका भी व्यवहृत हुआ करता है । फालका आकार अर्कपत्र समान तथा विस्तार नव अङ्गुल और विड्ढक इक्कीस सलाकाकी हो, और भादिका नव हाथ परिमित होवे ।

ये सब पराशर मुनिकी कहो हुई हलसामग्री सुदृढ़ होनेसे कृषि-कार्य शुभदायक होता है । अदृढ़ सामग्रियोंके द्वारा कार्यके समय अर्थात् हल चलानेके वखत पद पदमें विघ्न उपस्थित हुआ करता है ।

हापर युगमें पराशर मुनिने पराशर संहिता नाम ग्रन्थ बनाया । परन्तु क्याही आश्चर्यकी बात है कि उस समय जिस भावसे कृषि-यन्त्रादि व्यवहृत हुआ करते थे । इस समय भी प्रायः उसी प्रकार यन्त्रादि हैं । जैसा हमारा देश है उसके उपयुक्त यन्त्र भी बने हैं ; इन यन्त्रोंके अनादरसे हमारा सुविधा और कल्याण नहीं है । अब हल चलानेका शुभ समय वर्णन करते हैं ।

स्वाती, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, रोहिणी, मृगशिरा, मूल, पुनर्वसु, पुष्य, अवण, और हस्त नक्षत्रमें पहिले पहिल हल जोतनेका सुहृत् करे, इन नक्षत्रोंमें विशेष करके शुक्र, सोम, बृहस्पति और बुधवार होनेसे कृषककी शस्यवृद्धि हुआ करती है ।

तिथि और वार आदि विशेषसे पृथ्वीमें स्वतन्त्र भावान्तर उपस्थित होता है । उनके बीच पूर्वोक्त नक्षत्र और वारके भाव खेतीके सम्बन्धमें शस्यवृद्धिके ही हेतु कहे जाते हैं । अब तिथि विशेषका फलाफल वर्णन करते हैं ।

प्रतिपदामें हल चलानेसे सुखदायक होता है, द्वितीयामें कार्य्य की सिद्धि हुआ करती है, तृतीयामें हल चलानेसे आरोग्यदायक हुआ करता है, चतुर्थीमें हलका चलाना कौटकारक होता है, पञ्चमी निश्चित ही श्री-प्रदायक है, षष्ठी कलहप्रियता, सप्तमी स्थान और भोगदायक है, अष्टमीमें बेल नष्ट होते हैं, नवमीमें हल चलाने से शस्यनाश हुआ करता है, और दशमी सर्वदा सम्पत्ति-दायक है, एकादशीमें इसी प्रकार धन धान्य और मनोरथ सिद्धि हुआ करती है, द्वादशीमें हल चलानेसे प्राणसंशय उपस्थित हुआ करता है, त्रयोदशी सर्व कार्य्योंके सम्बन्धमें सिद्धिदायिनी है, चतुर्दशीमें हल चलानेसे स्वामीका नाश हुआ करता है, और अमावस्या तथा पूर्णिमा तिथिमें हल चलानेसे निष्फल-मनोरथ होना होता है ।

जिन स्थानोंमें कृषिका समादर है वहां शुभदिनमें हल चलानेका मुहूर्त आरम्भ करके अमावस्या पूर्णिमाके सिवाय जिस किसी दिनमें हो खेत जोतनेकी रीति प्रचलित है । परन्तु यथार्थमें अशुभ दिनमें हल न चलानेसे निश्चय ही शुभ हुआ करता है । तिथि विशेषमें पृथिवीका भावान्तर उपस्थित होता है, जिस समय तैसा भाव उपस्थित होता है, उसे ईश्वरनिष्ठ आर्य्य मनोपिगण विशेष रीतिसे जानते थे, जिस जिस भावोदयमें हल चलानेसे अत्यन्त द्रष्टजनक हुआ करता है, वे उन्हीं दिनोंमें हल जोतनेकी व्यवस्था कर गये हैं ।

बहुतेरे लोग आपत्ति कर सकते हैं कि, इस देशमें मुसलमान प्रभृति जाति खेतीके कार्य्यमें विशेष तरकी करती हुई दिखाई देती है और वे लोग अमावस्या पूर्णिमा आदि नहीं मानते इसका उत्तर यह है कि, हम उसे यथार्थ उन्नति नहीं कह सकते, शास्त्रमें जिस परिमाणसे उन्नतिका उद्देश्य है, उसके निकट वह दुःखके सिवाय और कुछ भी नहीं है ; तब अन्यश्रेणीकी अपेक्षा उनकी खेतीकी सम्बन्धमें जितनी उन्नति मालूम होती है, उसे केवल उनकी मिहनतका फल जानो,

हिन्दु (आर्य) लोग यदि शास्त्रको मानकर वैसा परिश्रम करनेमें प्रवृत्त हों, तो थोड़े ही दिनोंमें दिखाई देगा कि, मुसलमानोंकी उन्नतिकी अपेक्षा कृषि-सम्बन्धमें हिन्दुओंकी तरकी बहुत कुछ बढ़ी हुई है। अब लग्नके मतसे हल चलानेका फलाफल कहते हैं। मेष लग्नमें हल चलानेसे पशु नष्ट होते हैं, कर्क लग्नमें जलजात-भय उपस्थित हुआ करता है ; सिंह लग्नमें चोरभय ; कुम्भलग्नमें सर्पभय ; यकरमें शस्यनाश और तुला लग्नमें प्राणसंशय उपस्थित हुआ करता है इसलिये यत्नपूर्वक लग्न को विचार करे हल आरम्भ करे। सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्रवार तथा वृष, मिथुन, कन्या और मीन लग्नसे खेतमें हलारम्भ करना शुभ है।

कुशासन पर बैठ कर मनुष्य दोनों जानु भूमिमें स्थापित करके मन्त्रादि द्वारा इन्द्रकी प्रणाम करे। विशाल कटिविशिष्ट ठूठी पूंछ ठूठा कान और सर्वाङ्ग सफेद रङ्गके बैल जोतनेके लिये निषिद्ध है। जोतनेवाला उत्तम हलमें जुते हुए निरोगी बैल द्वारा हल जोते ; हलारम्भ कालमें टूटी रेखा न होने पावे ; एक, तीन और पांच रेखा उक्त समयमें प्रशस्त हैं। एक रेखा जयकरी और तीन रेखा अर्थसिद्धिदा तथा पांच रेखा बहुत शस्य प्रदायिनी कही जाती है।

रवि और सोमवारके दिनमें युग्मवस्त्र, सफेद फूल और गन्धादि से विधिपूर्वक (गणेशादि क्षेत्रपाल प्रभृति) हल संयुक्त पृथिवी पृथु और प्रजापतिका पूजा करके अग्निकी प्रदक्षिण करके यथेष्ट दक्षिणा दान करे। फालके अग्रभागमें सुवर्ण स्पर्श करके तथा मधु लगा कर सरस खेतमें (क्षपक) के बायें पशवाड़े उत्तरमुख हल चलावे। हल चलानेके पहिले इन्द्र, व्यास, पृथु, राम और पराशरको स्मरण करके अग्निदेव तथा ब्राह्मणकी पूजा करनी चाहिये।

हल प्रवाहके समयमें यदि क्षेत्रका डांड टूट जाय अथवा क्षेत्रकी सीमाकी मिट्टी हलसे टूटके गिर पड़े तो स्त्रीका नाश वा अग्निभय

होता है। अगर हलसे फाल निकल आवे वा टूट जाय, तो देश-त्याग होता है। हल टूटनेसे धनी अर्थात् मालिकका विनाश हुआ करता है। ईशा टूटनेसे कृषकके जीवनकी आशा नहीं रहती, जूआ टूटनेसे भाईका नाश होता है। और शील (शैला) टूटनेसे वृषभ नहीं जीते, योक्ता टूट जानेसे रोगभय, शस्त्रहानि और जीतनेवाले का नाश होता है तथा राजद्वारमें कष्टप्राप्ति होती है। हल जीतने के समय अगर एक बैल गिर जाय तो ज्वरातिसार रोगसे मालिक कालके गालमें पड़ता है। अगर पहले पहल शुभ मुहूर्तमें हलारम्भ करने पर बैल दौड़के भाग जाय, तो कृषि नष्ट होती और शारीरिक पीड़ा हुआ करती है। अगर प्रथम हल आरम्भके समय एक बैल हंकड़े वा गोवर त्याग करे अथवा जीभसे नासिकाको चाटे तो खेतमें चौगुना अन्न हो। पहले पहल हल चलते ही यदि एक बैल हंकड़े और दूसरे बैलको चाटे तो भी खेतमें चौगुना अन्न पैदा हो। प्रथम हल आरम्भके समय बैलेके गोवर त्याग करनेसे शस्यकी बढ़ती हुआ करती है; और मूत्रत्याग करनेसे जलकी बाढ़ वा बूड़ा आनेका भय रहता है। हल जीतनेके समय प्रायः ये सब घटना उपस्थित नहीं होतीं यदि ऐसी घटना हों, तो उपरोक्त फल होना सम्भव है।

शीतकालमें हलारम्भ करनेसे सुवर्ण, वसन्तमें तांबा और रूपा, ग्रीष्मकालमें धान्य और वर्षाकालमें दरिद्रता प्राप्त हुआ करती है।

माघ महीनेमें हलसे जोती हुई मिट्टी सुवर्ण समान फाल्गुन में चांदी सदृश, चैत्रमें तांबाके तुल्य, वैशाखमें धान्य समान जेठमें मिट्टी सदृश, और आषाढ़में कीचड़ तुल्य रहती है। इसके अतिरिक्त सावनमें निष्फल माच हुआ करती है।

माघ महीनेमें शीतके प्रवेशण द्वारा मिट्टी अधिक उर्वरा होती है। अन्यान्य महीनोंमें इसी प्रकार शर्ही, गरमी, वायु, सूरजकी धूप तथा वर्षाके जल प्रभृति, कारणोंसे पृथक् पृथक् रीतिसे फलदायक

हुआ करता है। जो पुरुष हल-पुण्याहन करके केवल बल और दर्पण सहित कृषिकार्य करता है, उसको सम्पूर्ण क्रिया निष्फल होती है। अब कैसे बैल हलमें जोतनेके उपयुक्त होते हैं, उनके शुभाशुभ लक्षण वर्णन करते हैं,—

बैलोंके शुभाशुभ लक्षण ।

हलमें जोतने लिये यदि बैल खरीदना हो, तो विशेष रीतिसे विचार करके बिना खरीदे निश्चय ही पकिताना होता है। जैसे गऊ खरीदने पर किस अवस्थामें कितना दूध मिल सकेगा, उसे धार, बटखरा तथा दूधको देख कर अनुमान किया जाता है; उसी प्रकार हलमें जोतनेसे तथा बिना जोते भी बैलोंके शुभाशुभ लक्षण मालूम हो जाते हैं, जो बैल गरियार होता है, वह हलमें जोतने पर थोड़ीसी मिहनत वा बोझसे ही जमीनमें सो जाता और विशेष रीतिसे उठाने तथा उत्तेजित करने पर भी भली भांति हलको नहीं जोत सकता। और जो बैल तेज तथा फुर्तीला होता है, उसे हलमें जोतनेके समय उसके शरीर पर हाथ नहीं देना होता; वदन पर हाथ रखते ही वह हलको हराईमें एकवारगी धूमता फिरता रहता है; ऐसे बैलको हलमें जोतनेसे हलबाहकको विशेष परिश्रम करनेकी आवश्यकता नहीं रहती; क्योंकि ऐसे बैल अपनी गर्दनको समान रखकर हलको खींचते हुए खेतको जोतते चले जाते हैं; और जमीन की मिट्टी ज्यादा कड़ी होने पर घुटनोंको जमीनमें टेक कर भी हल खींचते हैं। ऐसे बैल ही कष्टसहिष्णु तथा गृहस्थ कृषकोंके कृषिकार्यके उपयोगी हैं। आमप्रवाद प्रसिद्ध है,—

एक पांजर छोटा एक बड़ा ।

धौंका, कांपा, दोला, गड़ा ॥

घड़घड़ नाशा, सूकर खुर ।

शशि श्याम रोआं औ चक्रुर ॥

जिस बैलके दोनों पशवाड़ोंमेंसे एक छोटा एक बड़ा हो, उसे उनपञ्जर बैल कहते हैं ; जिसके सूकरके समान खुर हों, वह सूकर खुरी कहाता है ; जो बैल निरोग अवस्थामें भी ठांसता रहता है, उसे धौंका बैल कहते हैं ; जिसका शरीर कांपे उसे कम्पनशील बैल कहते हैं, जो भूलते हुए चले उसे दोला बैल कहते हैं, जो बैल हलमें जोतने पर जमीनमें सो जाता है उसे गड़ा (गरियार) बैल कहते हैं ; सांस लेनेके समय जिस बैलकी नाकसे घड़ घड़ शब्द होता है, उसे घड़घड़-नाशा बैल कहते हैं ; जिसका शरीर चितक-बरा हो अर्थात् काले सादे चित्रयुक्त रोएं हों, उसे “शशि श्याम रोआं” बैल कहते हैं ; जो बैल जीभको घुमा कर सर्पचक्रकी भांति करे उसे चक्रुर बैल कहते हैं ।

इन उपरोक्त बैलोंको क्रय (खरीद) करनेके समय किसीको कम और किसीको अधिक अशुभ-फलकी सूचना हुआ करती है । जिस गृहस्थके घरमें निश्चय ही अमङ्गल होनेवाला रहता है, वहां ही ऐसे अशुभ लक्षणवाले बैल आया करते हैं । पहिले इस बातमें हम तनिक भी विश्वास नहीं करते थे ; लेकिन जब इसकी परीक्षा किया तथा अन्यत्र भी देखा तब हमारा वह भ्रम दूर होगया, इस लिये अशुभ लक्षणयुक्त बैलोंको खरीदनेके सम्बन्धमें हम सबको ही निषेध करते हैं । अन्यान्य भी बहुतेरे दीर्घदर्शी कृषकोंके कहे हुए इस सम्बन्धमें कितने एक ग्राम प्रवाद प्रसिद्ध हैं,—

मोटि पीठ औ परी पनारी ।

इन्हें देखि मत भूले अनारी ॥

अर्थात् जिस बैलकी पीठ मोटी हो और उसकी पीठपर पनारी परी हो, ऐसे बैलको भी कदापि कथ (खरीद) न करना चाहिये ।

कार कछौटा करिया बाना ।

दून्हे छोड़ि जिनि बेसहे आना ॥

जिस बैलकी काछ (शिग्र अण्डकोश तथा गुह्यस्थल) काला हो और उसका रूप भी श्यामल हो, तो ऐसे बैलको बुद्धिमान कृषक अवश्य खरीद लेवे ।

बलदा बेसहे जायौ कन्ता ।

जिनि देख्यौ कैराकै दन्ता ॥

कृषिकर्ममें निपुण कृषककी भाव्याने अपने पति कृषककी सम्बोधन करके उपरोक्त वचन अनुसार उपदेश दिया था कि, जब बैल खरीदने जाना, तब कैरा (कारा) रीआंयुक्त बैलको देख कर परीक्षा करनेकी कुछ आवश्यकता न समझना, क्योंकि ऐसे रीआंवाले बैल प्रायः कृषिकर्म अर्थात् हल्लादिमें जीतनेके लिये उपयोगी हुआ करते हैं ।

आयु वाला और कार्य करनेमें समर्थ हो, ऐसा होनेसे बैल खरीदना साधारण नियम है ; और क्रमसे कार्यक्षम होवे, ऐसा देखकर खरीदना सबसे श्रेष्ठ नियम है कार्य, उमर और आकार अनुसार बैलको पहचानना होता है । आकार तथा बैलकी सींग वगैरह देख कर उसकी उमरका निश्चय नहीं होता ; दांत देखकर बैलकी उमर का निश्चय करना होता है । दो और चार दांत होनेसे बछड़ा जानना चाहिये; छ दांतवाला होनेसे उसे हलमें जीतना चाहिये, आठ दांत होनेसे बैलको युवा समझना उचित है । दांत चयनके अनुसार बैलोंकी ज्यादा उमरका निश्चय किया जाता है । रूप रङ्ग

आकार प्रकार देखकर बैल खरीदनेके सम्बन्धमें और भी कई एक नियम जानना उचित है । वर्षाकाल तथा शस्यादि खेतसे निकालनेके बाद रोगी बैल भी छष्ट पुष्ट होते हैं ; खेत जोतार्हेके दिनोंमें बैल दुर्बल हुआ करते हैं ; ऐसे दुर्बल बैल थोड़े ही यत्नसे छष्ट पुष्ट होते हैं, इस लिये ऐसे बैलोंको क्रय (खरीद) करना ही लाभजनक समझा जाता है । घक्खके मतमें “तीन सिंगट महा विकट”

तीन सिंगवाले पशु गृहस्थोंके पक्षमें अशुभजनक हैं, इसी प्रकार तीन बैल भी गृहस्थ कृषकोंके पक्षमें शुभकर नहीं हैं । खेताके मतमें सोमवारको गवादि पशुओंका खरीदना एकवारगी निषेध्य है । अशिक्षित बैलको कार्य करनेके योग्य तैयार करना हो, तो उसे धीरे २ कार्य सहा कराना चाहिये, जब इस प्रकारसे अवशिक्षित बैल कार्य करनेमें सहनशील होजाय, तब उससे पूरी मिहनत करा सकते हैं । खेत आदि जोतने सींचनेके लिये बैलको अधिक क्लेश किसी प्रकार भी शुभदायक नहीं है ।

कृषिञ्च तादृशीं कुर्यात् यथा वाहान्न पीडयेत् ।

वाह पीडार्जितं शस्य गर्हितं सर्वकर्मषु ॥

वाह पीडार्जितं शस्यं फलितञ्च चतुर्गुणम् ।

वाह निप्रवास विफलं कृषको निःस्वतां व्रजेत् ॥

गुण्डकैर्यवसैर्धूमैस्तथा नैरपि पोषणैः ।

वाहाः कृचिन्नसीदन्ति सायं प्रातश्च चारणात् ॥

वाह अर्थात् बैल जिस प्रकार निपीड़ित नहीं, उसी भांति कृषिकार्य करे । वाह (बैल) पीड़नसे जो शस्यादि अर्जित होते हैं, वह किसी कार्यमें नहीं लगते (वह सर्वत्रही गर्हणीय हैं) । वाह (बैल) पीडार्जित शस्य चतुर्गुण फलित होने पर भी बैलोंके निप्रवास

से समस्त ही वृथा हुआ करता है और वह कृषक भी निश्चय ही दरिद्र हुआ करता है । गुण्डक (तरण्डुलकण, तूष भूसी) और यवस (घास प्रभृति) तथा गोशालामें धूप गन्ध देकर बैलोंको पोषण करे, सन्ध्या और सबेरे चरानेसे बैल कदापि अवसन्न नहीं होते ।

वर्षाकालमें गोसार साफ सुथरा रखे ; शीतकालमें घास वगैरः खिलानेकी व्यवस्था अच्छी तरह कर देनेसे बैलादि कदापि अवसन्न नहीं होते । खिलाकर बैलोंको जिस प्रकार पुष्ट किया जाता है, उनके रहनेके स्थान साफ स्वच्छ होनेसे उससे भी बढ़ कर उन्हें कार्यक्षम और हृष्ट पुष्ट किया जा सकता है ।

पितुरन्तःपुरं दद्यात् मातुर्हृद्यान्महान्सम् ।

गोषु चात्म समं दद्यात् स्वयमेव कृषिं व्रजेत् ॥

कृषिर्गावी वाण विद्याः स्त्रियो राज कुलानि च ।

क्षणेनैवावसीदन्ति सुहृत्तमनवेक्षणात् ॥

पिताको अन्तःपुरमें, माताको रसोई गृह और अपने प्राण सहश व्यक्तिको गोबैलादिकोंका भार अर्पण करे तथा स्वयमेव कृषिको देखता रहे ; कृषि, गवादि पशु, वाण, विद्या, स्त्री और राजकुल यदि सुहृत्त भर भी न देखे जायं वा उनके सम्बन्धमें उपेक्षा की जाय, तो वे क्षणमात्रमें अवसादग्रस्त हुआ करते हैं ; इसलिये इनके सम्बन्धमें खूब सावधान रहना उचित है ।

फलत्यवेक्षिता स्वर्णं दैन्यं सैवानवेक्षिता ।

कृषिं कृषि पुराणज्ञ इत्युवाच पराशरः ॥

श्री पराशर मुनि कह गये हैं, कि स्वयं देखने भालनेसे कृषिके द्वारा स्वर्ण प्रकलित होता है और विना देखेभाले तथा कृषिके सम्बन्धमें असावधान रहनेसे दैन्यग्रस्त होना होता है । इसलिये कृषि-

पुराणज्ञ व्यक्ति ही भली भांति कृषिकार्यको कर सकता है । कृषि-कार्यमें अनभिज्ञ लोग यदि खेती करें, तो उन्हें इसके विपरीत फल प्राप्त हुआ करते हैं ।

गोशाला सुदृढा यस्य शुचिर्गोमय वर्जिता ।

तस्य वाहा विवर्द्धन्ते पोषणैरपि वर्जिता ॥

शकृन्मूत्र विलिप्ताङ्गः वाहा यत्र दिने दिने ।

निःसरन्ति गवां स्थानात् तत्र किं पोषणादिभिः ॥

जिसकी गोसार सुदृढ़, पवित्र और गोबर आदिसे रहित साफ स्वच्छ रहती है, वहां विधिपूर्वक पोषणादिका अभाव होने पर भी गवादि पशुओंकी बढ़ती हुआ करती है । जिस गोसारमें गोबैल गोबर मूत्र विलिप्ताङ्ग होकर निवास करते हैं, वह गवादि पशुओंसे रहित होजाता है, केवल पोषण करनेसे ही क्या हो सकता है ।

पञ्च पञ्चायता शाला गवां वृद्धिकारी मता ।

सिंहस्थाने कृता सैव गोनाश कुरुते ध्रुवम् ॥

सिंहगेहेऽर्पिताञ्चैव गोशाला कुरुते यदि ।

प्रमादान्मन्दबुद्धित्वात् गवां नाशो भवेत्तदा ॥

पञ्चीस हाथ लम्बाई युक्त गोशाला गौवोंके पक्षमें वृद्धिकारक माना जाता है । भादों महीनेमें बनाया हुआ गोशाला निश्चय ही गो-नाशकारी होता है । भादों महीना, अथवा सिंहके चन्द्रमा रहने पर वा सिंह लग्नमें गोशाला तैयार करनेवाला अथवा गोशालामें मिट्टी डालनेवाला मन्दबुद्धि पुरुष गोवैलीका नाशकारी होता है ।

तण्डुलानां जलञ्चैव तप्तमण्डं भषोदकम् ।
 कापसास्थि तूषञ्चैव गो विनाश कृत् ॥
 समार्जनीञ्च मूषलमुच्छिष्टं गो निकेतने ।
 कृत्वा गो नाश माप्नोति तथा तत्राजवन्धने ॥

चावलका धोवन, भातका गरम मांड, तथा अन्यान्य मकलियों का धोवन, कपासकी रुई, हड्डी और तूष गोशालामें फेंकना मना है । ये सब वस्तुएं वायुके द्वारा रसायनिक संयोगसे गौर्वोंके लिये सम्पूर्ण रीतिसे अनिष्टकारी होती हैं ; वल्कि गवादिकोंके विनाशकी हेतु होजाती हैं, इसलिये उपरोक्त वस्तुओंको गोशालामें न फेंकना चाहिये ।

घरका कूड़ा प्रभृति बुहारन, ऊखली मूषल और उच्छिष्ट (जूठ) प्रभृति गोशालामें रखने तथा उस स्थानमें बकरी प्रभृति बांधनेसे पूर्वोक्त रीतिसे ये सब गो-विनाशके ही हेतु माने गये हैं ।

गोमूत्र जालकेनैव तत्रावस्कर मोचनम् ।
 कुर्वन्ति गृहमेधिभ्यः तत्रका बाह-वासना ॥
 विलाम्बिं गोमयस्यापि रवि भौम शनेदिने ।
 न कारयेत् भ्रमेनापि गोवृद्धिं यदि वाञ्छति ॥
 वारत्रयं परित्यज्य दद्यादन्येषु गोमयम् ।
 बिलभ्य शनि भौमेषु गवां हानि करं स्मृतम् ॥

जो बुद्धिमान गृहस्थ गोशाला (गोसार) से गोवर और गोमूत्र उठानेमें उपेक्षा करता है, उसके पक्षमें गोवैलोंकी वासना हृथा है । यदि गोवृद्धिकी अभिलाष रहे, तो रवि, शनि और मङ्गलवारके रोज भ्रमसे भी किसी की गोमय (गोवर) न देवे ; अन्यान्य दिनोंमें दूसरे

लोगीको गोबर देनेसे दोष नहीं है । शनि, मङ्गल और रविवारको गोमय देनेसे बृह निश्चय ही गोवैलोंके पक्षमें अनिष्टकारक होता है ।

श्लेष्म मूत्र पुरीषाणि पङ्कानि च रजांसि च ।

न पतन्ति गवां यत्र तत्र लक्ष्मी स्थिरा भवेत् ॥

सन्ध्याकाले च गोस्थाने दीपो यत्र न दीयते ।

स्थानं तत् कमला हीनं वीक्ष्यक्रन्दन्ति गोगणाः ॥

श्लेष्मा, मूत्र, पुरीष (मल, रक्त पीव) आदि तथा कीचड़, धूल अर्थात् घरका भाड़न बटोरन गोशाला (गोसार) में पड़नेसे वहाँ लक्ष्मी स्थिर होके निवास नहीं करती, सन्ध्याके समय जिस गोसारमें धूप दीप नहीं दिया जाता, उस स्थानको लक्ष्मी रहित देख कर गोजातिकी आंखोंसे जल गिरता है ।

शो पर्व वर्णन ।

गोपूजां कार्तिके कुर्यात् लगुडं प्रतिपत्तिथौ ।

बद्धाश्यामलतां स्कन्धे लिप्ता तैल हरिद्रया ॥

कुङ्कुमैश्चन्दनैश्चापि कृत्वा चाङ्गे विलेपनम् ।

उद्यम्य लगुडं हस्ते गोपालाः कृत भूषणाः ॥

ततो वाद्यैश्च नृत्यैश्च मण्डयित्वाऽम्बरादिभिः ।

भ्रामयेयुर्बुधं मुख्यं ग्रामे गोविघ्न शान्तये ॥

गवामङ्गे तदा दद्यात् कार्तिके प्रथमे दिने ।

तैलं हरिद्रयायुक्तं मिलित्वा कुङ्कुमैसह ॥

तप्तलोहादिकं तत्र गवमङ्गेप्रदापयेत् ।

छेदनञ्च प्रकुर्वीत लाङ्गुले कच कर्णयोः ॥

सर्वा गोजातयः सुस्था भवन्त्येतेन नदृग्गृहे ।

नचना व्याधि विनिर्मुक्तो वर्षमेकं न संशयः ॥

कार्तिक महीनेकी यम प्रतिपदा (भाद्र द्वितियाके पूर्व दिन) में गोजातिके स्कन्धोंमें श्यामलता बांधी और उनके अङ्गोंमें तेल, हलदी, कंकुम तथा चन्दन लगावे आभूषणोंसे भूषित गोपालोंके हाथमें लाठी धारण कराकर नृत्य और बाजेके साथ गवादिकोंमें अग्रणी मुख्य बैलों (बछड़ी) को गोविन्दकी शान्तिके लिये ग्रामका प्रदक्षिण करावे ।

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदासे लगाय आठ रोजतक गोपूजा के सम्बन्धमें उपेक्षा न करे कार्तिक शुक्लको भी गोपाष्टमी नाम गोपर्व प्रसिद्ध है कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाको तेल, हलदी, कंकुम प्रभृति गोवोंके अङ्गमें लेपन करके तप्त लोहादिके द्वारा गवादिकोंके अङ्गमें दागनेकी विधि है, तथा पूंछके और गर्दनके बड़े हुए केश भी काटते हैं ; कितने ही लोग गवादिकोंके कानको किञ्चित् काट दिया करते हैं । ऐसा करनेसे गोबैलआदि वर्ष रोज तक अनेक प्रकारके रोगोंसे छूटकर आरोग्य शरीरसे अपने स्वामीके गृहमें निवास करते हैं, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ।

यद्यपि ये सब प्राचीन नियम हमारे इस भारतवर्षमें ज्योंके त्यों व्यवहृत नहीं होते हैं, तथापि काशीकन्नौज मथुरा प्रभृतिके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यादि द्विजाति प्रधान स्थानोंमें इन नियमोंका अभीतक भी अनादर नहीं हुआ है । वहां कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा तथा द्वितीया और अष्टमीको सब कोई गो बैलोंकी पूजाकी जाती है,

इन तिथियोंको गोप्रतिपदा, गोद्वितीया, तथा गोपाष्टमी नामसे सम्बोधन करते हैं।

पूर्वाचयं धनिष्ठा च इन्द्राग्नि सीम्यवारुणाः ।

एते शुभप्रदा नित्यं गवा यात्रा प्रवेशयोः ॥

उत्तराच य रोहिण्यां शिनीवासी चतुर्दशी ।

पुष्य श्रवण हस्तेषु चित्रयामष्टमीषु च ॥

गवां यात्रा न कुर्वीत प्रस्थानं वा प्रवेशनम् ।

प्रशवस्तस्य नस्यन्ति येचान्ये तृणचारिणः ॥

अर्काकिंत कुजवारेषु गवां यात्रा प्रवेशयोः ।

गमने गो विनाशं स्यात् प्रवेशे गृहिणी बधः ॥

पूर्वफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, धनिष्ठा, जेष्ठा, कृतिका ऋगशिरा और शतभिषा—ये सब नक्षत्र गो बैलादिके गमन तथा आगमनके सम्बन्धमें सदा सर्वदा शुभदायक हैं। उत्तरफाल्गुनी, उत्तर षाढ़ा, उत्तर भाद्रपद, रोहिणी नक्षत्र तथा अमावस्या-चतुर्दशी तिथि और पुष्य, श्रवण, हस्त, चित्रा प्रभृति नक्षत्रोंमें गो बैलकी बेचना खरीदना और लेना देना मना है। इन नक्षत्रोंमें क्रय विक्रय करनेवाले पशुपालक गृहस्थके तृणचारी समस्त पशु विनष्ट हो जाते हैं। शनि, शनि और मङ्गलवारकी शीवीकी घरसे परित्याग करने अर्थात् बेचकर घरसे पृथक् कर देनेवालेके गवादि पशुओंका विनाश होता और इन दिनोंमें क्रयकारके गो बैल आदिको निज गृहमें प्रवेश कराने वालेकी भार्या मृत्युकी ग्रासमें पड़ती है।

जैसे उचित समय पर कौहुई क्रिया फलदायक हुआ करती है, शरद ऋतुके धान्य वसन्त ऋतुमें फलप्रदान करनेमें समर्थ नहीं होते उसी प्रकार गो बैलादि क्रय विक्रयादिके समयमें ही बेचने खरीदने

से शुभ फल प्रदान करते हैं। अच्छी तरह विचार करके निज तपस्याके बलसे ऋषिलोग सब कार्योंके कर्त्तव्याकर्त्तव्यको जानकर साधारण लोगोंके हितके लिये पहिलेसे ही प्रकाश कर गये हैं जिन्हें सूक्ष्म विषयोंके विचारनेकी शक्ति नहीं है, धर्ममें स्थिर बुद्धि नहीं है। वेही समयको न मानकर अज्ञताका परिचय दिया करते हैं। इस लिये कल्याण चाहनेवाले हिन्दू सन्तानोंको उचित है कि, ऋषियों की कही हुई सम्पूर्ण रीतियोंके मर्मानुसरण करें; ऋषियोंकी प्रदर्शित रीति नीतियोंके प्रतिपालन करनेसे अवश्य इष्टसिद्धि हुषा करती है, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है।

तेरहवें दिन सौर्य फाल्गुनकी गो बैलोंकी तेल, हल्दी लगाने की विधि है, गो बैलोंके सींगमें तेल लगानेकी रीति अबतक प्रचलित है। इस रोजसे लगाय बीच बीचमें गवादिकोंको स्नान कराने से उनका स्वास्थ्य ठीक रहता है। अनेक गृहस्थ कृषिकारोंकी ऐसा विश्वास है कि, गोफाल्गुन इत्यादि गो पर्व हैं उन्हें पूरी तरह प्रतिपालन न करनेसे गृहस्थ तथा गवादि पशु किसीके पक्षमेंभी भलाईकी आशा नहीं रहती।

गवादिही श्रौ प्रामिकी मुख्य अवलम्ब हैं गो सेवासे बहुतेरे महद्भाव संग्रहीत होते हैं; लोगोंके बीच यह बचन प्रसिद्ध है कि, गो सेवा करनेसे पुत्रहीनको भी पुत्र लाभ होता है महाकवि कालिदास के रघुवंश काव्यमें ससागरा वसुन्धरादिपति सूर्यवंशीय महाराजा दिलीपके सखीक ताप साश्रममें रहने तथा गोसेवा करनेका विशेष विवरण प्राय विज्ञमात्रही जानते हैं। देखिये सत्ययुग, त्रेता द्वापर से ही गो पूजा तथा गो सेवाकी रीति प्रचलित है; इसलिये गो सेवा के सम्बन्धमें कदापि उपेक्षा करनी उचित नहीं है प्रसिद्ध है—

गोरू जोरू धान, तीन विद्यमान ।

अर्थात् गो-बैल, भार्या और धान्य (अन्नादि) के बिना भोजन नहीं रहता ; तथा इन तीनोंके अभावसे गृहस्थोंकी शोभा भी नहीं रहती । इन तीनोंका एकत्र समावेश रहनेसे जैसी शोभा होती है वैसी और किसीसे भी नहीं होती, ग्रामवासी बहुतेरे गृहस्थ लोगोंको इस सुखका भलीभाँति अनुभव है ; ऐसे सुखी लोगही धन्य तथा पुण्यकर्मा समझे जाते हैं ; इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ।

शृङ्ग मूले स्थितो ब्रह्मा, शृङ्ग मध्ये तु केशवः ।
 शृङ्गाग्रं शङ्करं विद्यात्, त्रयोदेवा प्रतिष्ठिता ॥
 शृङ्गाग्रं सर्व तीर्थाणि, स्थावराणि चराणि च ।
 सर्व देवा स्थिता देहे, सर्व देवमयी हि गौः ।
 ललाटाग्रं स्थिता देवी नासा मध्ये तु षडसुखः ॥
 कम्बलाश्रितरौ नागौ तत्कर्णेतु व्यवस्थितौ ॥
 स्थितौ तस्याश्च सौरभ्याः चक्षुषो शशि भास्करौ ।
 दन्तेषु वसवश्चाष्टौ जिह्वायां बरुणस्थितः ॥
 सरस्वती च हुङ्गारे यम-यक्षौ च गण्डयौः ।
 ऋषयो रोमकूर्पेषु प्रस्रावे जान्हवी जलम् ॥
 कालिन्दी गोमयी तस्या अपरा देवतास्तथा ।
 अष्टाविंशति देवानां कोम्या लोमस्तुताः स्थिता ॥
 उदरे गार्हपत्योऽग्नि हृदये दक्षिणस्तथा ।
 मुखे चाहवनीयस्तु आवसग्यस्तु कुक्षिषु ॥

एवं जो वर्त्तते गोषु ताडने क्रोध वर्जितः ।
महतीं श्रियमाप्नोति स्वर्गलोके महीयते ॥

(बृहत्पाराशर संहिता)

गौवोंके शृङ्गमूलमें ब्रह्मा, शृङ्गके मध्यस्थलमें केशव, शींगके अग्र-भागमें महादेव, शींगके शेषमें स्थावर और जङ्गमादि समेत सर्वतीर्थ, देहमें सर्वदेवदेवी, ललाटके अग्रभागमें भगवती, नासिकाके बीच षडानन, दोनों कानोंमें कम्बल और अश्वतर नाग ; दोनों नेत्रोंमें चन्द्रमा और सूर्य ; आंठों दातोंमें अष्टवसु ; जिह्वामें वरुण, हुङ्कारमें सरस्वती, दोनों गालोंमें यम और कुवेर ; रोमकूपोंमें ऋषिहृन्द ; मूत्रमें गङ्गा ; गोवरमें कालिन्दी (यमुना) तथा अन्यान्य देवता निवास करते हैं ; लोममें अष्टादस देवताका वास है । गौके पेटमें गार्हपत्य अग्नि ; हृदयमें दक्षिणाग्नि, मुखमें आवाहनीय अग्नि और कूक्षिमें आवसखी नाम अग्नि प्रतिष्ठित है । ऐसे सर्वदेव तथा के अवलम्ब गवादि जिनके गृहमें रहें, उन गोताडनमें क्रोध रहित पुरुषोंको बहुतही कल्याणप्राप्ति होती तथा उन्हें स्वर्गलोक प्राप्त हुआ करता है ।

जैसे पृथिवीके एक एक स्थानोंकी एक एक स्वातन्त्र्यता दीखती है, तथा एक एक तीर्थोंके एक एक प्रकारके महद्भाव प्रतिष्ठित हैं ; उसी प्रकार सूक्ष्मदर्शी तत्त्वज्ञ ज्ञानी लोग गौवोंके एक एक अंगमें एक एक महद्भाव प्रत्यक्ष देखा करते हैं । एक गोजातिके अतिरिक्त अन्य किसी प्राणीके अङ्गोंमें ये सब देवता नहीं दीखते । जिन्हें जिस देवताकी उपासना करनी आवश्यक है, वे पहिले उस देवतामें अवस्थान भाव गौके अङ्गमें प्रतिष्ठित भावसे संग्रह करके सहजमें ही उसकी देवताकी उपासनाके अधिकारी हो सकते हैं सुनिवाक्योंके येही इङ्गित उपदेश हैं ।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि समुद्राश्च सरांसिच ।
गवां शृङ्गोदके स्नाने कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
कुतस्तेषां हि पापनि येषां गृहमलंकृतम् ।
सततं बालवत्स्याभिर्गौभिः स्त्रीभिरिव स्वयम् ॥

(कृषि पराशर संहिता) ।

पृथिवीके बीच समुद्र सरोवर सरित आदि जितनी तीर्थ हैं, वे सब तीर्थ गौके शृङ्गोदक-स्नानजनित पुण्यके सोलहें हिस्सोंके एक अंशकी भी बराबरी नहीं कर सकते। जिनके गृहमें स्त्रियोंकी भांति भांति सदा बालवत्सादियुक्त गौवें अलंकृत रहती हैं, वे गृहस्थ लोग पापरहित समझे जाते हैं। शास्त्रमें वर्णित है, पूर्वजन्मके पापसे मनुष्य अवसादग्रस्थ तथा वेर वेर विपदमें पड़ते हैं; ऐसे लोग गो शृङ्गोदक स्नान करें, तो निश्चयही उनके पापकी उपशम्यता होती है। जैसे स्त्री गृहकी श्री (लक्ष्मी) कहाती है। गौ भी वैसी ही समझी जाती हैं।

दक्षिणाभिमुखा गावः उत्तराभिमुखा अपि ।
बन्धनीयास्तथैवास्तु नच प्राक् पश्चिमासुखाः ॥
गो वृष वाजिशालायां सुतीक्ष्णं लोहदात्रकम् ।
स्थापन्ते सर्वदा तस्यां गविलुप्तविमोक्षणात् ॥

दक्षिण वा उत्तरमुख गोबैलोंको बांधे, पूर्व और पश्चिम मुख न बांधना चाहिये। गोजाति प्रभृतिके निवास स्थानमें अच्छे तीक्ष्ण लोहेके अस्त्र स्थापित करनेसे गौवोंका विलोप नहीं होता, बल्कि ऐसा होनेसे उनकी रक्षा हुआ करती है।

गोशालामें सुतीक्ष्ण अस्त्र स्थापित करनेसे गोजातिकी अकाल

मृत्युसे रक्षा हुआ करती है । महर्षियोंकी कही हुई इन सम्पूर्ण नीतियोंके सम्बन्धमें उपेक्षा करनेसे कदापि इष्ट प्राप्ति नहीं हो सकती ।

खेतीके प्रधान साधन गोजातिके पालन, पोगण, रक्षण, क्रय विक्रय, लक्षणालक्षण, हल जोतनेका शुभ समय प्रभृतिका वर्णन किया गया ; इन सब बातोंको विचार कर जो मनुष्य कृषिकार्यको करता है, उसे अवश्य फावदा होता है । इस लिये बुद्धिमान गृहस्थ कृषकोंको उचित है कि, खेतीके प्रधान अवलम्ब गोवैलोंकी रक्षामें सदा सर्वदा सावधानचित्त होकर तत्पर रहें ; गोवैलोंकी रक्षा कर सकनेसे हिन्दू (आर्य) गृहस्थ कृषकोंको कृषि सम्बन्धमें तरक्की होनेकी पूरी तरह सम्भावना है ; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।

जिन अल्प परिवारयुक्त गृहस्थ कृषकोंकी ज्यादा खेती करनेकी आवश्यकता नहीं रहती, वे केवल दो चार बीघे खेत द्वारा ही अपने भोजनाच्छादनके उपयोगी अन्न उत्पन्न कर लिया करते हैं ; परन्तु ऐसे कृषिकारों (काश्तकारों) को उचित है कि, केवल एक वा दो ही बैलके द्वारा खेत जोतनेका पूरा परिश्रम न करावे ; क्योंकि हृदसे ज्यादा मिहनत करानेसे बैल स्थगित होकर शीघ्रही रोगी होते, तथा अल्प समयमें ही मृत्युके सुखमें पड़ते हैं ; इस लिये ऐसे कृषिकारों को चाहिये कि, कमसे कम स्तम्भ रीतिसे एक हल जोतनेके लिये चार बैल रक्खा करें । यद्यपि दो बैलोंसे एक हल चल सकता है ; परन्तु उन्हें बीच बीचमें विश्राम करानेके लिये कृषकको चार बैल रखना बहुत ही उचित समझा जाता है । क्योंकि खेत जोतनेके समयमें दिन भरके बीच कोई दो बेर और कोई दिन रातके बीच चार बेर हल जोतनेके लिये बैलोंको बदला करते हैं । इस प्रकार बैलोंको परिवर्तन करनेसे उन्हें विश्राम लेनेका समय मिलता है और इस भांति खेत जोतनेसे वे स्थगित होकर सहसा पीड़ित भी नहीं हो सकते ।

जो लोग अपने हाथसे कृषिकार्य करते अर्थात् हल जोतते बोते हैं, वे ही यथार्थमें कृषिकार (काश्तकार) हैं ; ऐसे ही कृषिकारोंके कृषिकार्य आशानुरूप अच्छी तरह पूरे हुआ करते हैं ; और जो लोग अपने हाथसे कृषिकर्म नहीं कर सकते, दूसरे किसानोंके द्वारा खेतीके कार्य कराते अर्थात् हल वगैरः जुतवाते हैं ; उन्हें पूरी रीति से कृषिकर्मके द्वारा लाभ होनेको सम्भावना नहीं रहती । लोक प्रवाद प्रसिद्ध है,—

खेती बारी कामिनी औ घोड़ेकी तङ्ग ।

अपने हाथ सवारिये तबै रहै जी चङ्ग ।

अर्थात् जिस प्रकार स्त्रियोंके सम्बन्धमें असावधान रहने वा उपेक्षा करनेसे वे नष्ट हो जाती हैं, उसी प्रकार कृषिकार्यके सम्बन्ध में भी असावधानी और उपेक्षा बहुतही गर्हित है, इसलिये बुद्धिमान पुरुषको उचित है कि, यत्न पूर्वक खेती और स्त्रीके सम्बन्धमें कदापि उपेक्षा न करें ; क्योंकि इनके सम्बन्धमें असावधान रहनेसे पीछे पड़िताना होता है, कहा है —

नारी खेती खसमैं सेती ।

स्त्री और खेती खसम अर्थात् भालिकके यत्नसे ठीक तथा दुरुस्त रहती हैं । इसलिये जो लोग अपने हाथसे खेती करते अर्थात् हल वगैरः जोतते हैं, उन्हें कृषिकार्यके द्वारा दूना फाइदा होता है, और जो लोग बैठकर अपने सामने अन्यान्य लोगोंके जरिये कृषिकार्य कराते हैं, उन्हें खेतीके द्वारा आधा फाइदा होता है और जो लोग घर बैठे अपने खेतोका सम्बाद पूछते रहते हैं, स्वयं कुछ कृषिकार्य नहीं करते वा देखते भालते नहीं, उन्हें खेतीके जरिये हानि (नुक्सानी) के अतिरिक्त लाभ होनेकी सम्भावना नहीं रहती ; इसलिये बुद्धिमान पुरुषको उचित है कि, स्वयं दत्तचित्त होकर

कृषिकार्यको यथायोग्य रीतिसे सावधानी तथा यत्नसहित करता कराता रहे,—ऐसा होनेसे ही खेतीके द्वारा पूर्ण फलप्राप्तिकी आशा रहती है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।

हलोंमें एक एक जोड़ा बैल जोतकर खेतोंमें लेजाकर एक बेर उनकी परीक्षा कर लेनी उचित है । खेत जोतनेके समय उत्तम, मध्यम और निष्कष्ट भेदके हल भी हुआ करते हैं । हलमें एक जोड़ा बैल जोतकर जब खेतमें चलाते हैं, तब उत्तम, मध्यम और निष्कष्ट हलकी पहचान हुआ करती है । जिस हलका फाल खेतकी मिट्टी में प्रवेश न करके ऊपरको उठ आता है ; वह मध्यम हल कहा जाता है ; क्योंकि इससे भलीभांति खेतकी मिट्टीको जोतकर पोली नहीं कर सकते हैं । इसके अतिरिक्त जोतनेके समय जिस हलका फाल मिट्टीमें बहुत नीचे तक प्रविष्ट हो जाता है, वैसे हलको बैल खींचही नहीं सकते, इसलिये ऐसा हल खेतमें चलानेके अयोग्य समझा जाता है, इस कारण इसे निष्कष्ट हल कहते हैं, जो हल बहुत सहज रीतिसे मिट्टीके भीतर प्रविष्ट होकर भलीभांति मिट्टीको परिचालित कर सकता है, वही खेत जोतनेके उपयोगी समझा जाता है, ऐसे हलकी झूठको हाथसे दाब रखनेसे उसे बैल सहज में खींचते हैं और उससे खेतकी मिट्टी भी अच्छी तरह परिचालित होकर कृषिकार्यके उपयोगी हुआ करती है । हमारे देशमें प्राचीन रीतिके सुताविक बने हुए हलको चीही और फाल प्रति वर्षमें बैशाखी वा आषाढ़ी खेत जोतनेके समय बदलना होता है । उस समय कृषिकार लोग अपने अपने बैलोंका वल समझकर छोटे, बड़े मध्यम जिसकी जैसी सामर्थ्य हो, वे उसके उपयोगी हल बनवा लेते हैं । ये हल अति निर्जनसे लगाय धनकुबिर पर्यन्त सब श्रेणीके कृषकोंके ही उपयोगी हैं ।

आज कल हमारे देशके बहुतेरे लोगोंकी यह इच्छा है कि,

प्राचीन छोटे निष्ठाष्ट हलके परिवर्तनमें इस देशके बीच विलायती चक्र-युक्त नई रीतिसे बना हुआ हल प्रचलित होना उचित है ; क्योंकि वे समझते हैं, कि उससे एकही बेर जोतनेसे खेतकी ज्यादा मिट्टी कटकर एक तरफको उलट जाती है, इससे खेत जोतनेका कार्य उत्तम होता है । परन्तु चक्रयुक्त विलायती हल समतल भूमिके अतिरिक्त असमतल जमीन वाले खेतमें ही चलाया जा सकता है । और बहुत ज्यादा कीमती बलवान बैलोंके अतिरिक्त थोड़े मूल्यवाले छोटे दुर्बल बैल इसे खींच भी नहीं सकते ? तब ऐसे स्थलमें चक्रयुक्त विलायती हल भारतवर्षीय दीन हीन निर्धन कृषिकारोंके लिये किस प्रकार उपयोगी हो सकता है ?

दरिद्र कृषक लोग कृषिकार्यके लिये ज्यादा मूलधन कहाँसे पावेंगे । इस देशमें जो सब गरीब लोग अपने हाथसे हल चलाया करते हैं, उनके बीच बहुतेरे लोगोंका मूलधन बीस या पच्चीस रुपये मात्र रहता है । सोलह रुपयेमें एक जोड़ा बैल तथा चार पांच रुपयेमें और कई खेतीके यन्त्रादि लेकर कृषिकार्यमें प्रवृत्त होते हैं ऐसे घटिया हलसे भी आठ दस बीघा जमीन जोती बोई जाती है । इस आठ दस बीघासे उत्पन्न शस्यदिसे कम परिवारवाले साधारण गृहस्थकी भली भांति जीविका निर्वाह होती है ; इसलिये विचार करनेसे जाना जाता है कि, देशी प्राचीन हल धनी और गरीब सब के ही उपयोगी है परन्तु यूरोपीय चक्रयुक्त नया हल वा “ऐञ्जन प्लाड” उस तरहसे सबके उपयोगी नहीं है । विलायती हलसे एकबेर जोतनेसे ही जो अधिक मिट्टी कटती वा परिचालित होती है, उसमें शस्यदिकोंकी अच्छीतरह उत्पत्ति नहीं होती । क्योंकि बेर बेर खेतको बिना जोते उसकी मिट्टी बीज बोनेके उपयोगी नहीं हो सकती । इसलिए खेतको बेर बेर जोतना बहुत जरूरी कार्य समझा जाता है । इसमें सन्देह नहीं है ।

यद्यपि विलायती चक्रयुक्त हल इस देशके असमतल प्रभृति खेतों में चलानेके लिए सर्वथा उपयोगी नहीं है ; परन्तु उसीके अनुकरण पर जो कलकत्तेमें शिवपुरझाउ नाम हल तैयार किया गया है, वह कई एक अंशोंमें यहांके खेतोंके जोतनेके लिए उपयोगी माना गया है, इसमें विशेषता यह है कि, इस हलके सिरके दहिनी ओर लोहा वा इस्पातकी प्लेट (तख्ती) लगी रहती है ; उसके द्वारा जोतनेके समय नीचेकी मिट्टी उलट कर ऊपरको आजाती है और एकही बेर जोतनेसे खेतकी मिट्टी अच्छी तरह कर्षित होती है । देशी खेत जोता जाता है, लेकिन ऊपरकी मिट्टी नीचे और नीचेकी मिट्टी ऊपरको नहीं उलटती तथा देशी प्राचीन हलके द्वारा जमीन ज्यादा गहराई तक नहीं जोती जा सकती । पर शिवपुरी हलको हमारे देशवासी कृषिकार व्यवहार करनेमें ज्यादा उत्साही नहीं देखते ; क्योंकि इस हलको चलानेमें ज्यादा बल प्रयोगकी आवश्यकता रहती है, इस लिये स्वभाविक आलसी हमारे देशके किसान उतना परिश्रम करना क्यों स्वीकार करेंगे ? इसके सिवाय आजकल प्रायः इस देशके बैलोंकी अवस्था भी अच्छी नहीं है,—और अच्छी तरह वे इस हलको नहीं खींच सकते । इसके अतिरिक्त बहुतेरे लोग कहते हैं कि, पिता पितामह आदिने देशी प्राचीन हलको ही चलाकर कृषिकर्म द्वारा फाइदा उठाया था ; इस लिये कम खर्च तथा कम परिश्रमसे कार्यके उपयोगी देशी प्राचीन हल ही भारतवासी कृषकोंके लिये सर्वथा उपयोगी है ।

जो हो, विलायती हलसे जमीनको जोतना कुछ कष्टकर होता है, शिवपुरी हल कुछ कमकष्टकर बोध होता है । पर विलायती दो चक्के वाला जो नया हल तैयार हुआ है ; वह कुछ सहज रीति से चल सकता है और उससे समतल जमीनकी मिट्टी भी अच्छी कर्षित होती है और जो जमीन वर्षाके जलके अभाव तथा अन्यान्य

कारणोंसे बहुत कड़ी हुई रहती है ; उसे जोतकर दुरुस्त करनेके लिये इस हलकी उपयोगिता प्रसिद्ध है । हमारे देशमें ऐसी अनेक जमीन हैं, जो कि वर्षोंसे बज्जर पड़ी हुई हैं तथा बहुतेरे खेत ऐसे हैं, जो कि बेर बेर जोतने और बारम्बार फसल उत्पन्न करनेसे उनके ऊपरकी मिट्टीकी उर्वरताशक्ति अनेक अंशोंमें कम हो गई है,—ऐसी जमीन तथा खेतोंमें इस नई रीतिसे बने हुए विलायती हलको चलानेसे विशेष फल प्राप्त हो सकता है । परन्तु हमारे देशमें खेती करनेवाली प्रजा बहुतही गरीब है,—उसके पास विलायतसे बढियां हल तथा यन्त्रादि मंगानेके लिये धन कहाँ है ? यदि हमारे स्वदेशीय जमींदार लोग प्रजाके अभावको दूर करनेके लिये यत्नवान हों, तो उसे अच्छे अच्छे यन्त्रोंके सहारे खेती करनेका सुविधा हो सकता है । यदि कोई जमींदार हल प्रभृति कई एक कृषिकर्मके उपयोगी यन्त्रादि मंगाकर अपनी प्रजा को व्यवहार करनेको दें, और वार्षिक मालगुजारीके साथ साथ चार पांच वर्षमें उसकी कीमत वसूल कर लें, तो गरीब प्रजा उनका बहुत कुछ उपकार मानेगी । केवल कृषिके उपयोगी यन्त्र प्रभृति मंगाने से ही कार्य न चलेगा, बल्कि इस देशमें उन यन्त्रादिकोंके मरम्मत करनेके लिये कारखाना खोलनेकी भी विशेष आवश्यकता है । पहिले इस कार्यमें कुछ ज्यादा खर्च होगा, पर जब देशी लोग इन यन्त्रोंका बनाना वा मरम्मत करना सीख लेंगे तब क्रमसे खर्च घट जावेगा । आशा है कि, बहुतेरे जमींदार तथा राजा महाराजाओं का धन इस उत्तम उद्देश्यके लिये व्यय होनेसे देशका बहुत कुछ उपकार होगा । क्योंकि राजाओं तथा जमींदार और देश हितैषी लोगोंके इस महत् कार्यमें उदासीन रहनेसे इस देशके दौल हीन कृषक प्रजाकी दुर्दशा किस तरह दूर हो सकती है ?

हमारे देशवासी बहुतेरे अच्छे अच्छे कृषक खेतकी जोतनेके

पहिले उसकी मिट्टीको फावड़ोंसे खोदकर उलटा देते हैं, उसके अनन्तर बेर बेर हलसे जोतनेसे उस खेतको मिट्टी पोली, नरम तथा बीज बोनेके उपयोगी हो जाती है। पर जमीनका परिमाण ज्यादा होनेसे सब खेतोंकी मिट्टीको फावड़ोंसे नहीं खोद सकते। यहां पर यह भी कह देना उचित है कि, हर एक प्रकारकी मिट्टी वाले खेतोंमें गहराईसे जोतनेकी आवश्यकता नहीं रहती। गहराईसे जोतने पर किसी किसी समय बहुत अनिष्ट हुआ करता है। जिस खेतकी मिट्टीके नीचे कड़वा हों वा जिस खेतके नीचेकी मिट्टी शस्यादिकोंके पक्षमें हानिकारक हो, उसे गहराईसे जोतना वा नीचेकी मिट्टीको उलटा देना अच्छा नहीं है; क्योंकि उससे जल, वायु, तथा सूरजकी धूपके संयोगवाली ऊपरकी उर्वरा मिट्टी नीचे पड़ जानेसे फसलको हानि हुआ करती है।

भारतके बम्बई तथा बिहार प्रदेशमें एक प्रकारका हल व्यवहृत हुआ करता है; उसके द्वारा खेतको जोतते हुए बीज बोया जाता है। उस हलके नगराके मूँठके नजदीक नीचेके सिरे तक एक नल लगा रहता है, उस नलके छेदसे तुरन्तही फालसे कर्षित नालीके बीच स्वयंही बीज गिरा करता है। बीजोंको यथेच्छा खेत में न छींटकर इसी प्रकार श्रेणीबद्ध बोना अच्छा है। ऐसा करनेसे बीज भी बहुत कम लगता है और खेत निराने तथा फसल काटने के लिये भी खूब सुविधा होता है। पर धान और घास वगैरहके बीजोंको इस प्रकार नहीं बोते।

हमारे देशके निरक्षर अज्ञश्रेणी वाले कृषकोंके द्वारा जिस प्रकार खेत जोतकर केवल प्राचीन रीति नीतिके अनुसार कृषिकार्य हो रहा है, केवल उससे ही सन्तुष्ट न रहना चाहिये; क्योंकि समयानुसार भूमिकी मिट्टी प्रकृतिकी प्रकृतिमें बहुत कुछ रदबदल हो गया है और खेतीका प्रधान अवलम्ब गोवंशभी दिनोंदिन नष्ट हुआ जाता

है, ऐसी अवस्थामें नई रीतिसँ खेती तथा हल प्रभृतिके सम्बन्धमें उत्कर्ष साधन करना भारत हितैषी विज्ञ लोगोंका मुख्य कर्त्तव्य कार्य है । यद्यपि विलायत और अमेरिका प्रभृति देशोंकी भाँति भारत-वासी कृषक लोग कृषि तथा कृषियन्त्रादि प्रभृतिके सम्बन्धमें उत्कर्षता नहीं दिखा सकते ; तथापि देश, काल, भूमिकी प्रकृति और स्वदेशीय मनुष्योंकी अवस्थाके अनुसार जहाँतक हो सके यदि कृषिकार्य तथा भारतीय कृषियन्त्रादिके सम्बन्धमें कुछ उन्नति की जाय, तो देशका बहुत-कुछ उपकार हो सकता है ।

हर्षका विषय है, कि भारतवर्षके बीच बड़े बड़े राजा महाराजा तथा लेक्चर देनेवाले देशहितैषी विद्वानोंसे जो कार्य नहीं हो सका, उसे एक पश्चात् शिक्षाविहीन निरक्षर अज्ञ रामचरण नाम कर्मकार करनेमें कटिबद्ध है । समाचार पत्रोंमें प्रकाशित हुआ है कि, मेदनीपुर जिलाके बीच रामचरण कर्मकारने एक ऐसा हल बनाया है कि, वह बिना बैलोंके ही चलेगा, केवल एक मनुष्यकी इस हलको चलानेके लिये जरूरत रहती है । हमारे देशमें गवादिकोंकी कितनी दुर्दशा हुई है, वह पाठकोंको अविदित नहीं है ; गौ-खादकोंकी ज्यादाती तथा गौवोंके चारेके अभावसे वर्त्तमान समयमें दिनों दिन गोवैल प्रभृति नष्ट हुए जाते हैं । हल चलाने वा शकट प्रभृतिमें चलनेके उपयोगी अच्छे बैल आज कल तीस चालिस रुपये से कम कीमतमें नहीं मिलते । दरिद्र कृषकोंके पक्षमें इस प्रकार अर्थसंग्रह होना असम्भव व्यापार है ; तिसके ऊपर प्रतिवर्ष गवादिकोंकी व्याधि असह्य होगई है ; उक्त रोगोंमें दीन कृषकोंके खरीदे हुए बैलोंके मर जानेसे उनके बीच कितने ही जन्म भरके लिये दरिद्र होजाते हैं । ऐसी अवस्थामें रामचरण कर्मकारका बनाया हुआ बिना बैलोंके ही चलनेवाला हल जो मङ्गलमय हुआ है, उसे सब कोई सहजमें ही जान सकते हैं, इसमें कुछ भी संन्देह नहीं है ।

परन्तु दरिद्र रामचरणके पक्षमें यह व्यवसाय चलाना सम्पूर्ण असम्भव है । “वङ्गाली” नाम अङ्गरेजीके प्रसिद्ध समाचार पत्रने देशीय धनी लोगोंकी एक एक कम्पनी बनाकर इस कर्मकारकी हल बनानेके सम्बन्धमें सहाय करनेके लिये अनुरोध किया है ; परन्तु देशके धनवान लोगोंकी भति गति विचारनेसे बोध होता है कि, इस कार्यके लिये कम्पनी संगठित करनेके लिये जो कोई सममत होगे, उस विषयमें सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता ; परन्तु इसके अतिरिक्त कोई सदुपाय भी नहीं देखता है, क्योंकि इस कार्यमें बहुत अर्थव्यय होनेकी सम्भावना है । कई हजार रुपये मूल धन न होनेसे भली भांति कल कारखाना दुरुस्त किये बिना अच्छी तरह कार्य चलना असम्भव मालूम होता है । तब ऐसी आशा की जा सकती है कि, यदि कोई नामी धनी पुरुष कुछ मूल धन लेकर इस कार्यके लिये अग्रसर हो, तो बाकी अंश (सेयर) सहजमें ही विक्रय होकर मूल धन संग्रह किया जा सकता है ।

जानना चाहिये कि, इस हलके सम्बन्धमें कोई यूरोपीय पुरुष किसी अंशको इधर उधर परिवर्तन करके “आविष्कर्ता” की किसी तरह हानि न कर सकें, उस विषयमें सावधान रहना बहुतही जरूरी कार्य है ; और दो चार कर्मकार (लुहार) रखकर प्रति दिन दो एक हल बनानेसे देशका कुछ अभाव न मिटेगा, ऐसे स्थलमें इस “आविष्कार” का क्या मूल्य हो सकेगा ? इन सब कारणोंको विचार कर, इस हलके आविष्कर्ता रामचरण तथा उसके बन्धु बान्धवोंको चाहिये कि, जिस तरह इस कार्यको भली भांति चलाया जा सके उसके सम्बन्धमें यथाशक्त उद्योग करें ; अर्थात् इसके लिये एक कम्पनी संगठित करके इस कार्यको सर्वाङ्गसुन्दर करनेके लिये कोशिश करनेमें तनिक भी विलम्ब न करें ।

कृषि यन्त्रादि ।

कृषिकार्यके लिये उपयुक्त कृषियन्त्र न रहनेसे कृषिकार अच्छी तरह खेतीके कार्य सुसम्पन्न नहीं कर सकता । हमारे देशके अधिकांश कृषकही बहुत गरीब हैं ; उनके पास खेतीके योग्य जमीन रहती है तो खेत जोतनेके उपयोगी बैलही नहीं रहते ; यदि बैल रहें, तो खेतमें बोनेके लिये बीज नहीं रहता ; यदि बीज भी मिला, तो खेती करनेके उपयोगी अन्यान्य यन्त्रादि अच्छे नहीं मिलते । भारतवर्षमें ऐसे बहुतसे स्थान हैं, कि केवल काठके बने हुए हल चौहो वा फालसे ही जमीन जोती जाती है । पर अब भारतवर्षमें प्रायः सर्वत्र हलके फाल लोहे तथा इस्पातके बन रहे हैं । परन्तु इतनेसेही सन्तुष्ट न रहना चाहिये, बल्कि कृषियन्त्रोंके सम्बन्धमें जहां तक हो सके, उत्कर्ष साधनमें कदापि पश्चात्पद न होना चाहिये । हमारे देशकी मिट्टी अनेक स्थलोंमें कृषिकार्यके लिये बहुत उपयोगी रहनेसे थोड़ेही परिश्रमसे बहुतसा अन्न उत्पन्न हो जाता था, इसी लिये कृषियन्त्रोंके उत्कर्षसाधनमें हमारे देशवासी कृषिकार लोग उदाशील थे । परन्तु अब इस प्रकार उदाशील रहनेका समय नहीं है ; क्योंकि अब यहांके भूमिकी उत्पादिकाशक्ति बहुत कुछ घट गई है और दिनों दिन मनुष्योंकी संख्या भी बढ़ती जाती है । ऐसी अवस्थामें ज्यादा जमीनको जोतनेकी आवश्यकता हुई है ; इसलिये कृषियन्त्रोंके उन्नति साधनमें यत्नवान होना हम लोगोंका प्रधान कर्त्तव्य कार्य है ।

बिलायतमें जमीनको हलसे जोतनेके अनन्तर मिट्टीको उलट पलट कर ढेला तोड़ कर जोती हुई मिट्टीको समतल करने लिये एक प्रकारका यन्त्र व्यवहृत हुआ करता है, उसे वहांवाले “ग्रवार” वा “कलटिवेटर” कहते हैं । हम लोगोंके देशमें इस प्रकारका

कोई यन्त्र नहीं है ; हलसेही कई अंशमें यह कार्य कराया जाता है, तथा जोती हुई खेतकी मिट्टीके ढेलोंको तोड़ने और समतल करनेके लिये उसमें हेंगा चलाकर समतल किया करते हैं। हेंगा के दोनों कोनोंमें रसरी बांध कर बैलके जूआसे उस रसरीको बांधना होता है ; फिर जूआ में एक जोड़ा बैल जोड़ कर हेंगाके ऊपर चढ़ते हैं और बैलकी पूंछ पकड़ कर उस हेंगाकी इधर उधर चारीं और खेतमें घुमा फिराकर खेतकी मिट्टीको सम कर देते हैं ; जोते हुए खेतको भी हेंगा देकर समतल कर देनेसे उसकी मिट्टी किञ्चित् ऊपरसे बैठ जाती है, जिससे पशु पक्षी वगैरः खेतमें बोये हुए बीज को निकाल कर खा नहीं सकते। हेंगा देनेके समय बैलकी पूंछ ही हमारे देशीय कृषकोंसे लिये रस्सीका काम देती है। आज तक यह हेंगा, प्राचीन अनुकरण पर ही चला आता है, इसमें अब तक कुछ उत्कर्ष साधित नहीं हुआ। यदि कोई शिष्यनिपुण कारीगर हमारे इस देशीय हेंगाके सम्बन्धमें बिलायतके अनुकरणसे कुछ उन्नति कर सकें, तो उन्हें बहुत कुछ लाभ हो और देशवासियोंका भी बहुत कुछ उपकार हो सकता है।

बिलायतमें कितने प्रकारके कृषि यन्त्र व्यवहृत हुआ करते हैं। जैसे बीज बोनेका यन्त्र, खाद छोड़नेका यन्त्र ; नाली खोलनेकी प्रभृति बहुतेरे यन्त्र हैं। परन्तु उन अनेक प्रकारके यन्त्रोंकी फिलहाल हम लोगोंकी विशेष आवश्यकता नहीं है। केवल हल हेंगा प्रभृति कई एक हमारे देशीय कृषिकर्मके उपयोगी यन्त्रादिकोंके उत्कर्ष-साधन करनेसे हम लोगोंका विशेष उपकार हो सकता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

धान्यादि बीनेके अनन्तर फसलके पौधे अङ्कुरित होनेके साथही साथ घास, काश, कुश प्रभृति भी खेतमें उत्पन्न हुआ करते हैं ; इन सब घास प्रभृतिको खेतमेंसे निकालनेके लिये हमारे देशमें प्राचीन

रीतिके अनुसार कई एक यन्त्र बने हुए हैं, जैसे बिदे, निड़ानी प्रभृति यन्त्र व्यवहृत हुआ करते हैं। इस बिदे परिचालन करने तथा निरानेकी रीति नीचे वर्णन करते हैं,—

— ० —

बिदे (लाङ्गली) चलाना ।

कृषिकार्योपयोगी अत्यन्त जघन्य आकारवाला यह “बिदे” नाम प्राचीन यन्त्र भी प्रधान समझा जाता है। जो हो, बिदे न रहनेसे धानके खेतका परिपाक्य कार्य बहुत कुछ अधूरा रह जाता। विशेष करके शीघ्र उत्पन्न होनेवाले धानके खेतमें “बिदे” (लाङ्गली) को बिना चलाये उसे आवाद करके फाड़दा उठाना बहुत ही कष्टसाध्य है ; इसलिये बिदे नाम यन्त्रका वर्णन करते हैं। “बिदे” नाम यन्त्रको किसी किसी प्रदेशमें “लाङ्गली” और किसी किसी प्रदेशमें “आंचड़ा” भी कहते हैं।

अढ़ाई हाथ लम्बा पांच छ इंच चौड़ा काठके बीच थोड़े टेढ़े आकार वाले छेद रहते हैं, उन छेदोंके बीच प्राय बीस अङ्गुल लम्बे दो अङ्गुली चौड़े चिपटे आकार वाली बारह लोहेकी शलाका ग्रथित की हुई रहती हैं। इन शलाकाओंका प्रथमांश स्थूल रहता है और क्रमसे वक्रभाव और सूक्ष्म होता हुआ अग्रभागमें सूचीकी तरह आकार धारण किया करता है। इस बिदेके मध्यस्थलमें एक बड़ासा छेद रहता है, उसमें एक लम्बासा पतले बांसका टुकड़ा प्रविष्ट कर दिया जाता है। इसी बांस खण्डमें रसरीसे जूआ बांधकर एक मनुष्य एक जोड़ा बैल के द्वारा बिदे (लाङ्गली) चलाया करता है। बिदे भी हलकी तरह उत्तम मध्यम और निकष्ट हुआ करता है ; परन्तु इसमें विशेषता यह है कि, जो “लाङ्गली” मिट्टीके भीतर थोड़ी हो प्रवेश करके हलके रीतिसे चलती है, वही

उत्तम समझी जाती है । इसकी शलाका बीस अङ्गुलकी होती है, पर काठके बाहिर प्रायः बारहही अङ्गुलके अनुमान दिखाई देती है । सब शलाकाओंके अग्रभाग को ठीक समान करके काष्ठके भीतर सज्जित कर रखना होता है । लाङ्गलीका काठ बबूल अथवा बेल का रहता है, बबूलका काठ न मिलने पर बेलका काठ व्यवहार करते हैं ।

खेतमें बीज बीनेके अनन्तर हिंगा देनेके बाद जब खेतमें धानके पौधे सात आठ अङ्गुल ऊँचे हो जाते हैं ; तब उस खेतमें विदे (लाङ्गली) चलानेकी आवश्यकता हुआ करती है । (लाङ्गली) विदे चलानेके पहिले खेतकी मिट्टीकी परीक्षा कर लेनी होती है, जब देखे कि खेतकी मिट्टीमें सर्वत्र चड़चड़ाहट मालूम होती है, तथा कहीं कहीं मिट्टीमें दरार दीखते हैं, तबही लाङ्गली चलानेका उपयुक्त समय समझे । ऐसी अवस्थामें विदे (लाङ्गली) चलानेसे खेतकी मिट्टी अच्छी प्रकार परिचालित हुआ करती है । खेतमें पूरी तरह तीन चार बेर सीधी तरहसे लाङ्गली चला देनेसे किसी स्थानकी मिट्टी खेतमें अपरिचालित नहीं रहती ; और इस तरहसे परिचालित हुई मिट्टी सूरजकी धूपसे सूख जाने पर उसके ऊपर स्थित सम्पूर्ण तृणोंके अङ्कुर भी सूख जाते हैं । जब खेतकी मिट्टी थोड़ी थोड़ी सरस रहे, उसही अवस्थामें विदे (लाङ्गली) चलाना उचित है । जब खेतकी मिट्टी बहुत नरम और गीली रहती है, तब उसमें विदे चलानेसे कोई विशेष उपकार नहीं दीखता ; बल्कि उलटीबुराईही हुआ करती है । विदे चलानेकी रीति यह है कि, पहिले पहिल जिस तरफसे जिस प्रकार विदेको चलाते हैं, उसी तरफसे प्रति बेर चलाना होता है ; परन्तु सीधाही चलाना अच्छा है ; पर यदि सीधी तरहसे तृण आदि न निकले तो विपरीत भावसे विदे चलाने की आवश्यकता हुआ करती है । विदे चलानेके समय हाथमें स्थित

रसरीको खूब खींचके रखना होता है । लोहेकी शलाकाओंकी खेतकी मिट्टीमें अधिक दूरतक प्रविष्ट न होने देवे ; केवल ऊपरी मिट्टीके ऊपर विदे चलाना उचित है ।

शस्यक्षेत्रोंमें बीज अङ्कुरित होने पर जो सब तृणादि उत्पन्न होते हैं उन्हें समूल नष्ट करनेके लिये खेतमें लाङ्गली (विदे) चलाई जाती है ; इसके अतिरिक्त लाङ्गली (विदे) चलानेसे शस्यक्षेत्रोंके और कई एक फाड़दे देखे जाते हैं ।

बेर बेर हेंगा देनेसे खेतकी मिट्टी अत्यन्त संलिप्त हो जाती है ; और वर्षाके जलसे मिट्टीके योगाकर्षणशक्तिके परिमाणकी कुछ बढ़ती हुआ करती है । इन दोनों कारणोंसे खेतके मिट्टीमें जो कड़ापन उत्पन्न हुआ करता है, उस कठिनार्द्धको शस्यादिके बीजोंके कोमल अंकुरों भेद कर ऊपरकी नहीं उठ सकते ; इसके अलावे भूपृष्ठकी मिट्टीके सर्वदा संलिप्त रहनेसे उसके ऊपर वर्षाका पानी पड़तेही भीतर प्रवेश न कर सकनेसे ऊपरही ऊपर बह कर स्थानान्तरमें चला जाता है । खेतकी मिट्टीके भीतर जल प्रविष्ट न होनेसे उसमेंके शस्यादि तेजस्वी नहीं होते । बीनेके पहिले और पीछे इस कड़ेपनको दूर करनेके लिये खेतकी मिट्टीको खोद देने वा गोड़नेकी आवश्यकता रहती है । पर धानके अंकुर बहुत घने उत्पन्न होते हैं, इसलिये कुदाल प्रभृतिसे गोड़ नहीं सकते तथा कुरपी प्रभृतिसे निराकार घास प्रभृतिको खेतसे पृथक् करनेमें ज्यादा खर्च भी पड़ता है और निड़ानी प्रभृति वा खुरपी वगैरह के द्वारा धानके खेतकी घास प्रभृति को दूर करना बहुतही मुश्किल कार्य है ।

जिस समय धानके अंकुर बहुत छोटे छोटे रहते हैं, उस समय खेतकी मिट्टी सूरजके धूपसे सूख जाने पर उन अंकुरोंकी जड़ें भी भुलस जाती है ; परन्तु खेतमें विदे चला रखनेसे मिट्टी परिचालित हुई रहती है और ऊपरसे सूखने पर भी वह नीचे तर बनी रहती

है, जिससे धानके पौधोंको किसी प्रकार नुकसान नहीं पहुँच सकता। बिदे चलानेसे खेतकी मिट्टी नरम और पोली बनी रहती है और वृष्टिका पानी पड़तेही धानके पौधोंको ज्यादा तेजस्वी बना देती है।

शस्योंके आवाद सम्बन्धमें बिदे बहुतही उपकारी यन्त्र है, उसे लिख कर शेष नहीं किया जा सकता। जिसने पूर्व समयमें इस यन्त्रको तैयार किया उसके बुद्धि और साहसकी बहुत प्रशंसा करनी चाहिये। छोटे छोटे धानके पौधोंके ऊपरसे भारयुक्त इन बारह लोह-शलाकाओंसे युक्त बिदे (लाङ्गली) को वह किस प्रकार चलानेमें साहसो हुए थे, उसे कहा नहीं जा सकता। धानके खेतोंमें बिदे न चलानेसे जो सब दोष उपस्थित होते हैं; बिदे वा (लाङ्गली) परिचालित करनेसे वे सब सुधर जावेंगे, इसे उनने किस प्रकार अनुभव किया था, वह हमारी क्षुद्रबुद्धिमें नहीं आता है। जो हो, धानके खेतोंमें लाङ्गली चलानेसे बहुत कुछ उपकार हुआ करता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

—c—

खेत निराना ।

जिन खेतोंमें शस्यादि बीनेके अनन्तर घास वगैरः बहुत ज्यादा उत्पन्न होती हैं और उन्हें शस्यादिकोंके बढ़ने पर किसी यन्त्रादिसे दूर करनेकी उपाय नहीं रहती; तब खुरपी तथा निरानी प्रभृतिके द्वारा निरा कर उन घास प्रभृतिको शस्यक्षेत्रोंसे निकाल कर अलग फेंक देना होता है। खेतके बीच अकेले कोई कार्य करनेके लिये उत्साह नहीं होता, इस लिये सात आठ आदमी एक साथ खेतमें बैठ कर उसमेंकी घास वगैरः निराके शस्यक्षेत्रोंको साफ कर देते हैं; खुरपी वगैरः से निरा देने पर शस्यक्षेत्रोंके सम्पूर्ण तृणादि निकल जानेसे फसलोंके पौधे स्वच्छन्दतासहित मिट्टीके भीतरसे अपने

आहार्य पदार्थों को खींच कर बढ़ते तथा परिपुष्ट होते हैं । निराने से खेतकी मिट्टी पोली तथा नरम हुआ करती है और उसमें वायु भी यथेष्ट रीतिसे प्रविष्ट हुआ करती है, इसके अतिरिक्त सूरजकी किरणोंके भी उसमें यथोचित प्रवेश होनेसे शस्योंके लिये अधिक फाइदा पहुँचता है, सूरजकी गरमी और जमीनकी तरीसे बीजोंके अंकुर यथेष्ट परिमाणसे बढ़कर यथोचित फल प्रदान किया करते हैं ; निराने पर खेतकी मिट्टी पोली रहनेसे रातके समय उसमें ओसका जल पड़ कर यथायोग्य रीतिसे उसे तर बनाये रहता है । जिससे कि, फसलोंके लिये हर एक समयमें उपकार होनेकी सम्भावना रहती है ।

निरानेके समय कृषक लोग श्रेणीबद्ध रूपसे बैठकर निराते हैं । शस्योंके पौधोंको यत्न सहित बचाते हुए केवल तृणोंको निरानी वा खुरपीके द्वारा जड़समेत खोदकर निकाल लेते हैं अथवा तृणोंको जड़से काटकर पृथक् कर देते हैं । खेतको निराकर घास प्रभृति निकालनेके समय बहुतेरी घासोंकी जड़ोंको बिना निकाले वे फिर बढ़कर फसलोंके पौधोंको नुक़्सानी पहुँचाया करती हैं ; जैसे,— मोथा, काश और कुश प्रभृति की जड़ें मिट्टीमें बहुत नीचे तक रहती हैं और उन्हें केवल जमीनकी मिट्टीके समान ऊपरसे काट देनेसे फिर वे बढ़ जाया करती हैं ; ऐसी घासोंको जड़ सहित निकालकर फेंकना होता है ; परन्तु काश कुशकी जड़ोंको खेतमेंसे निकालकर फेंकना सहज कार्य नहीं है ; परन्तु मोथाकी जड़को जोकि थोड़े ही नीचे तक मूल मात्र रहती है ; निकालनेमें ज्यादा कठिनाई नहीं होती ।

अच्छी तरह जोती हुई जमीन रहनेसे एक बीघा खेतको आठ दस आदमी निरा सकते हैं । परन्तु जिस जमीनमें मोथा तथा काश कुश प्रभृति अधिक होते हैं, उसे एक बेर निरानेमें दस बारह आदमीसे कम नहीं लगते ।

मिर्चा प्रभृतिके खेतोंमें बांक वा खुरपीसे निरानेमें विशेष सुविधा होता है ; क्योंकि उससे मिर्चाके पौधोंके जड़की मिट्टीको खोदना, खेतको निराना प्रभृति सब कार्य्य हुआ करता है ।

मिर्चा प्रभृतिके खेतोंको निराने वा पौधोंके आस पासकी मिट्टी को खोदकर पोली करनेके लिये खुरपी वा बांकसे परिचालित करनी होती है । इस प्रकार खुरपी वा बांकसे मिट्टी खोदने निरानेके समय उसकी बीच जो तृणादि रहते हैं, उन्हें बायें हाथसे बटोरकर एक जगहमें एकत्र करते जाते हैं । इसी प्रकार मिर्चा वगैरहके निराने तथा पौधोंके अगल बगलकी मिट्टीको खुरपी द्वारा खोद खोदके पोली करते हुए क्रमसे आगेको बढ़े जाते हैं । इसी भांति खेतको निराकर उसमेंकी तृण घास वगैरह बाहिर कर देते हैं ।

जिस खेतमें जलबद्ध रहता है, उसे निराना बहुतही मुश्किल होता है । इसलिये ऐसे खेतमें उत्पन्न हुए तृण वगैरहको हाथसे पकड़कर ऊपरको खींच लेनेसेही वे सब निकल आते हैं ; ऐसे तृणों को स्थानान्तरमें फेंकनेकी भी विशेष आवश्यकता नहीं होती, केवल तृणादिकोंसे सुट्टी भरजानेपर उन तृणोंको उसी खेतकी मिट्टी अर्थात् कीचड़में गाड़ देते हैं इत्यादि । इसी प्रकार शस्य क्षेत्रोंको निराकर सर्वदा साफ रखना होता है । खेतमें घास वगैरह न रहनेसे शस्योंके पौधे सुगमताईसे बढ़कर फल प्रदान करनेमें समर्थ होते हैं ।

इन यन्त्रोंके सिवाय और भी फसल प्रभृतिको काटनेके लिये कई एक छोटे छोटे यन्त्र व्यवहार किये जाते हैं, जिनका विशेष रीतिसे वर्णन करनेकी ज्यादा आवश्यकता नहीं समझते ।

बीज ।

बढ़ियां पुष्ट पके हुए निरोग और ताजे बीज कृषिकार्यके प्रधान साधन हैं । बीजके ही गुण दोष पर भविष्यमें खेतीके द्वारा यथोचित फलप्राप्तिकी सम्भावना रहती है । योरोप और अमेरिकावासी जो बीजकी उत्कर्षताके प्रभावसे कृषिकार्यमें विशेष रीतिसे उन्नति कर रहे हैं, उसे कौन नहीं जानता है ? उनके यत्नसे अव्यवहार्य उद्भिजादि भी दिनों दिन व्यवहारयोग्य हुए जाते हैं । यथार्थमें जिस जगहके लोग काम काजमें ज्यादा कोशिश करते हैं, तरक्की भी उन्हीं स्थानोंमें हुआ करती है । यत्न और उद्यमके अतिरिक्त कहीं भी उन्नति नहीं देखी जाती । कृषिकार्यमें भारतवासी कृषक लोग विशेष रीतिसे कोशिश नहीं करते तथा ध्यान भी नहीं देते ; इसी हेतु इस देशमें कृषिकर्मकी तरक्की भी नहीं होती है ।

हमारे देशवासी कृषकोंके मनमें ऐसा संस्कार है कि, बीजमें जीवनी शक्ति रहती है ; अर्थात् जिसे बोनेसे अंकुर उत्पन्न हों, उसे जीवनी शक्ति कहते हैं । लोग कहते हैं कि, फल फूल तथा फसलों के उत्कर्ष साधनके सम्बन्धमें मिट्टीका दोष गुण कारण हुआ करते हैं, यह बात स्वीकार करने योग्य है । पर केवल मिट्टीके दोष गुण ही फसलोंके बढ़ियां तथा घटियां होनेमें हेतु नहीं हैं ; विशेष करके बीजके उत्कर्षापकर्षसे ही फसलोंके सम्बन्धमें उक्त दोष और गुण संघटित हुआ करते हैं । बीज संग्रह करनेके विषयमें हमारे भारतवासी कृषकलोग बहुतही अमनोयोगी दीखते हैं । यहांवाले कृषिकार पके, अधपके, सतेज, निस्तेज सब तरहके बीज एकहीमें मिला और उसीको समयानुसार खेतीमें बोया करते हैं, जिससे कि अव-
नतिके अतिरिक्त कृषिकर्ममें उन्नति होनेकी सम्भावना नहीं रहती ।
बीज संग्रह करके बोनेके लिये पके पुष्ट दाने पृथक् करके हिफाजत

से रखना बहुतही जरूरी कार्य है । बीज संग्रह तथा बीने योग्य बीजोंकी उचित रीतिसे रक्षित न कर सकनेसे उनके द्वारा उत्पन्न फसलोंके फल फूल तथा दाने निकष्टसे निकष्ट हुए जाती हैं । यदि अच्छी तरह फलप्राप्तिकी आशा हो, तो पके हुए बढ़ियां पुष्ट निरोग बीजको खेतोंमें बोना मुख्य कर्तव्यकार्य है । हमारे देशमें बीने योग्य बढ़ियां चुने हुए ताजे निरोग परिपुष्ट पके हुए बीजको बेचने-वाले सौदागर भी प्राय नहीं देखते हैं । परन्तु हम विशेष उद्योग और विपुल अर्थ व्यय करके “कलकत्ता काशीपुर कृषिशाला” में देशी विदेशीय फसल तरकारी प्रभृतिके बीज * प्रति वर्ष मंगाकर भारतवर्षमें कृषिकार्यकी तरक्कीके लिये सदा सर्वदा बेचनेके लिये मौजूद रखते हैं । किस प्रकार बीजोंको संग्रह करना चाहिये, उसे नीचे लिखते हैं ।

* कलकत्ता,—“काशीपुर कृषिशाला” में जगत् भरके नामी तथा प्रसिद्ध बीज संग्रह करके बड़े यत्नसे रक्खे गये हैं । पृथिवीके जिस प्रान्तमें फल फूल शाक सब्जीके वृक्ष तथा बीज वगैरः मिलते हैं, वे सब यहाँ सञ्चित हैं । और हमारे देशमें उत्पन्न हुए फूल फल आदिको तो बात न पूछिये,—सबको भली भाँति रक्षित किया है । जिस देशकी आब हवा हमारे देशके बमूजिब नहीं है, वहाँ के बीजोंके रखनेके लिये उसी देशके सुताविक कृत्रिम रीतिसे आब हवा तैयार करके वा इस देशकी आब हवाका असर उनपर न पहुच सके—इस प्रकार प्रबन्ध करके उन्हें संरक्षित करना होता है ।

किसी विषयकी सीखनेके लिये देखना और पूछना यही उपाय हैं । प्रतिवर्षकी वार्षिक प्रदर्शिनी (मेले) में सब साधारण लोग उपस्थित होकर इस कृषिशालाके संरक्षित वृक्ष, बीज आदिका अनुभव कर कृषिविद्या तथा उद्भिज्ज विद्याकी उन्नति कर सकते हैं ।

देखा जाता है कि, सतेज फसलोंके पौधोंसेही अच्छे फल फूल तथा पुष्ट दाने हुआ करते हैं । इसलिये बढ़िया बीज प्राप्त करनेके इच्छासे फसलोंके पौधोंको सतेज रखनेकी कोशिश करनेकी बहुत जरूरी कार्य है, जल, वायु, बढ़िया मिट्टी, सूरजकी रोशनी पुष्टिकार खाद (सार) और पके हुए ताजे बीजोंके प्रभावसे उत्पन्न हुए

कृषि सम्बन्धीय अनेक जांच परीक्षा, विदेशी बीज बीना, भिन्न भिन्न खाद देकर भिन्नकाम निकलना—प्रकृति बातें प्रत्यक्ष दिखाई जाती हैं ।

कृषकों तथा सर्व साधारणके सुबीतेके लिये यहांपर देशी विदेशी तरह तरहके बढ़ियां पुष्ट पके हुए ताजे बीज,—जैसे कि, तमाकू, कपास, रोहाघास तथा विविध रङ्गके बीज सदा सर्वदा बिकनेके लिये मौजूद रहते हैं ।

अच्छा पक्का बढ़ियां पुष्ट और नीरोग बीज बिना संग्रह किये खेती करना विडम्बना मात्र है । हमारे देशमें पृथक् बीज बेचने वाले कोई सौदागर नहीं दीखते, इस अभावको दूर करनेके लिए हम बहुतसाधन व्यय करके प्रतिवर्ष विदेशसे बढ़ियां पुष्ट ताजे बीज मंगाकर सुलभ मूल्यमें बेचते हैं । इसके सिवाय हरएक मौसिमके योग्य अपने कृषिशालासे उत्पन्न हुए देशी शाक तरकारी वगैरहके बीज भी हमारे यहां बिकनेके लिये सर्वदा मौजूद रहते हैं । जो कि रुपया भेजने वा वेलुपेवल द्वारा मंगाने पर ग्राहकोंके पास डाक द्वारा भेजे जाते हैं ।

कृषिकी उन्नतिके लिए विदेशी बीज बड़ी हिफाजतसे वण्डलोंमें मंगाए गये हैं जिससे उनके अंकुरित होने और फल लगनेमें किसी तरहका सन्देह नहीं है और खरीददारोंके भी ठगी जानेका डर नहीं है ।

फसलोंके पौधे सतेज रह सकते हैं। किस प्रकारकी मिट्टी, जल, वायु, सूरजकी रोशनी खाद तथा बीज पुष्टिकर दाने उत्पन्न करनेवाली फसलोंके उपयोगी होते हैं, उसे जाननेके लिये कृषिकारों (काश्तकारों) को कुछ वैज्ञानिक ज्ञान तथा बहुदर्शिता रहनी चाहिये। अम्लजान, यवक्षार ज्ञान, आङ्गारिकाम्ल, जलजान, प्रभृति कितनेही वायवीय पदार्थ तथा पोटास, मैगनेसिया, फसफरस चूना प्रभृति कितनेही पार्थिव पदार्थ उद्भिजोंके शरीर पोषणके निमित्त बहुतही प्रयोजनीय हैं। वायवीय पदार्थोंको फसलोंके पौधे प्रायः वायुसे खींच लेते हैं। और पोटास आदि पदार्थोंको अपनी मूल (जड़) के सहारे जमीनके भीतरसे खींचा करते हैं। जमीनमें इन पदार्थोंकी कमी वा अभाव रहनेसे खेतोंमें खाद डालने की जरूरत हुआ करती है। जीवजन्तुओंके मलमूत्र, खली, राख, चूना, हड्डो, जीवोंके मृत शरीर और उद्भिज आदिमें उपरोक्त पार्थिव पदार्थ अधिक परिमाणसे रहते हैं। इसी लिये ये सब चीजें बीज बोनेवाले खेतोंमें खाद (सार) रूपसे डाली जाती हैं। परन्तु अलग अलग उद्भिजोंकी प्रकृति अनुसार किसीके लिये उक्त पोषक आदि के बीच कोई पदार्थ ज्यादा और कोई पदार्थ कम डालनेकी आवश्यकता रहती है। जिस खादमें जिन उद्भिज वा फसलोंके पोषणोपयोगी पदार्थ ज्यादा हैं; उनके लिये वे ही अधिक उपकारी हुआ करते हैं। फसलोंकी प्रकृतिके सुताविक प्रयोजनीय खाद बिना डाले उससे कुछ फाइदा नहीं दीखता, बल्कि उलटी नुकसानी हुआ करती है। इसलिये जो खाद जिन फसलोंके उपयोगी हो, कृषिप्राणी (काश्तकारी) को चाहिये कि, उनके लिये खेतोंमें उन्हीं खादोंको डाला करें। इस प्रकार फसलोंके पौधोंकी यत्नपूर्वक उपयुक्त रीतिसे परिचर्या करने पर वे सहजमें ही सतेज होते हैं, और उनके द्वारा यथोचित फलप्राप्तिकी आशा भी रहती है। ऐसी फसलोंके

बीज जिनके फल वा दाने बड़े, पुष्ट और पके हैं। उन्हें ही बीजों के लिये संग्रह करके रखना चाहिये। विना फल पके बीज संग्रह न करे। संग्रह किये हुए बीजोंके बीच जो अधपके वा अपुष्ट हों, उन्हें निकाल कर अलग कर दे और बीज अच्छे पके हुए बीजोंको सूरजकी धूपमें सुखा कर यत्न सहित रखे। कितने ही ऐसे उद्भिज हैं, कि उनके बीजोंको ताजेही बीजोंसे अंकुर निकलते हैं ; इसलिये ऐसे बीजोंको न सुखा कर ताजेही बीजों को दे। और कितने ही उद्भिज ऐसे हैं, कि उनके बीज बीजोंके समय पर्यन्त सूखे न रहनेसे वे उत्पादिका शक्तिरहित होजाते हैं ;—ऐसे बीजोंको सुखा कर धूलके साथ मिलाके बोतलके बीच रखना अच्छा है। इसी प्रकार बीज संग्रहकी रीति अवलम्बन करनेसे फूलफल तथा फसल तरकारी प्रभृतिके सम्बन्धमें विशेष उन्नति होनेको सम्भावना है।

जगत्स्रष्टा जगदीश्वरने उद्भिज्जबंशको अव्याहत रखनेके लिये बीज उत्पन्न किया है ; इस लिये बीजमात्रमें ही निःसन्देह अंकुरोत्पादनशक्ति है। तब जो बहुत समय बीज बीजों पर भी अंकुरोत्पत्ति नहीं दीखती ; उसके दो प्रधान कारण मालूम होते हैं। पहिला कारण बीजकी जीवनीशक्ति नष्ट हो जाने पर बीजको बोना है। दूसरा कारण बीजका अपव्यवहार करना अर्थात् जिस बीजके अंकुरित होनेमें जिस परिमाणसे जल वायु तथा उत्तापकी आवश्यकता रहती है, उसे कुछ भी न विचारके जहाँ तहाँ किसी एक समयमें बो देना। जैसे प्राणियोंकी जरायुके बीच भ्रूण पहिले तरल अवस्थामें रहके क्रमसे घनीभूत होकर हाथ पांव प्रभृति अवयव विशिष्ट होता है ; उद्भिजोंके भ्रूण भी बीजके बीच ठीक उसही अवस्थामें निवास करते हैं। किसी परिणत बीजके बाहिरी आच्छादन पृथक् करने वह स्वयं ही दिखाई देता है। जब बीजसे अंकुरोत्पत्ति होनेका उपक्रम होता है, तब वैसी हालतमें किसी बीजको

काट कर देखनेसे उद्भिज्ज भ्रूणकी प्रधानदृष्टि स्पष्ट दीखेंगी कि, दोनो दल कटाके आकारसे एक कोनेमें संलग्न हैं ; उस संलग्न स्थानके निकटमें भावी पौधेके मूल तथा काण्ड (शाखा) का सूत्रपात दिखाई देगा । उद्भिज्जवेत्तालोग दल, मूल और काण्ड (शाखा) की समष्टिको भ्रूण शब्दसे उल्लेख करते हैं । भ्रूणके एक पक्षमें स्थित एक तरहका कोमल पदार्थ बीजके अधिकांश अङ्गको आवृत किये रहता है, यह श्वेतसार नामसे प्रसिद्ध है । श्वेतसार नवीन उत्पन्न पौधोंके पोषणार्थ बीजके बीच निवास करता है । बीजसे अंकुर उत्पन्न होने पर रसायनिक क्रियासे वह श्वेतसार शर्करारूप में परिणत होता है और जलमें उसके द्रव होनेसे नये उत्पन्न बीजके अङ्गुर उसे सहजमेंही चूषकर परिपुष्ट हो सकते हैं । कितनेही बीज के बीच श्वेतसार स्पष्ट रीतिसे नहीं दीखता, वह बीजके भीतरी-भ्रूणशरीर तथा पत्रके बीच सञ्चित रहता है । जो हो, अङ्कुरोत्पादनशक्तिको ही बीजकी जीवनीशक्ति कहते हैं ; यह शक्ति सब तरह के बीजोंमें समकाल स्थायी नहीं रहती । ऐसे बहुतरे उद्भिज्ज हैं कि, उनके बीज पकने पर बहुत थोड़ेही समयके बीच जीवनीशक्ति-रहित हो जाते हैं । और बहुतरे उद्भिज्ज वा फलोंके बीज ऐसे हैं कि, बहुत समय तक रखने पर भी उनकी जीवनीशक्ति नष्ट नहीं होती । जिन बीजोंके ऊपरके आवरण (त्वक्) टूट रहते हैं, वे कोमल-त्वक्-विशिष्ट बीजोंकी अपेक्षा दीर्घकाल तक स्थायी होते हैं । बीजोंके खूब पक जाने पर उन्हें अच्छी तरह धूपमें सुखा कर संग्रह करना चाहिये ; क्योंकि बीज अच्छी तरह बिना पके और गीली अवस्थामें रहनेसे जीवनीशक्ति रहित होजाते हैं । यद्यपि बीजके अनन्तर बीजके अङ्कुरित होनेमें मिट्टी, जल, वायु और तापके सहाय की विशेष आवश्यकता रहती है । पर बहुत ज्यादा उन्नाप होनेसे बीजके अङ्कुर झूलस जाते हैं ; इसलिये बीज अङ्कुरित होनेके समय

तापका कुछ कम रहना अधिक उपकारक समझा जाता है, बल्कि ताप (सूर्यकी रोशनी) की अपेक्षा अन्धकारमें बीजोंके अंकुरोत्पादन कार्य अच्छी तरह निर्वाहित हुआ करते हैं ; क्योंकि अन्धकारमें स्थित बीजको ही अपेक्षाकृत शीघ्र अंकुरित होते देखा जाता है । पर अंकुर उत्पन्न होनेके अनन्तर सूरजकी रोशनीका अभाव होनेसे पौधे सफेद रंग तथा अस्वाभाविक दीर्घाकार होजाते हैं ;

बीजोंके अनन्तर बीज मात्र जमीनमेंसे खुराकको खींच करफूलते हैं । इस प्रकार फूलनेसे बीजके ऊपरका आवरण फटकर उसके भीतरसे भ्रूणकी दो छुद्र इन्द्रिय प्रकाशित होती हैं । एक मिट्टीके भीतर मूलरूपसे प्रवेश करती है और दूसरी ऊपरको उठकर शाखा रूपसे पत्र तथा फूल फलोंसे परिपूरित हुआ करती है ।

जिन फसलों तथा तरकारी प्रभृतिके बीज बहुत छोटे रहते हैं, उन्हें खूब जोते हुए बीने योग्य खेतमें उचित समय पर छीटे (बीये) और उनके ऊपर खूब महीन धूलकी तरह मिट्टी भुर भुरा देवे, क्योंकि ऐसा होनेसे उस मिट्टीके भीतर वायु प्रवेशका मार्ग नहीं रुक सकता । इत्यादि । परन्तु जिन फसलोंके बीजबड़े होते हैं, उन्हें मिट्टीमें कुछ नीचे तक बीनेसे भी विशेष हानि नहीं होती बल्कि लाभकी ही सम्भावना रहती है ; पर बीजोंको यथायोग्य खेतमें योग्य समय पर बीना उचित है । बीज और खेतके सम्बन्धमें राजर्षि मनुका मत नीचे उद्धृत करते हैं, —

इमं भूमिर्हि भूतानां शाश्वती योनिरुच्यते ।

न च योनिगुणान् कांश्चिद्वीजं पुष्यति पुष्टिषु ॥

भूमावप्येककेदारे कालोप्तानि कृषीवलैः ।

नाना रूपाणि जायन्ते बीजानीह स्वभावतः ॥

ब्रीहयः शालयो मुद्गास्तिला माषास्तथा यवाः ।
 यथा बीजं प्ररोहन्ति लशूनानीक्षवस्तथा ॥
 अस्यदुप्तं जातमन्यदित्ये तन्नोपपद्यते ।
 उप्यते यद्वि यद्वीजं तत्तदेव प्ररोहति ॥
 यादृशन्तुप्यते बीजं क्षेत्रे कालोपपादिते ।
 तादृगोहति तत्तस्मिन् बीजं स्वैर्व्यञ्जितं गुणैः ॥
 बीजस्यैव योनाश्च बीजमुत्कृष्टमुच्यते ।
 सर्वभूत प्रसूतिर्हि बीजलक्षण लक्षिता ॥

मनु सं० अ० ८ श्लो० ३५ से ४७ ।

अर्थ—यह भूमि जीवधारियोंकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में शाश्वतीयोनि कहली जाती है । परन्तु योनिके गुण अनुसार बीज के अंकुरादि उत्पन्न होते नहीं देखे जाते ; अर्थात् क्षेत्रके अनुरूप कोई गुण भी बीजसे उत्पन्न अंकुरोंमें नहीं होते । समयानुसार कर्षणादि के अनन्तर बीज बपन करने वा रोपनेसे बीजके गुण स्वभावानुसार ही अंकुरोत्पत्ति होती है । इसमें अन्यथा नहीं होता । जैसे,—उड़द, मूंग, शालीधान, ब्रीही, लशून, यव और ईख प्रभृति शस्यादि अपने अपने बीजके अनुरूप ही उत्पन्न हुआ करते हैं । अर्थात् पौंदा ऊख से पौंदा, खोंड़ा से खोंड़ा, कजलहिया से कजलहिया और केवाही से केवाही ऊख ही उत्पन्न होते हैं ; इसके विपरीत यानी पौंदा ऊख बपन करने वा रोपनेसे उसके अंकुरसे केवाही वा अन्य जातिके ऊख नहीं उत्पन्न होते । ऐसे ही प्रत्येक बीजके अंकुर से उनके स्वभाव अनुसार ही फलादि होते हैं । इसी प्रकार रतनगोला धानके बीजसे रतनगोला

धान ही उत्पन्न होगा, उससे कदापि कनकजीर वा अन्य धान नहीं उत्पन्न हो सकते । इसी प्रकार अन्यान्य शस्यों वा औषधियों से उनके पूर्व बीजके स्वभाव और गुण अनुसारही फलादि उत्पन्न होते हैं । जिस शस्य वा औषधादिके बीज को रोपन किया जाता है, उसके बीजसे उसी जातिके शस्य वा औषधिके वृक्ष उत्पन्न होते और निज बीजके अनुरूपही फल प्रदान करते हैं ; उनसे अन्य बीज के अंकुर कदापि नहीं उत्पन्न हो सकते । तब जिस बीजको बोओगे, निश्चयही उससे उसीके अंकुर उत्पन्न होंगे ; यह स्थिर सिद्धान्त है । यथा समयमें कर्षण आदिसे दुरुस्त किये हुए भूमिमें जैसे बीजका पौधा रोपण किया जाता है, उस बीजके गुण अनुसारही उसके अंकुरसे फलादिकों की उत्पत्ति होती है । बीज और क्षेत्रके बीच बीज कीही प्रधानता देखी जाती है ; क्योंकि समस्त जीवधारी ही बीजके अनुरूप लक्षणोंसे युक्त होकर उसीके गुण स्वभाव अनुसार उत्पन्न हुआ करते हैं ।

विशिष्टं कुत्रचिद्बीजं क्वचित् योनि एवच ।

उभयन्तु समं यत्र सा प्रसूतिः प्रशस्यते ॥

मनु० अ० ८ श्लो० २८ ।

अर्थ—किसी स्थलमें बीजकी प्रधानता रहती है, और कहीं क्षेत्र की उत्तमता कही गई है । इसलिये जहां बीज और क्षेत्र दोनोंका सम-भाव रहता है, अर्थात् जैसे क्षेत्रमें जिस प्रकारके बीज भली भांति अंकुरित होके यथोचित फल पुष्प आदि प्रदान करते हैं ; उस ही के बमूजिव बीज वा पौधे रोपन करनेके लिये क्षेत्रको निश्चय करके उसीमें उक्त बीज वा पौधोंको रोपन करके फाइदा उठावे । क्योंकि जिस खेतमें जिस बीज वा वृक्षका बीना उचित है, उसके विपरीत अन्य बीजको उसमें बोनेसे उससे यथोचित फल प्राप्तिकी

आशा नहीं रहती। इसलिये यथा योग्य बीज बोनेके लिये यथा उचित खेत निर्वाचन करना चाहिये। यद्यपि बीजकी प्रधानता होनेसे उसके अंकुरादि बीजके अनुरूप ही होते हैं, तथापि अयोग्य भूमिमें बोने वा रोपनेके दोषसे न उनके पौधे अच्छी तरह बढ़ सकते और न फूल फल पत्ती ही यथोचित प्रदान कर सकते हैं। इस हेतु बुद्धिमान पुरुषको उचित है कि, अच्छी प्रकार संस्कारयुक्त खेतमें उत्पन्न होनेवाले उसके योग्य बीजको ही बोये वा रोपण करे। जहां पर बीज और खेत की समानता रहती है, उससे हुई उत्पत्तिकी को पण्डितोंने श्रेष्ठ कहके वर्णन किया है। पर केवल बीज और क्षेत्रका समभाव रहनाही बीजसे उत्पन्न फलादिकोंके पूर्व बीजके गुण और स्वभावकी स्थिति सम्बन्धमें कारण न जानना। क्योंकि परिचर्या, शास्त्रविहित संस्कार, योग्य सङ्गति और देश, काल, जल वायु प्रकाशादिकी यथोचित प्राप्ति न होनेसे बीजके गुण और स्वभावमें वैषम्य दीखता है। जैसे उत्तम सङ्गति से निकष्ट भी अच्छा होजाता है, उसी प्रकार नीच वा खराब सङ्गति से अच्छे भी बुरे होजाते हैं। शास्त्रविहित संस्कार न होनेसे जैसे उत्तम भी क्रमसे अधम होजाते हैं, वैसे ही निकष्ट भी अच्छे संस्कारों से युक्त होने पर क्रमसे उत्कृष्टताको प्राप्त हुआ करते हैं, इस लिये उत्तम बीजकी उत्तम सङ्गति, मध्यमकी मध्यमोंकी सङ्गति और निकष्ट बीज वा पौधोंकी निकष्ट सङ्गतिमें रखना चाहिये। क्योंकि रोगी वा निकष्ट बीज वा पौधा अच्छे बीज और उत्तम पौधोंको भी अपने संसर्गदोषसे विगाड़ सकता है। इसके सिवा उत्तम, मध्यम और निकष्ट भेदवाले एक जातीय बीजका एकत्र सहवास होनेसे उनके बीच सङ्कर जाति उत्पन्न होनेकी सम्भावना रहती है। क्योंकि जब पौधोंमें फूल लगते हैं, तब स्त्रीपुष्पकी रीणुमें पुंपुष्पकी रीणु द्वारा गर्भ सञ्चार होता है। ऐसी अवस्थामें उत्तम पुंपुष्पकी रीणु निकष्ट

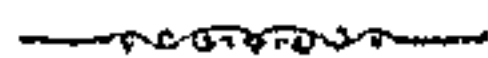
स्त्रीपुष्पकी रेणुमें पड़के मातृकुल और पितृकुलसे पृथक् विलक्षण गुण स्वभाव युक्त फल वा बीज उत्पन्न होता है,—ऐसे उत्पन्न हुए बीजको सङ्कर बीज कहते हैं, सङ्कर बीज पितृकुल और मातृकुलकी मध्यवर्ती अवस्थाको धारण करता है। इन दोनों कुलोंकी शक्तिमें न्यूनाधिक्यके अनुसार उस सङ्कर बीजके गुण स्वभावमें भी तारतम्य हुआ करता है। अर्थात् कहीं उसमें मातृकुल और कहीं पितृकुल का गुण अधिक रहता है। बढ़िया बीजके साथ घटिया जातिके बीजके संयोगसे इन दोनोंके मध्यवर्ती किसी नवीन जातिके बीज की उत्पत्ति होगी। इस लिये कहना होता है कि,—देश काल, जल, वायु, मिट्टी और प्रकाश आदिके यथार्थ उपयोग और यथा योग्य परिचर्या न होनेसे बीजके पौधोंके गुण स्वभावमें भी रदबदल होजाता है। उपरोक्त कारणों वा घटना क्रमसे बढ़िया बीजसे घटिया और घटिया बीजसे बढ़िया फसलोंके फल हो सकते हैं, इस लिये केवल बीजके पौधों परही निर्भर नहीं किया जा सकता।

यद्यपि क्षेत्र और बीजके योग्य संयोगसे जीवधारियोंकी श्रेष्ठ उत्पत्ति होती है। इसके सिवा देश, काल, जल, वायु, प्रकाशादि भी जीवधारियोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कारण मान जाते हैं। अर्थात् क्षेत्र और बीज उत्तम रहने पर भी देश, काल, जल प्रकाश आदिके तारतम्यसे भली भांति बीजसे अंकुरादि होकर न यथोचित बढ़ सकते हैं; और न उनसे भली भांति फलादि ही प्राप्त हो सकते हैं। इस बुद्धिमान पुरुष अच्छा खेत, देश, काल, जल, वायु, प्रकाश और प्रकृतिको विचार करके यथा उचित समयमें बीज वा पौधोंको बोने तथा रोपण करनेसे इच्छानुसार फल पाते हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

जैसे गौवींके बीच कई जातिकी गौवं होती हैं, घोड़ोंके बीच अनेक जातिके घोड़े होते हैं उसी प्रकार एक एक बीज जातिमें

भी पृथक् पृथक् दानेविशिष्ट उन बीजोंसे उत्पन्न पौधोंकी भिन्न भिन्न जाति हैं। जिन बीजोंके जैसे गुण, स्वभाव होते हैं, उन बीजोंसे उत्पन्न पौधोंके फलों वा दानेमें भी वैसेही गुण स्वभाव हुआ करते हैं। उन फलों (बीजों) से फिर वैसेही गुण स्वभाव वाले पौधे पैदा होते हैं। इसी प्रकार पौधोंसे बीज और बीजसे पौधोंकी उत्पत्ति होती हुई उनकी वंशरत्ना हुआ करती है।

कृषिदर्पणका दूसरा भाग सम्पूर्ण ।



कृषि-दर्पण ।

तृतीय भाग ।

देशीय फसलोंके बोनेकी रीति ।

ईख ।

कितनीही फसलें बीज बोनेसे उत्पन्न होती हैं, कितनीही शाखा रोपण करनेसे भी उत्पन्न होसकती हैं । हमारे भारत-वर्षमें ईखकी खेती प्रधान समझी जाती है, इसलिये सबसे पहिले ईख बोने तथा रोपनेकी रीति लिखते हैं ।

दुमट मिट्टी वा दुधिया एटेल मिट्टी ईख बोनेके लिये विशेष उप-युक्त समझी जाती है । जल सींचनेका सुविधा रहे अथवा सहजमें जल दिया जासके,—ईख रोपनेके लिये ऐसीही जमीन निरूपण करनी उचित है । नहीं तो यथा समयमें वृष्टि न होने तथा जल सींचनेका असुविधा रहनेसे सूरज की धूपसे ईखके अंकुर झुलस कर नष्ट होजाते हैं । जो जमीन वर्षाकालमें जलसे डूब जाती है अथवा जिसमें वर्षाका पानी नहीं लगता ऐसीही खेतमें ईखका रोपना अच्छा है ।

जिस जमीनमें ईख की खेती करनी हो, वह कुछ दिनकी पड़ती होनी चाहिये । पौष महीनेके शेष अथवा माघ महीनेके पहिले उस जमीन को फावड़ीसे खोदकर मिट्टी पोली कर देवे, जमीन वा खेतको समान करने के लिये बेर बेर हलसे जोतनेके अनन्तर वा प्रतिवेर जैसा उचित समझे उस खेतमें हेगा चलाकर

मिट्टीको समतल कर देवे । घेर घेर जोतने पर उसमें गोबरकी खाद डालनी होती है । प्रति बीघामें ७०।८० मन खाद डालनेसे जमीनकी उपजाऊशक्ति यथेष्टपरिमाणसे बढ़ती है । ईख बोने वा रोपनेके पहिले चैत वा वैशाख महीनेके पहिले भली भांति खेतको जोतवाकर दुरुस्त रखना चाहिये । ईख बोने वा रोपनेके समय जलकी वर्षा हो, तो अच्छा होता है, नहीं तो खेतको जलसे सींचकर ईख बोते हैं । किसी किसी स्थलमें पहिले सिँही जखिरामें ईखकी पौधों को तैयार रखते हैं उसेही चैत वा वैशाख महीने में ईखके खेतोंमें रोपण करते हैं ।

माघ महीनेके शेष वा फागुन महीनेके पहिले जो ईख काटी जाती हैं, उनके अग्रभागही पौधे उत्पन्न करनेके लिये अच्छे होते हैं । पौधोंके लिये प्रति ईखके अग्रभागको एक एक हाथ वा डेढ़ डेढ़ हाथ अनुमानसे काट रखते हैं । उनमेंसे मोटे मोटे ईखके अग्रभागको चुनकर छोटे छोटे बीजक बांध कर किसी वृक्षकी छाया अथवा ईखके अग्रभागके परिमाण अनुसार लम्बा चौड़ा एक हाथ गहरी गढ़ा खोद कर उसके भीतर रखते हैं । वृक्षकी छाया हो वा गढ़ाही होवे, ईखके अग्रभागोंको कुछ ऊँचा करके जरा हिल्लाकर रखना चाहिये । ईखके अग्रभागका काटा हुआ अंश मिट्टीमें संलग्न रखना उचित है । अनन्तर जखिरामें डालनेके समय इन सब ईखोंके अग्रभागोंको इस प्रकार टुकड़े टुकड़े करे, कि उनमें दो तीन आंख रहें, ऐसा करके जखिरामें डाल देवे, जिस जगह जखिरा बनाना हो, वहाँकी मिट्टीको आध हाथ गहरी खोदकर उसमेंकी मिट्टीको खूब मिहीन और पोली करनी चाहिये । उसके अनन्तर उस मिट्टीके ऊपर थोड़ासा जलका छोटा देकर किञ्चित् कीचड़ करना चाहिये । अनन्तर उस कीचड़के ऊपर अण्णिवज रूपसे दो दो अंगुलके फासिले

पर उन ईखके अग्रभाग के टुकड़ोंको आड़ी करके बिछा देवे। इस प्रकारसे बिछा देना चाहिये कि, उन टुकड़ोंकी आख अगल बगलमें रहें, ऊपर नीचे न होने पावें, ईखके आखको ऊपर नीचे कर देनेसे बहुधा अंकुर नहीं निकलते, बल्कि सड़ जाते हैं। ईखके अग्रभागके टुकड़ोंको जखिरामें सम्पूर्ण अंशको गाड़ना नहीं होता, आधा अंश मिट्टीके भीतर और आधा मिट्टीके ऊपर रखना होता है। जखिराके बीच ईखके टुकड़ोंको बैठा देने पर ऊपर पोवाल वा खुड़ प्रभृतिसे ढांक देना चाहिये। जखिराके ऊपर किसी वस्तुसे छाया कर देनेसे अच्छा होता है। ऐसा न करनेसे ईखके पौधोंके उत्पन्न होनेमें धूप लगनेसे व्याघात होता है। इसी भांति जखिराके बीच ईखके टुकड़ोंको बैठानेपर दो तीन दिनोंके अनन्तर प्रतिदिन सांभको उनके ऊपर थोड़ा थोड़ा जल देना चाहिये। चैत महीनेके प्रथम वा फागुन महीनेके शेषमें जखिराके बीच ईखके अग्रभागके टुकड़ोंको रोपण करना उचित है। जब पौधे ६।७ इंच बड़े हों, तो उनके ऊपरका आवरण अर्थात् पोवाल वा खुड़ प्रभृति अलग कर देना चाहिये, उसके अनन्तर मिट्टीका चूरा करके प्रति पौधों की जड़को ढांक देना होता है। पौधोंके एक हाथ परिमाण बड़े होने पर जखिरामें से उठाकर खेतमें रोपना होता है। जखिरा खेतके निकटमेंही बनाना चाहिये।

रोपण करनेकी रीति ।

ईखके पौधोंको रोपनेके लिये जो खेत तैयार हुआ हो, उसमें एक तरफसे शुरू करके सीधी रेखा क्रमसे डेढ़ हाथ लम्बी चौड़ी और किञ्चित् ऊंची करे, उसके मध्यमें प्रायः आध आध गहरी क्यारी छोड़कर उसीमें दो दो वा तीन तीन पौधों को रोपना होता

है । पौधोंको रोपनेके अनन्तर उनके जड़ (मूल) में मिट्टी भरकर ऊपरी मेंडोंसे कुछ भीचा रखना आवश्यक है । वृष्टिके समय अथवा वृष्टि होनेकी सम्भावना देखकर पौधोंको रोपण करना चाहिये । रोपनेके बाद वर्षा न हो, तो पौधोंको बचानेके लिये उनकी जड़ोंमें जल सींचनेकी जरूरत रहती है । इसलिये जलकी जरूरत हो तो पानासे खेतकी अच्छी तरह सींच देना उचित है । प्रतिदिन जल न देकर तीन चार रोजके बाद मिट्टीकी सूखती हुई देखकर जल सींचे । जल सींचनेके बाद जब पानी सूख जाय और मिट्टी कुछ नरम रहे, तब उसे निराकर तथा गोंडके पोली कर देवे । जब पौधे २०।२५ रोजके होजायं, तब अच्छी तरह गोंड निराकी खाली अंशको मिट्टी द्वारा भर देना चाहिये । जखिरा में पौधोंको न उत्पन्न करके और एक प्रकारसे पौधोंको अंकुरित किया जा सकता है, इसे आधा-रोपण कहते हैं । आधा-रोपण करने से जखिरा नहीं करना होता, बल्कि एकही बेर खेतसे ईख उत्पन्न कियी जा सकती है ।

जैसे जखिरामें डालनेके समय ईखके अग्रभागकी टुकड़े किये जाते हैं, उसी भांति ईखके अग्रभागको टुकड़े टुकड़े काटके उसमें जलमें घोले हुए गाढ़ा गोबरको लगाते हैं । अनन्तर ईखको टुकड़ोंके परिमाण अनुसार दो हाथ गहरा एक वा दो गढ़ा खोद कर उसीमें गोबर लगे हुए ईखके टुकड़ोंको यथेच्छ भावसे बिछा दे और उस पर जल डालकर ऊपरसे पोवालसे ढांक देते हैं । इसी प्रकार १०।१२ रोज रखनेसे उनकी प्रत्येक गांठमें पतली पतली सीर और आंखसे अंकुर निकलते हैं । अनन्तर उन ईखके टुकड़ोंको गढ़ेमें से निकाल कर जखिरामें से निकाले हुए पौधोंके रोपण करनेके नियम अनुसार खेतमें रोपना होता है । ऐसे पौधोंको रोपण करके उनके ऊपर तीन अंगुल परिमाणसे पोली मिट्टी न

मिट्टी भुरभुरा देवे, नहीं तो पौधोंके बाहिर होनेमें व्याघात होता है, जितने दिनतक पौधे मिट्टीको भेद कर ऊपर न उठें, उतने दिनतक उनके ऊपर नित्य वा एक दिनके बाद जलसे ऊपरकी मिट्टी भिंगा देने चाहिये, जखिराके पौधोंकी अपेक्षा आधारोपणके पौधे पहिलेसेही सतेज होजाते हैं । जखिराके पौधे पहिले पहिले कुछ निस्तेज होते हैं ।

चाहे कैसे ही ईखके पौधे क्यों न रोपण किये जायं, उनके एक हाथ वा सवा हाथ तक बढ़नेसे अच्छी तरह मिट्टीको गोंड़ निराकर गोबरकी खाद अथवा थोड़ासा खलीका चूरा पौधोंके मूल (जड़) में डाल देना उचित है । अनन्तर जब पौधे सतेज होकर ८।९ पत्तेवाले हों, तो सम्पूर्ण खेतकी मिट्टीको गोंड़ निराकर प्रत्येक पौधों के जड़ (मूल) में मिट्टी चढ़ा देवे, मिट्टी चढ़ानेके अनन्तर प्रत्येक पौधोंके जड़ मूलसे ८।१० पेड़ी निकाला करती हैं और उन्हींके बढ़ने से ईखका भाड़ (थान) बंधने लगता है । अनन्त ईख जिननी बढ़े उतनी ही उसे ऊपरी पत्तोंसे ५।६ ईखको एकत्र करके बांध देना होता है, इसके अनन्तर ईखके लिये और कुछ परिचर्या करनेकी आवश्यकता नहीं होती । तब ईखके खेतमें पानी लगकर पौधे नष्ट न हो जायं, इस लिये मेंड़के अगल बगलकी नालीको साफ रखे कि, वर्षाका जल खेतमें एकत्रित होनेसे उसके द्वारा बह कर बाहिर चला जावे । खेतमें ज्यादा घास वगैरः उत्पन्न हों, तो उन्हें खुरपी प्रभृतिसे निरा कर बाहिर कर देना चाहिये ।

हमारे देशमें बम्बई, सामसाड़ा वा समसेर, कजली, बली, कामरांगा और खागड़ी प्रभृति कई एक जातिकी ईख प्रसिद्ध दीखती हैं ; उनके बीच बम्बई, सामसाड़ा और कामरांगा जातीय ईखही सबसे बढ़ियां समझी जाती हैं । इन तीन जातिवाली ईखों की आवादीमें विघ्न भी बहुतसे होते हैं । नीचे एक एक करके प्रत्येक ईखके विवरण संक्षेपमें लिखते हैं ।

बम्बई ।

इस ईखका रस बहुत ज्यादा होता है, परन्तु कुछ पतला होता है, इसके एक सिर रससे आधपावसे ज्यादा गुड़ नहीं होता । फाल्गुन महीनेके पहिले पेरनेसे तीन छटाक तक होता है । इसके रससे गुड़ कुछ कम होने पर भी सब तरहके ईखोंकी अपेक्षा इसकी आवादीमें अधिक लाभ हुआ करता है । पर इसमें एक प्रधान दोष यह है कि, समय समयमें इसमें एक प्रकारका रोग लग जाता है, जिससे कि सम्पूर्ण खेतके पौधे नष्ट हो जाते हैं । आज तक इस रोगका कारण अच्छी तरह निर्णय नहीं हो सका । यदि इसमें रोग लगकर पौधे नष्ट न हो जायं, तो प्रति बीघामें ५०।६० मन पर्यन्त गुड़ हो सकता है । इसकी रोपण प्रणाली ऊपर कही रीति अनुसार है । तब इसे पत्तोंसे जकड़ कर बांधना नहीं होता । जितने पोर बन्धते हैं उतने ही इसके पत्ते सूखके खयं गिरते हैं वा गिरा देना होता है । इस ईखकी यत्न पूर्वक रक्षा करनी होती है, नहीं तो शियार प्रभृति चूस कर इसे नष्ट कर देते हैं । ईखको काट कर उसकी जड़ (मूल) को रख कर यथा नियम से जल प्रभृति द्वारा सींचने वा परिचर्या करनेसे दो बेर इससे ईख की फसल प्राप्त हो सकती है । पहिली बेरकी अपेक्षा दूसरी बेर ज्यादा फसल मिल सकती है । इसके रसका गुड़ खूब साफ होता है ।

सामसाड़ा ।

इसका विवरण ज्योंका त्यों बम्बई ईखकी भांति है । पर बम्बई ईखकी तरह इसमें ज्यादा गुड़ नहीं होता और इसके पौधे भी नष्ट नहीं होते । यह ईख अच्छी तरह उत्पन्न होनेसे प्रति बीघेमें २५।२६ मन गुड़ हो सकता है ।

काजली ।

इस जातिकी ईखसे ज्यादा रस नहीं मिलता, अच्छी तरह उत्पन्न होनेसे प्रति बीघामें २० मनसे ज्यादा गुड़ नहीं होता ; इसके पत्तोंको लपेट कर बांधनेकी विशेष आवश्यकता भी नहीं रहती । इसका रस गाढ़ा होता है, इस लिये गुड़ ज्यादा होता है । काजली ईखके रसका गुड़ कुछ सालीपन लिये होता है । इस काजली ईखमें एक प्रधान दोष यह है कि, इसकी ईख सूरजकी धूप लगनेसे प्रायः फट जाती है ; जिससे रस घट जाता है । रोपण करनेकी रीति पूर्ववत् जानो । दो वर्षतक इसकी जड़की पेड़ी रखो जा सकती है । पहिले वर्षको अपेक्षा दूसरे वर्षमें ईखकी पेड़ोकी फसल अच्छी होती है ।

कामरांगा ।

इसके पत्तोंको लपेट कर बांधना नहीं होता बल्कि तोड़ देना होता है । इसके खेतकी सावधानीसे रक्षा करनी होती है । यह ईख ऊपर कड़ी होती पर भीतर खूब नरम होती है । ज्यादा दिन की पड़ती जमीनमें यह अच्छी तरह उत्पन्न होती है । भली भांति उत्पन्न होनेसे प्रति बीघामें २५।२६ मन गुड़ हो सकता है । एक बेर रोपण करनेसे दो बेर फसल मिलती है । पहिली बेरकी अपेक्षा दूसरी बेरकी पेड़ीसे अधिक पौधे उत्पन्न हुआ करते हैं । इसका गुड़ खूब साफ नहीं होता बल्कि कुछ साल हुआ करता है ।

खागड़ी ।

इसे जङ्गली वा नटा तथा केवाही ईख कहते हैं, यह बहुत कड़ी होती है, इस लिये पश्यादि इसका ज्यादा नुकसान नहीं कर सकते इसका रस खूब गाढ़ा होता है, फाल्गुन महीनेके पहिले पेरनेसे चार सेर रससे एक सेर गुड़ हो सकता है । इसका गुड़ भीठा

होता है, इस लिये ज्यादा नहीं खाया जाता । यह एक बेर रोपण करनेसे ३।४ वर्ष तक रह सकती है । ज्यादा यत्न और परिश्रम न करनेसे भी इसका कुछ नुकसान नहीं हो सकता । इस ईखके खेतमें मेंड़ बांधने वा नालो, क्यारी, कुत्ता प्रभृति तैयार करनेकी विशेष जरूरत नहीं होती ; पत्ते तोड़ने वा बांधनेकी भी आवश्यकता नहीं रहती । इस ईखको काट कर इसकी जड़को फूस पत्ती प्रभृतिसे जलाकर एक दो बेर खेतकी मिट्टीको फावड़ीसे खोद कर उलट पलट देनेसेही खेत फिर अन्यान्य फसलोंके बीने योग्य होजाता है ।

ईखके खेतकी मिट्टीको फावड़ीसे न खोदकर हलसे जोतनेसे भी दुरुस्त हो सकती है । पर फावड़ीसे खोद कर मिट्टीको उलट देनेसे अच्छा होता है । हलसे जोत कर भी पूर्वोक्त प्रकारसे ईखके पौधे रोपण कर सकते हैं । ईखके खेतकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी होती है । जिससे पशु प्रभृति ईखके पौधोंको न खा डाले, उसके लिये खेतकी चारों ओरसे किसी वस्तुसे घेर देते अथवा खूब रखवाली करते हैं । ईखके पौधे जिस प्रकार खड़े रहें, सदा वैसीही चेष्टा करनी उचित है, ईख गिर जाने पर उसका रस पतला होनेसे गुड़ कम होता है ।

ईखको काट लेने पर उसकी जड़को काट देनेसे उसके द्वारा जो पौधे उत्पन्न होके ईख रूपमें परिणत होते हैं, उसे "पेड़ी ईख" कहते हैं । यदि पेड़ीईख उत्पन्न करना हो, तो ईखको काट लेने के अनन्तर उनकी जड़ोंको भली भांति साफ करके अच्छी तरह कुदालसे गोंड़कर उक्त ईखकी जड़ों पर मिट्टी चढ़ा दें । आवश्यकता होनेसे ईखकी जड़ोंमें गोबरका खाद भी डाल सकते हैं । वर्षके बीच पेड़ीईखके खेतमें दो तीन अथवा चार बेर कुदालसे गोंड़ निराकर मिट्टी उलटा देना होता है ; जरूरतके मुताबिक जलसे सींचने की भी आवश्यकता रहती है ।

बम्बई, सामसाड़ा और कामराड़ा, इन तीनों की "पेड़ी रूख" एक वर्ष तक अच्छी होती हैं। काजली रूख की पेड़ी को दो बेर तक अर्थात् दो वर्ष तक रख सकते हैं। पर खागड़ी रूख की पेड़ी को ४।५ वर्ष तक रखनेसे भी वह नष्ट नहीं होती।

—०—

अरहड़ ।

अरहड़ की खेती भारतवर्षमें प्रचुर परिमाणसे होती है, अरहड़ की दाल अच्छी हुआ करती है। इसके पुष्प देखनेमें लाल पीले होते हैं, इसके फल सीमजातीय है। इसके पेड़ पांच छः हाथ ऊंचे हुआ करते हैं। इसकी एक एक छींसीमें पांच सात दाने होते हैं। अरहड़ अनेक रङ्ग अनुसार दो श्रेणीमें विभक्त है ; एक सफेद, दूसरी काली। ये दोनों श्रेणीकी अरहड़ एक खेत वा एकही मिट्टीमें उत्पन्न होती हैं। विलान और कूड़ी खेतके सिवाय समतल वा कमनिम्न प्रभृति खेतोंकी नोना मिट्टीके अतिरिक्त सब तरहको भूमितिकामें ही अरहड़के वृक्ष उत्पन्न हुआ करते हैं। जिन खेतोंमें बरसातका पानी लगता हो, उनमें अरहड़की खेती करनी उचित नहीं है।

जिठ महीनेके शेष तथा आषाढ़ महीनेके प्रथम पक्षमें ही अरहड़ बोई जाती है। बहुतेरे स्थानमें उड़द और ज्वारके साथ ही अरहड़की बो देते हैं। उड़द और ज्वार काटिकके शेषमें पकने पर खेतमें से निकालते हैं और अरहड़ फागुन चैत महीने में पकने पर खेतसे काट कर निकाली जाती है। प्रति बीघामें दो सेरके हिसाब से अरहड़ बोना चाहिये।

अरहड़के पेड़ोंको काटकर वोभा बांधकर खलिहानमें रख देते हैं और धूपसे सूख जाने पर पीट कर उसके दाने निकाल लेते हैं ।

और एक तरहकी अरहड़ होती है, उसे “टूमुर” कहते हैं । टूमुर देखनेमें पूर्वोक्त श्वेतवर्ण अरहड़की भांति होती है । टूमुरके वृक्ष एकबेर उत्पन्न होनेसे कई वर्षतक जीवित रहते हैं और उनमें प्रतिवर्ष छीमी वा फलियां लगा करतो हैं । इस टूमुरकी फलियों की सेंमकी भांति तरकारी भी हुआ करती है ।

और एक लताजातीय अरहड़ देखी जाती है । यह अरहड़ प्रायः बगीचोंमें ही लगाई जाती है, इस लताजातीय अरहड़को मचान वा टट्टरी पर चढ़ा देते हैं ।

—o—

उड़द ।

—o—

उड़दके वृक्ष एक प्रकारकी चुद्र लताविशेष है, इसके पत्ते चौड़े और फूल पीले रङ्गके होते हैं । इसकी छीमी (फलियां) सीमसे बहुत कुछ मिलती हैं । अवान्तर भेदसे उड़द कई जातिमें विभक्त है । जैसे बड़ा उड़द, मांष उड़द, काली उड़दौ इत्यादि ।

जिस खेतमें उड़द बोना हो, उसे ज्यादा जोतने की जरूरत नहीं रहती, पड़ती जमीनको जेठ वा आषाढ़ महीनेमें जलकी वर्षा होनेपर एक दो बर जोतकर उड़द बो देना होता है, वरसातके दिनोंमें इसके खेतमें घास प्रभृति ज्यादा होजाय, तो उसे निराकर निकाल देना होता है, भादों, आश्विन महीनेमें उड़दमें फूल लग कर फलियां बाहिर होती हैं और कातिक महीनेके शेष पक्षमें उड़द की छीमी पक जाती है, तब उन्हें खेतमें से निकाल कर

खलिहानमें रख कर सूरज की धूपमें सुखाके बैलीसे रौंदवाकर उड़दके दानोंको वायुमें फटकार कर पृथक् कर लेते हैं ; इसका भूसा पखादिकोंके खानेमें आता है और डंटा प्रभृति जलानेके काम आते हैं ।

—o—

उतैला उड़द ।

—o—

उतैला वा भदैला नाम उड़दको आषाढ महीनेमें उपरोक्त रीतिसे बोते हैं ; यह उड़द भादों महीनेमेंही पक जाता है, जल्दी पककर तैयार होनेसे इसे उतैला कहते हैं और भादों महीनेमें होता है, इसलिये इसका नाम भदैला भी रक्खा गया है ।

—o—

मूंग ।

—o—

मूंगके वृक्ष, पत्ते, फूल और फलियां प्रायः उड़दकेही समान होती हैं, किन्तु उड़द की अपेक्षा इसके दाने छोटे हुआ करते हैं । पर उड़दसे इसके आस्वादन और गुणमें बहुत कुछ विभिन्नता है । जिस खेतकी मिट्टीमें उड़द उत्पन्न होता है, वैसेही खेत और मिट्टीमें मूंग भी हुआ करती है । मूंगके बीज सांवले महीनेके शेषपक्षमें बोये जाते हैं, प्रति बोधामें अठारह सेर मूंगके बीज बोनेसेही यथेष्ट होता है । उड़दकी भांति यह भी कातिकके शेष तथा अगहन महीनेके प्रथम पक्षतक पक जाती है और उड़द की भांति इसे भी धूपमें सुखाकर पीटकर दानों को पृथक् कर लेते हैं ।

चना वा वूट ।

सफेद और लालवर्ण भेदसे चना दो प्रकार का होता है । इन दोनों भांतिके चनाके बीच वर्णभेदके सिवाय आवाद प्रभृतिमें अन्य कुछ भी इतर विशेष नहीं है ।

चनाके पेड़ कम ज्यादा एक एक फिटतक ऊंचे होते हैं । आश्विन महीनेसे लगाय कातिक महीनेके प्रथम पक्षतक चनाके बीज खेतोंमें बोये जाते हैं, चनाके बीज प्रति बीघेमें प्रायः दस सैर परिमाणसे बोये जाते हैं, फागुन महीनेके शेष और चैत महीनेके प्रथम पक्षतक चना पका जाता है । चनाके खेतमें जल सींचनेकी विशेष आवश्यकता नहीं रहती ।

चनाकी खेती नदियोंके तटमें अधिक परिमाणसे हुआ करती है ; वालू और एटेल मिली हुई मिट्टी इसके लिये अच्छी समझी जाती है । इसके सिवाय हर एक प्रकारके खेतोंमें यह उत्पन्न हो सकता है ।

जब चनाके पौधे पांच छः अंगुल ऊंचे होते हैं, तब इस देशके लोग शाक खानेकी इच्छासे उनके अग्रभाग को काट लेते हैं, अग्रभागको काट लेनेसे चनाके पेड़से बहुतसी शाखा प्रशाखा निकलती हैं, अगहन महीनेके शेष में जब चनाके पेड़ोंमें फूल लगनेका समय होता है, तब शाकके लिये उसके अग्रभाग वा शाखाओंको नहीं काटते ।

पश्चिमकी हवा चना वृक्षके लिये अधिक फाइदेमन्द समझी जाती है, पश्चिमा हवामें इसके वृक्ष भली भांति फूल फलीसे युक्त होते हैं और दक्षिणी हवा इसके लिये हानिकारक समझी जाती

है, क्योंकि दक्षिणी हवा लगनेसे इसके पेड़में छोटे छोटे लम्बी आकृतिवाले एक तरहके कीट लग जाते हैं; इससे चनाकी फसलकी बहुत ही नुकसानी हुआ करती है।

जब इसके वृक्षके फल पक जाते हैं, तब उन्हें काट कर खलिहानमें रखके सूरजकी धूपमें सुखा कर बैलोंसे रौंदवाकर तथा पीट कर चनाकी भूसेसे अलग कर लेते हैं।

—o—

मटर ।

—o—

सफेद और हरे रङ्ग भेद से दो जातिकी मटर होती हैं। सफेद मटर देखनेमें बहुत सुन्दर होती है। हरी मटरमें काले रङ्गके कलङ्क दीखते हैं, इसी लिये उसे कालीमटर भी कहते हैं। दोनों जातिकी मटरही गोलाकार और चिकनी होती हैं। मटरकी कच्ची क्रीमीके दाने भून कर तथा तरकारी प्रभृतिके साथ पकाके खानेमें खादिष्ट मालूम होते हैं।

आश्विन महीनेसे लगाय कातिक महीनेतक मटरकी क्रीमीके बीज बोये जाते हैं। अमेरिकन मटरके बीज छोटे बड़े परिमाण अनुसार प्रति बीघेमें दश सेरसे लगाय सोलह सेर पर्यन्त बोये जाते हैं। देशी मटरके बीज प्रत्येक बीघामें प्रायः १ एक मनके परिमाणसे बोये जाते हैं। लोना मिट्टीके सिवाय अन्य सब प्रकारकी मिट्टीवाले खेतोंमें बोनेसे इसकी यथोचित उत्पत्ति हो सकती है। समय अनुसार इसकी खेतमें जल सींचनेकी भी आवश्यकता रहती है।

मटर फागुन महीनेमें पक जाती है। मटरकी छाथसे भी

उखाड़ ले सकते हैं ; अनन्तर उसे खलिहानमें रख कर सूर्यकी धूपमें सुखानेके बाद बैलीसे रौंदवाकर हवामें उड़ाके मटर और भूसाको पृथक् कर लेते हैं । फिर मटर खातोंमें भर देते हैं, और उसका भूसा पश्वादिकोंके खानेमें आता है ।

मसुरी ।

मसुरी प्रायः सब ठौरही एकजातीय देखी जाती है । मसुरीके पेड़ प्रायः चनाके पेड़ सदृश हुआ करते हैं । इसके बीज चिपटे तथा गोलाकार होते हैं ।

कातिक महीनेमें मसुरी बोई जाती और फागुन महीनेतक पक जाती है । मसुरीके बीज प्रति बीघामें प्रायः बीस बाइस सेर के हिसाबसे बोये जाते हैं । मसुरीके खेतको ज्यादा जोतनेकी आवश्यकता नहीं रहती । बीज बोनेके समय एक वा दो बर खेतको जोतके बीज छीट कर हेंगा चलाके खेतकी मिट्टीको सम-तल कर देते हैं । लोना मिट्टीके सिवाय मसुरी हर एक प्रकार की मिट्टीमें हो सकती है, तब बिलानक्षेत्रमें इसकी अच्छी पैदावार होती है । ऊँचे खेतोंमें भी मसुरी बोई जाती है, पर ऊँचे खेतोंमें रसपली मिट्टीके सिवाय अन्यान्य मिट्टियोंमें इसकी पैदावार अच्छी नहीं होती । लेकिन जल सींचनेसे सब प्रकारकी मिट्टीवाले ऊँचे खेतोंमें भी यह अच्छी तरह उत्पन्न हो सकती है । कुहासाके जलसे मसुरीके पौधे खूब तेजस्वी हो जाते हैं । किम्बदन्ति प्रसिद्ध है कि, “जिस वर्ष कुहासा अच्छी तरह नहीं होता, उस वर्ष मसुरीकी फसल अच्छी नहीं होती ।” फागुन महीनेमें मसुरी पक जाती है ।

अनन्तर इसे भी खेतमेंसे काटकर खलिहानमें सुखाकर बैलोंसे रौंदवाकर चनाकी भांति हवामें उड़ाकर मसुरी और भूसेको अलग कर लेते हैं। मसुरीकी दाल खाई जाती है। इसका भूसा पशुआदिकोंके खानेमें आता है।

—o—

केसारी ।

—o—

केसारीके पेड़ प्रायः एक हाथसे डेढ़ हाथ पर्यन्त ऊँचे होते हैं। काली मटरके साथ इसके फूलोंका बहुत कुछ सादृश्य है। कुआरके शेष पक्षसे सम्पूर्ण कातिक तथा अगहन महीनेके प्रथम पक्षतक यह बोई जाती है, और फागुन महीनेके शेष पक्ष तथा चैत महीनेके प्रथम पक्षतक पक जाती है। केसारीका बीज प्रति बीघामें १८ वा २० सेरके हिसाबसे लगता है, केसारीके बीज प्रायः हैमन्तिक धानके खेतोंमें जब धानका पकना आरम्भ होता है, वैसी हालतमें जमीनके तर रहने पर उसमें छीट दिये जाते हैं। और पड़ती जमीनमें भी कभी कभी हलसे जोत कर इसे बोते हैं। धानके खेतोंमें जल सूखने पर ऐसी हालतमें केसारी छीटना होता है कि, केसारीके बीज छोटतेही कीचड़में डूब जावें। रसपत्ती मिट्टी होनेसे केसारीके बीज ऊँची जमीनवाले खेतोंमें भी बो सकते हैं, किन्तु सूखी मिट्टीयुक्त ऊँचे खेतोंमें बीनेसे जल सींचने की आवश्यकता रहती है। पक जाने पर इसे भी खलिहानमें लाकर धूपमें सुखाकर केसारीके बीज और भूसाको पृथक् कर लेते हैं।

—o—

गेहूं ।

गेहूं की खेती भारतवर्षमें प्रचुर परिमाणसे होती है, पृथिवीपर ऐसे बहुत कम विज्ञ मनुष्य निकलेंगे, जो कि गेहूं की न जानते होंगे । गेहूं सम्पूर्ण भारतवर्ष तथा अन्यान्य देशोंमें भी प्रधान अन्नके बीच परिगणित है, गेहूं के आटे और मैदे प्रभृतिके द्वारा विविध प्रकारके पकान्न तथा घृत चीनीके मेलसे अनेक प्रकार की मिठाइयां बनकर मनुष्योंके खानेमें आती हैं ।

कोई कोई कहते हैं कि, आश्विन महीनेमें बीनेसे गेहूं अच्छा नहीं होता, इसलिये कातिक मासमें गेहूं बोये, पर यह बात सर्वथा ठीक नहीं है ; क्योंकि ज्योतिषके मत अनुसार अनेक स्थलमें कन्याकी संक्रान्ति होने पर चित्रा नक्षत्रमें बीनेसे गेहूं की फसल अच्छी होती है । साधारण रीतिसे कुआर महीनेके शेष और कातिक महीनेके प्रथम पक्षतक ऊंची जमीनके खेतोंमें गेहूं बोना चाहिये । किन्तु विलान क्षेत्र अर्थात् नीची जमीनके खेतोंमें कातिक महीनेके शेष पक्षसे लगाय अगहन महीनेके प्रथम पक्ष तक बीनेसे भी विशेष नुकसानी नहीं होती ।

जिस जमीनमें गेहूं की खेती करनी हो, उसे हलके जरिये खूब अच्छी तरहसे जोतना उचित है, क्योंकि कम जोते हुए खेतोंमें गेहूं अच्छा नहीं होता ।

गेहूं के पेड़ोंमें बहुत थोड़ी सोरें (जड़ें) हुआ करती हैं, गेहूं की सोरोंको गेहूं की जड़ न कहके गेहूं की गुच्छमूल कहना अच्छा है, क्योंकि गेहूं की सोरें (जड़ें) गुच्छाकार जमीनमें बहुत ही कम नीचेतक प्रवेश करती हैं । इसी लिये गेहूं के पेड़ताप्र

बड़े होनेपर वायुके प्रचण्ड झकोरेसे उखड़ जाते हैं। जो हो, गेहूँके बीजको दो तीन अंगुल मिट्टीके नीचेतक बोनेसेही अच्छा होता है।

लोना मिट्टीके सिवाय अन्यान्य सब प्रकारकी मिट्टीवाले प्रायः सब प्रकारके खेतोंमें गेहूँको बोकर उसके द्वारा फसल उत्पन्न कर सकते हैं। किन्तु ऊँची जमीनवाले खेतोंमें गेहूँ बोना हो, तो उसे दो बेर जलसे सींचनेकी बहुतही जरूरत रहती है। बिना जल सींचे प्रायः ऊँची जमीनवाले खेतोंमें गेहूँकी फसल उत्पन्न नहीं हो सकती। बिलानखेतमें भी जरूरके मुताबिक गेहूँकी फसलकी सींचना चाहिये; पर बिना जलसे सींचे भी ऐसे खेतोंमें गेहूँकी थोड़ी बहुत फसल मिल सकती है। कहते हैं, कि, नीची जमीनवाले खेतोंमें जब गेहूँके पौधे प्रायः एक हाथ परिमाणसे बढ़ जायं; तब उन्हें एक बेर जलसे सींचनेकी आवश्यकता रहती है।

गेहूँके पौधोंकी ज्यादा से ज्यादा दो बेरके सिवाय बेर बेर जल सींचनेसे उलटी हानि होनेके अतिरिक्त लाभ को सम्भावना नहीं रहती। क्योंकि गेहूँके खेतोंकी मिट्टी सर्वदा जलसे भीगी रहनेसे उसमें प्रायः गेरुई रोग लग जाता है, जिससे कि गेहूँके पौधे पीले रङ्गके होजाते हैं। अनावृष्टिसे भी गेहूँके खेतोंमें प्रायः गेरुई रोग लगता है।

गेहूँके पक्षमें गेरुई बहुतही भयङ्कर रोग है, यह एक प्रकार का कौट विशेष रोग है। यह कौट गेहूँके पेड़ोंका सब रस चूसके खा जाता है, इसी लिये गेहूँके पौधे निस्तेज हो जाते हैं। गेरुई लगे हुए गेहूँके पेड़ोंसे अच्छे गेहूँ नहीं हो सकते। गेहूँके पौधोंमें और भी एक प्रकारका रोग उत्पन्न होता है, जिससे गेहूँकी बालियां भ्रामर हो जाती हैं। यह रोग गेरुईसे भी ज्यादा

अनिष्टकारक है ; इस रोगसे गेहूँ के शीष निकलनेके समय भांभर होजाते हैं ; इस प्रकारके भांभर हुए गेहूँके शीषोंमें उनकी दानोंके चिन्ह मात्र भी नहीं रहते ; किन्तु यह रोग कम होता है ।

वर्णभेदसे गेहूँ कई एक जातियोंमें विभक्त है, जैसे दूधिया, लालिया गङ्गाजली, जमाली प्रभृति । दूधिया गेहूँ सफेद दूधकी तरह होता है, इसके दाने खूब रिष्ट पुष्ट हुआ करते हैं ऊपर कहे हुए चार जातिवाले गेहूँके बीच इसे लोग सबसे बढ़ियाँ समझते हैं, क्योंकि इसका भेदा खूब सफेद और सुकोमल होता है, जैसे इस दूधिया गेहूँका भेदा सुन्दर होता है, वैसेही यह खानेमें भी सुखाद्य तथा स्वादिष्ट होता है । इसके आटेको रोटी बहुतही साफ और कोमल हुआ करती है । दोषके बीच इसमें इतनाही दोष दीखता है, कि लालिया गेहूँकी अपेक्षा इसके बीजके ऊपरके छिलके अर्थात् भूसी मोटी हुआ करती है, इसी लिये इसमें चोकर ज्यादा होता है, जिससे कि भेदा वा आटा कम हुआ करता है । इसलिये गरीब किसानोंको इस गेहूँको घरमें खानेसे यथेष्ट क्षति होती है, किन्तु इसे बेचनेमें खूब सुविधा दिखाई देता है । क्योंकि गङ्गाजली जमाली गेहूँ-ओंसे यह ज्यादा कीमत पर बिका करता है, कभी कभी लालिया गेहूँसे भी यह अधिक मूल्यमें विक्रय होता है, किन्तु दूधिया गेहूँके पीधे बिना जल सोचे सब तरहके खेत वा प्रत्येक प्रकारकी मिट्टीमें नहीं उत्पन्न हो सकते । विलानक्षेत्र तथा ऊँची जमीनके दुमट प्रभृति मिट्टीवाले खेतोंमें यह अच्छा होता है, इसके शीष को बालियाँ अन्यान्य गेहूँओंको अपेक्षा कुछ मोटी होती हैं ।

लालिया गेहूँ भी प्रायः दूधिया गेहूँकी भांतिही होता है, पर यह सफेद न होकर कुछ लाल रङ्गयुक्त होता है, इसके आटेकी रोटी बहुतही मीठी और कुछ लाल-आभायुक्त होती है । इसके

बीजके छिलके बहुतही पतले होते हैं, इसीसे पीसने पर इसके आटे वा मैदेमें से चोकर बहुतही कम निकला करता है । इस गेहूँकी विक्री भी अन्यान्य 'गेहूँ'ओंकी अपेक्षा ज्यादाही कीमतमें हुआ करती है, क्योंकि इसमें चोकर कम निकलता है, जिन खेतों वा जिन मिट्टीवालों जमीनमें दूधिया गेहूँ उत्पन्न हो सकता है, लालिया गेहूँ भी प्रायः वैसीही जमीनमें हुआ करता है, किन्तु दूधिया गेहूँ, जितना सुकोमल होता है, उतना यह नहीं होता ।

गङ्गाजली गेहूँ प्रायः दूधिया और लालिया गेहूँकेही तुल्य होता है, किन्तु इसमें रङ्गकी विशेषता इतनीही है कि, दूधिया गेहूँ बहुत सफेद होता है और यह सफेद-लालरङ्ग मिश्रित होता है । रङ्गकी विभिन्नताके अतिरिक्त अन्यान्य जातिवाले गेहूँओंके साथ इसमें इतरविशेष नहीं है । गङ्गाजली गेहूँ, दूधिया और लालिया गेहूँसे कुछ कड़ा होता है और मूल्यमें भी यह उनकी अपेक्षा कुछ कम कीमत में विक्रय हुआ करता है । इसकी बपन-प्रणाली दूधिया और लालिया गेहूँके समानही है ।

जमाली गेहूँके दाने दूधिया, लालिया, गङ्गाजली प्रभृति गेहूँके दानोंसे छोटे और कड़े हुआ करते हैं । इसके रङ्ग कुछ भलिन होते हैं । इसके पीधे अन्यान्य गेहूँओंके पीधोंकी अपेक्षा कुछ ज्यादा कष्टसहिष्णु होते हैं । जमाली गेहूँके बीजके छिलके भी लालिया गेहूँकी तरह पतले होते हैं ; इसलिये इसमें चोकर कम और मैदा ज्यादा हुआ करता है । इसके मैदाका रङ्ग कुछ सफेदी लिये होता है, किन्तु इसको रोटी कुछ कालेरङ्गयुक्त देखी जाती है, खानेमें कुछ कड़ी मालूम होती है, किन्तु विश्वास नहीं होती । यह प्रायः सब तरहकी मिट्टीमें उत्पन्न हो सकता है । इसमें मैदा भी ज्यादा होता है और अन्यान्य गेहूँओंकी अपेक्षा इसके पीधे अधिक कष्टसहिष्णु होते हैं, इसीलिये किसान लोग

प्रायः इस गेहूं को अधिक परिमाणसे बोया करते हैं । किन्तु देखनेमें इसकी कीमत अन्यान्य गेहूंओंको अपेक्षा कुछ कम हुआ करती है ।

गेहूं चैत महीनेमें पक जाते हैं, फागुन महीनेमें शिलावृष्टि होनेसे गेहूं नष्ट होजाते हैं । गेहूंके बीज प्रति बीघामें प्रायः ३० वा ३२ सार परिमाणसे बोये जाते हैं, । जब गेहूंके दाने खूब पक जाते हैं, तब खेतमें से गेहूंके पेड़ोंको काट कर खलिहानमें रख कर सुखाते हैं ; जब सूरजकी धूपसे कटे हुए गेहूंके दाने खूब सूख जाते हैं, तब उन्हें बैलोंसे रौंदवाकर हवामें उड़ाके गेहूंके बीज तथा भूसीको अलग कर लेते हैं ।

—०—

यव ।

—०—

यवके पेड़ोंकी आकृति प्रकृति और उत्पत्ति सम्बन्धमें गेहूंके साथ ज्यादा इतरविशेष नहीं है, केवल इतनाही फर्क है कि, गेहूंके दाने बालियोंके भोतरसे भूसीरहित होकर निकल आते हैं ; और यवकी बालियोंमें जिस प्रकार यवके दाने रहते हैं, बैलोंसे रौंदवाने पर भी वे ज्योंके त्योंही बर्न रहते हैं ; क्योंकि यवके बीजको भूसी सहजमें नहीं छूटती ।

कातिक महीनेमें यव बोया जाता है और बोनेके अनन्तर मिट्टीको सूखती हुई देखकर एक वा दो बेर जलसे सींचने की आवश्यकता रहती है । यवके बीज प्रति बीघामें प्रायः एक मन परिमाणसे बोये जाते हैं । जिस जमीन वा जिस खेतमें यव बोना हो, उसे पहिलेसेही भली भांति जोतकर ठीक कर रखना होता है, कातिक महीनेमें फिर हल चलाके यव बो देते हैं, बहुतेरे

लोग हाथसेहो बोते हैं, बहुतेरे लोग हलमें लगी हुए नल-मेंहो वोज छोड़ देते हैं, उससे ज्यों ज्यों हल चला करता है, त्यों त्यों बीज सम्पूर्ण खेतमें बोया जाता है, गेहूं और यव तथा यव और मटर किन्ना यव, मटर, सरसो, कुसुम प्रभृतिको अनेक स्थलोंमें एक साथही मिलाकर बो देते हैं, ऐसा करनेसे उस एकही खेतमें से ये कई प्रकारकी फसलें प्राप्त हो सकती हैं । यवका सम्पूर्ण भारतवर्षमें खूब आदर है, इसीसे कृषक लोग इसकी खेती भी प्रचुर परिमाणसे किया करते हैं ।

—०—

तिल ।

—०—

जिनके बीजोंसे तेल तैयार हुआ करते हैं, उन्हें तैलखन्द कहा जा सकता है, ऐसी फसलोंके बीच तिल, तीसी सरसों और राईही प्रधान हैं । उनके बीच तिल सर्वश्रेष्ठ है, इस लिये पहिले तिलके बोनिका विवरण लिखते हैं ।

प्रकृति और वर्णभेदसे तिल चार अणियोंमें विभक्त है । जैसे कालातिल, साहेबतिल, कातिकी तिल, और काट-तिल ।

काला तिल ।

खूब काले रङ्गवाले तिलका नाम कालातिल है । आषाढ़के शेष पक्षसे लगाय सम्पूर्ण सावन तक यह तिल बोया जाता है । तिल बोनिके यथार्थ समयमें जिन खेतोंमें धान बोये रहते हैं, उनमें तिल बोनिका सुविधा नहीं रहता ; इसलिये पड़तो खेतोंको खूब अच्छी तरह जोत कर उसमें तिल बोते हैं, स्वाभाविक नियम अनुसार ऐसे खेतोंमें बोये हुए तिल खूब उत्तम होते हैं ; यह तिल अगहन वा पौष महीनेमें पक जाता है ।

जिन खेतोंमें आषाढ़के महीनेमें साठी प्रभृति धान बोये जाते और सावनके शेष वा भादोंके प्रथम पक्षमें पकके काटते हैं; उन खेतोंको जोतकर कालातिल बोया जा सकता है। किन्तु वैसे खेतोंमें बोये हुए तिलोंसे बहुधा अच्छी फसल प्राप्त होनेकी सम्भावना नहीं रहती।

तिलकी और एक आश्चर्य-प्रकृति यह है कि; तिलके खेतमें अल्पपरिमाण जल बड़ा हो, तो उसमें उत्पन्न हुए तिलके सम्पूर्ण पौधे नष्ट होजाते हैं। विशेष करके तिलके वृक्ष बूड़ा (वन्धा) के जलकी गन्ध नहीं सह सकते। ऊँची जमीनवाले खेतोंके सिवाय नीची जमीनके खेतोंमें तिल पैदा नहीं होता। नीना मिट्टी और चूनाएटेल मिट्टीके अतिरिक्त अन्यान्य सब तरहकी मिट्टीवाले खेतोंमें कालातिल उत्पन्न हुआ करता है।

तिलकी जमीनमें ज्यादा खाद डालनेकी आवश्यकता नहीं रहती; बल्कि ज्यादा जोरदार मिट्टीमें तिलके पौधे अधिक बढ़ जाते हैं, ऐसे पौधोंमें प्राय बहुत कम फल लगते हैं। तिलके बीज एक बीधामें प्राय डेढ़ वा दो सेर परिमाणसे बोये जाते हैं। खेत जोतनेपर बीजको सम्पूर्ण खेतमें छीटकर हेंगा चलाकर मिट्टीको समतल कर देते हैं। तिल छीटनेके अनन्तर फिर खेतको जोतनेकी आवश्यकता नहीं रहती। तिलके खेतोंमें यदि घास प्रभृति उत्पन्न हों, तो उन्हें निराकर खेतोंमें से निकाल देना उचित है। हमारे देशमें बहुधा तिलके खेतोंको नहीं निराते, किसी प्रकारकी घास वगैर; यदि तिलके खेतोंमें उत्पन्न होती है तो उन्हें काट लेते हैं।

जब वायु किञ्चित् बेगसे बहता हो, तब खेतमें तिलके बीज को छीटना उचित नहीं है, क्योंकि तिलके बीज सिमिटके बहुधा एक तरफ होजाते हैं, जिससे कि उनके पौधे खेतमें सर्वत्र समानभावसे

नहीं उत्पन्न हो सकते । इसलिये जिस समय वायु मन्द मन्द बहता रहे, वैसे वखतमें ही तिलका बोना उत्तम समझा जाता है । यदि खेतमें तिलके घने पौधे उत्पन्न हो जायें, तो उनके बीचसे बहुतेरे पौधों को खेतमें से उखाड़ कर पृथक् कर देवे ; क्योंकि ज्यादा घने तिलके पौधोंके उत्पन्न होनेसे लाभके पलटे उलटो हानि हो होनेकी सम्भावना रहती है ।

दो एक रोजके बीच यदि वृष्टि होनेकी सम्भावना मालूम हो, तो वैसे समयमें खेतके बीच तिलको बोना उचित नहीं है । अच्छी तरह जोते हुए खेतमें तिल बोनेके अनन्तर यदि दो चार रोजतक सूरजकी धूपसे खेतकी मिट्टी ऊपरसे सूख जाय और ऐसी अवस्था में यदि तिलके पौधे मिट्टीमें से बाहिर निकल आवें ; उसके अनन्तर जो थोड़ी वृष्टि हो, तो तिलके पौधे उत्कृष्ट हुआ करते हैं । अनेक बेर देखा जाता है कि, तिलके बीजको खेतके बीच छोटने पर थोड़ी ही देरके बाद अधिक परिमाणसे वृष्टि होनेसे तिलके पौधे मिट्टीमें से प्रायः बाहिर ही नहीं होते । यदि, दो चार पौधे बाहिर भी होते हैं, तो वे तेजस्वी नहीं होते । इसही निमित्त कृषकोंको उचित है कि, जहांतक होसके, जलका होना सम्भव है वा नहीं ?—इस विषयमें वायु आकाश तथा बादलोंकी लक्षणोंकी परीक्षा करके तब तिलके बीजोंको खेतमें छोटें अर्थात् बोयें ।

अगहन पौष महीनेमें तब तिलके दाने पक जाते हैं, तब उनकी वृक्षोंको काटकर खलिहानमें एकत्र करके रख देते हैं ; पन्द्रह सोलह दिनमें जब तिलके वृक्ष सूरजकी धूपसे अच्छीतरह सूख जाते हैं, तब उन्हें पोटाकर तिलके बीजोंको निकाल लेते हैं, उसके बाद यदि और भी शेष बीज रहें, तो उन्हें बैलोंकी द्वारा रौंदाकर चलनी प्रभृतिसे चालकर तिल और भूसंको पृथक् कर लेते हैं ।

साहेब तिल ।

साहेब-तिल दूधकी भांति सफेद होता है । इसकी सम्पूर्ण प्रकृति कालेतिलके समान है । दोनों तिलोंकी वपनप्रणालीमें किसी प्रकारका इतरविशेष नहीं है । तब इसमें यह विशेषता है कि, यह कातिक महीनेके प्रथमपक्ष तक पक जाता है और पकतेही इसके पेड़ोंको काट लेना होता है, नहीं तो बीजकी फलियोंके फट जाने से सम्पूर्ण तिलके बीज झड़के जमीनमें गिर जाते हैं । साहेबतिल भादों महीनेमें बोनेसे नहीं होता । इसे आषाढ़ महीनेसे लगाय सावन महीनेके प्रथम पक्षतक ही बोया जा सकता है ।

पक जाने पर इसे सूरजकी धूपमें सुखा कर पौट लेने तथा बैलोंसे रौंदवाकर तिल और भूसेको चलनी द्वारा पृथक् कर लेते हैं । काले तिलकी अपेक्षा यह साहेबतिल कुछ अधिक मूल्यपर बिका करता है ।

कातिकी तिल ।

कातिकी-तिल सफेद और काला दोनों प्रकारका देखा जाता है, किन्तु आश्चर्यका विषय यह है कि, दोनों प्रकारके तिल एकही वृक्षसे उत्पन्न हुआ करते हैं ; कदांतक कहें, एकही बीज-कोषके बीच कितनेही तिल काले और कितनेही सफेद रङ्गके हुआ करते हैं । कातिकीतिलकी आवादप्रणाली सब तरहसे साहेब तिलकेही समान है, किसी अंशमें भी किसी प्रकारका प्रभेद नहीं है ।

काट तिल ।

काट-तिल किञ्चित् कालो-आभायुक्त हुआ करता है । यह भाद्र महीनेके शेष और फागुन महीनेके पहिले बोया जाता है ।

काटतिल बीनेके समय कृषि सम्बन्धीय खेत प्राय नीरस अवस्था में रहते हैं । माघ महीनेके शेषमें यदि वृष्टि न हो, तो खेतमें जल सींचकर मिट्टीको भिगाकर काट तिल बीना होता है । यह तिल जेठ महीनेमें पक जाता है ।

यह काटतिल प्राय सब तरहके खेतोंमें बोया जा सकता है । पहाड़ी देश तथा पश्चिमोत्तर प्रभृति देशोंमें चूनापटेल मिट्टीके खेतोंमें यह काटतिल अच्छी तरह उत्पन्न हो सकता है । लोना मिट्टीके सिवाय प्राय अन्यान्य सब तरह की मिट्टियोंमें ही काट तिल उत्पन्न हो सकता है । इसकी अन्यान्य समस्या प्रकृति काले तिलकेही समान है ; किन्तु काट तिलके खेतमें दो बेर जल सींचनेकी आवश्यकता रहती है ।

पूर्वोक्त तिलोंके परमशत्रु आंचा नाम एक जातीय कीट है । जब तिलके पौधे कुछ बड़े होते हैं, तब उनमें आंचा पैदा होकर सम्पूर्ण पत्तियों तथा फूलोंको खा डालते हैं । तिलके जिन पौधों में आंचा लगते हैं, उनमें फूल फल होना सम्भव नहीं रहता ।

जो हो, आंचा निवारण करनेकी सहज उपाय यह है कि, खेदज आंचा कीटके अंडे पहिले तिलके पत्तोंमें संलग्न हुआ करते हैं । कई दिनोंके अनन्तर इन अंडोंके फूटने पर कीटकी उत्पत्ति होती है । तब असंख्य कीट निज जन्मपत्रके ऊपर भ्रमण करते हुए देखे जाते हैं । उसे “चाक” कहते हैं । एक एक चाकमें जितने असंख्य परिमाणसे कीट रहते हैं, किन्तु जुमले पर चाकों की संख्या उतनी ज्यादा नहीं रहती । उसी समय आगकी अङ्गारोंसे भरी हुई हाड़ी हाथमें लेकर सपत्न चाकोंको तोड़ कर उस अग्निमें डालना होता है, इसी प्रकार अल्प समयके बीचमें ही समस्त आंचा कीटोंको ध्वंस किया जा सकता है । चाकोंकी संख्या कम होनेसे एक बीघा जमीनमें तीन चारसे ज्यादा मजदूर नहीं

लगते । यदि चाकोंकी संख्या ज्यादा रहे, तो आठ दस सजदूर लगा करते हैं । चाकोंकी संख्यानुसार एक बीघा जमीनमें आंचा कीटयुक्त तिलके पत्तोंको तोड़नेमें ॥१॥ आठ आनेसे लगभग १॥१॥ डेढ़ रुपये तक खर्च होना सम्भव है । किन्तु इसके लिये कृषकोंको नकद रुपया नहीं खर्चना होता, क्योंकि हल जोतनेवाले किसान अपने हाथसे ही इस कार्यको किया करते हैं ।

कीटोंकी सहायकतामें चाकोंको तोड़ना जितना सहज होता है, फिर वैसा सुविधा नहीं रहता । क्योंकि जब वे कीट कुछ बड़े होजाते हैं तब अपने जन्मपत्रको परित्याग करके खेतके अन्यत्र पौधोंमें व्याप्त होते हैं, तब उन्हें किसी प्रकार भी निवारण नहीं किया जा सकता । मैदानके बीच एक खेतमें कीट उत्पन्न होनेसे उस सारे मैदान भरके खेतोंको उच्छन्न कर देते हैं । इसलिये मैदानके बीच केवल एक कृषकके अपने खेतके कीटयुक्त पत्तोंके चाकोंको तोड़ देनेसेही खेत निरापद नहीं होता । पर-स्पर सब कृषिकारोंकी ही अपने अपने खेतोंके कीटचाकोंको निर्मूल कर देनेसे तब तिलके खेतोंकी रक्षा होती है ।

—०—

तीसी ।

—०—

तीसी सर्वत्रही एक वर्णकी देखी जाती है । प्रभेदके बीच काशी तथा पटना प्रभृति प्रदेशों की तीसी कुछ बृहत् हुआ करती है, उसे “मोटादाना” तीसी कहते हैं । बङ्गदेशमें पैदा हुई तीसी को “मिहीन दाना” कहते हैं ।

तीसीके पौधे प्राय एक हाथ परिमाणसे ऊँचे हुआ करते हैं । तीसी बोनेका यथार्थ समय आश्विन महीना है, किन्तु कातिक महीने तक भी इसके बीज खेतोंमें बोये जाते हैं । माघ महीनेके शेष पक्षसे आरम्भ करके फागुन महीने पर्यन्त तीसीके पकानेका समय है । तीसीके बीज प्रति बीघामें मिट्टीकी अवस्था विशेषके अनुसार कहीं छ सेर और कहीं आठ सेर पर्यन्त बोये जाते हैं । बढियां जमीन-वाले जोते हुए खेतोंमें तीसी छोट कर हेंगा चला कर खेतको सम तल कर देते हैं । किसी किसी खेतमें हलकर्षित मिट्टीके बीच यव गेहूँ की तरह तीसीके बीजोंको बोते हैं ।

गहरे कूँड़ी और बिलानक्षेत्र तथा लोना मिट्टीके सिवाय अन्यत्र समस्त खेतों और सब तरहकी मिट्टीमें तीसी उत्पन्न हो सकती है । जब इसके पौधे कुछ बड़े हों, तो उसे एक अथवा दो बेर जलसे सींचनेसे ज्यादा फाइदा होता है, तीसीके खेतमें बेर बेर जल सींचनेकी आवश्यकता नहीं रहती, ओसके पानीसेही इसके पौधे तेजस्वी होजाते हैं, किन्तु ज्यादा कुहासा होनेसे प्राय इसके फूल झड़ जाते हैं ।

तीसी बोनेके अनन्तर निराने प्रभृति किसी प्रकारके परिचर्याकी आवश्यकता नहीं रहती । जब तीसीके फल खूब पक जाते हैं, तब तीसीके पौधोंको खेतमें से काट कर सूरजकी धूपमें सुखाना होता है । सुखानेके अनन्तर पीट कर हवामें उड़ाकर अथवा चलनीसे चालकर तीसीके बीज और भूसीको पृथक् कर लेते हैं । तीसीके पौधे जब कुछ बड़े होते हैं, तब उनकी शाखा सन्ध्याके समयमें उत्तर सुखकी कुछ बक्रा होजाती हैं; फिर सबरेके वक्र सीधी हो जाती हैं । इसका कारण समझा नहीं जाता ।

तीसी बोनेके बाद जलका अत्यन्त अभाव होनेसे, एक प्रकारके कीट लग कर तीसीके पौधोंको काट डालते हैं । जल सींचनेसे

सिवाय वे किसी प्रकार भी दूर नहीं होते । ऐसे खेतोंमें खाद डालने और जल सोचनेसे वे कीट नहीं लग सकते ।

—०—

सरसो ।

सफेद और धूमल वर्णभेदसे सरसो दो प्रकारकी होती है । सरसों के पेड़ प्रायः दो हाथ परिमाणसे ऊँचे हुआ करते हैं । इसके बीज क्षुद्राकृति और गोलाकार होते हैं । धूमल वर्णवाली सरसोंसे सफेद वर्णकी सरसोंके पेड़ कुछ बड़े होते हैं और उनके बीज भी कुछ बड़े हुआ करते हैं । किन्तु दोनों प्रकारकी सरसों की आवाद प्रणाली ठीक एकही समान है ; कुछ भी प्रभेद नहीं है ।

सरसो बीजेका उत्तम समय आश्विन महीना है । किन्तु कृषि-कार लोग कहते हैं, कि कुआर महीनेके शेष पक्षसे लगाय सम्पूर्ण कातिक महीने तक सरसों बोई जाती है ।

जो हो, सरसोके बीज प्रति बीधामें चार सेर परिमाणसे बोये जाते हैं । प्रति बीधामें यव वा गेहूँके बीजमें मिला कर सरसों एक सेर बोई जाती है । विलान और कूड़ीक्षेत्र चूनापटल, भांभरा, पत्नी, लोना-सेयारा तथा लोना मिट्टीके सिवाय अन्योन्य सब तरह के खेतों की मिट्टियोंमें सरसो उत्पन्न हुआ करती है । विशेष करके भीटाभूमिमें जैसी बढ़ियां सरसो उत्पन्न होती है, वैसी कहीं भी होना सम्भव नहीं है । विलानक्षेत्रके बीच भी जहाँ तहाँ सरसो उत्पन्न होती हुई देखी जाती है ।

सरसोंके पौधे जब फूलने लगते हैं, तब उनमें माहो नाम एक

प्रकारके कीटविशेष लगकर फूलोंको विनष्ट कर देते हैं। माहो एक जातीय अत्यन्त छोटे कीटविशेष हैं। ये माहो पूरवकी वायु बहनेसे सरसोंके पेड़ोंमें लग जाते हैं ; ये माहो किसी प्रकार भी निवारित नहीं होते। यदि सरसों की क्रीमियोंमें दाने उत्पन्न होने आरम्भ हों, और वैसे समयमें भी माहो उनमें लग जावें, तो फिर उन पेड़ोंमें सरसोंके दाने होनेकी सम्भावना नहीं रहती।

जब सरसोंके वृक्ष फूलने लगते हैं, ऐसे समयमें यदि आकाश बदरीला हो, तो सरसोंके फूल विनष्ट हो जाते हैं। सरसोंके पेड़ोंमें कीटादि जितने उत्पात दिखाई देते हैं, वे सब मौसिम बदरीला होनेसे ही हुआ करते हैं। लेकिन ओस से सरसोंके पौधोंको विशेष फायदा पहुँचता है। जितनाही ज्यादा ओस पड़े, सरसोंके पौधे उतनेही तेजस्वी हुआ करते हैं। जिस प्रकार यव गेहूँके पौधोंकी मिट्टीको सूखती हुई देखकर जलसे सींचनेकी आवश्यकता रहती है, उसी प्रकार सरसोंके पौधोंकी भी जलसे सींचनेकी आवश्यकता रहती है। सरसोंके दाने फागुन महीनेमें पक जाते हैं, पकने पर सरसोंके पेड़ोंको काटकर खलिहानमें रख के अच्छी तरह सूरजकी धूपमें सुखाते हैं ; और सूखने पर पीटकर सरसोंके दाने और भूसीको अलग कर लेते हैं।

—०—

• राई ।

राई अविकल धूमल वर्ण सरसोंके तुल्य होती है ; किन्तु राई के दाने सरसोंके दानेसे छोटे हुआ करते हैं। सरसोंके बीजोंसे जिस परिमाणसे तेल प्राप्त होता है, राईके बीजोंसे भी उसी प्रकार तेल की प्राप्ति होती है।

राईके पेड़ोंके पत्ते फूल और फलियां सरसोंको अपेक्षा कुछ लम्बी आकृतियुक्त हुआ करती है । सरसोंके सहित राईको आवाद-प्रणालीमें किसी प्रकारका भी प्रभेद नहीं है ।

लोना-सेयारा तथा लोनाफोटा मिट्टीके अतिरिक्त अन्यान्य सब तरहकी मिट्टियोंमें राई उत्पन्न हुआ करती है । तीसी, गेहूं, यव, मटर, चना प्रभृति सब प्रकार रब्बिअ शख्योंके साथ मिलाकर राई बोई जा सकती है । नदीकी तरीके खेतोंमें भी राई बोई जाती है ।

सरसोंकी भांति राईकी भी परिचर्या करनेकी आवश्यकता रहती है । सरसोंके पौधोंमें जिन उत्पातोंका भय रहता है, राई की खेतीमें भी प्राय वेही उत्पात दिखाई दिया करते हैं ; अच्छी तरह पकने पर राईके पौधोंको काटकर खलिहानमें सुखाकर पीटकर राईके दाने और भूसेको छुट्का कर लेते हैं । पकी हुई राईके पेड़ जबतक कुछ कच्चे रहें, तबही उन्हें काटकर खलिहान में लाना चाहिये, क्योंकि राईके पेड़ोंके एकवारगी खेतोंमें ही सूख जानेसे उनके दाने बहुतही छोटे हुआ करते हैं । राईके बीज यव वा गेहूंके साथ एक सेर प्रति बीघामें बोये जाते हैं । राईके पौधे यदि ज्यादा घने उत्पन्न हों, तो उनमेंसे कितने एक पौधोंको निकाल देना उचित है । राईका तेल अधिका फायदेमन्द समझा जाता है ।

—०—

शुकरगुजरी ।

एक जातीय तैलखन्दका नाम शुकरगुजरी है । इसे सहसा देखनेसे सोमराजी कहके भ्रम होता है । इसका तेल जलकी भांति पतला और कुछ दुर्गन्धयुक्त तथा लसदार होता है ; इस लिये दीपक

प्रभृति जलानेके अतिरिक्त इसका तेल अन्य किसी कार्यमें नहीं लगता । इस लिये राई वा सरसोंके साथ मिलाकर जहाँ तहाँ इसका तेल व्यवहार किया जाता है, किन्तु उसकी चिकनाई किसी प्रकार भी दूर नहीं हो सकती ; इसे शरीरमें मालिश करनेसे देह लासा-विशिष्ट और मलिन हो जाती है ।

तिलके सहित इसके आवाद प्रणालीमें कुछ भी प्रभेद नहीं है । जैसी मिट्टीवाले खेतोंमें तिल उत्पन्न हो सकता है ; यह भी वैसेही मिट्टीयुक्त खेतोंमें उत्पन्न हुआ करती है । भादो महीनेसे लगाय आश्विन महीनेके प्रथम पक्षतक शुकरगुजरीके बीज बोये जाते हैं और पौष महीने भरमें इसके बीज पक जाते हैं । इसके बीज प्रति बीघामें एक सेरके हिसाबसे बोये जाते हैं । हलसे जोतकर इसके बीजको खेतमें छींटकर हेंगा चलाकर खेतकी मिट्टीको समतल कर देना होता है । बीनेके अनन्तर इसकी किसी प्रकारसे विशेष परिचर्याकी आवश्यकता नहीं रहती ।

गवादि पशु इसके पौधेको नहीं खाते तथा इसके पेड़ोंमें किसी प्रकारके कीटादि भी नहीं लग सकते, और जलके स्पर्शसे भी इसके पौधे शीघ्र नष्ट नहीं होते । इसके पेड़ोंकी जड़में पांच रोजतक जल बद्ध रहनेसे भी किसी प्रकारकी विशेष नुकसानो नहीं होती, किन्तु इससे ज्यादा दिनोंतक जल बद्ध रहनेसे इसके पौधे निस्तेज होकर क्रमके सूख जाते हैं ।

अच्छी तरह पक जानेसे शुकरगुजरीके पेड़ोंको काटके खलि-हानमें सुखाकर पीट करके बीज और भूसीको पृथक् कर लेते हैं ।

धान ।

—203—

आकृति प्रकृति भेदसे सहस्र प्रकारसे भी अधिक धानकी जाति होगी । हमारे देशवासो बहुतेरे कृषिकार कहा करते हैं कि, पृथिवीमें एक हजार एक जातिके धान हैं और उन प्रत्येकके पृथक् पृथक् नाम हैं । जो हो, प्रत्येक प्रदेशके धानोंके नामोंको संग्रह करना बहुत सहज बात नहीं है । और आदिसमयमें किस प्रदेशके किस क्षेत्र तथा किस मिट्टीमें कौन कौन धान उत्पन्न हुए थे, इस समय अनेक अनुसन्धान करके भी उसके निगूढतत्त्वको जानने की कुछ उपाय नहीं है । तब जिस श्रेणीके धान जैसे खेत वा मिट्टीमें उत्पन्न होते हैं, संक्षेप में उनका विवरण इस पुस्तक में लिखते हैं ।

धानका पुष्पोद्गम अत्यन्त आश्चर्यमय होता है । प्रायः सब उद्भिज्जोंके भ्रूलके भीतर बीज निहित रहते हैं, किसी किसी उद्भिज्जके बीजकोषके शिरोभाग पर पुष्प दीखते हैं । किन्तु धानके पुष्प वैसी गठनके नहीं होते । धानकी शाखा प्रशाखाओंमें से जब धानको मञ्जरी बाहिर होती है, तब समस्त धान द्विधा विभक्त हुआ करते हैं ; उनका एक अंश कुछ बड़ा होता है और दूसरा अंश अपेक्षाकृत छोटा हुआ करते हैं । उभय खण्डके गर्भके बीच बहुत सूक्ष्म एक पुष्प प्रस्फुटित होता है । उसको गर्भकेशर धानके बीच रह जाती है । और परागकेशरका सूक्ष्मसूत्र उभयखण्डके सन्धिस्थल से बहिर्देशमें भ्रूल पड़ते हैं । परागकेशरके शिरोभाग में जो रीण रहती है, वह धानके गात्रमें संलग्न हुआ करती है । धानके बीच गर्भकेशरके अधोभाग में बहुत छोटे जो बीजकोष रहते हैं, कई दिनोंके बाद उनके बीच दूधका सञ्चार होता है ।

और धीरे धीरे वह स्थूल होकर दोनों खण्डके अभ्यन्तरके भागको परिपूर्ण करता है। तब दोनों खण्ड एकत्रित होकर धानके अवयवको सुसम्पन्न करते हैं। वही दूध कड़ा होकर परिणाम में चावलको उत्पन्न करता है। विश्वनियन्ताका क्याही आश्चर्यमय सृष्टिकौशल है।

धानको मुख्य करके पांच श्रेणीमें विभक्त किया गया है। जैसे आशु, आमन, बोरो (बीरा) जलि और त्वरा आशु इत्यादि। क्रमसे नीचे उनका वर्णन करते हैं।

—०—

आशुधान ।

जो धान जेठ आषाढ़ महीने में बोये जाते और सावन भादों तथा कुआर महीनेतक पक जाते हैं, उन्हें आशु धान कहते हैं। बोध होता है, जल्दी होनेसे इसका आशुधान नाम रखा गया है। आशुधान जो कितने प्रकारके हैं, उनकी संख्या नहीं कर सकते, किन्तु वे सब मुख्य करके दो श्रेणीमें विभक्त हैं। एक छोटना, दूसरा बराण, ये दोनों श्रेणीके धान एक खेतमें उत्पन्न नहीं होते, उनके लिये पृथक् पृथक् खेत निर्दिष्ट हैं। तब बराण धानके खेतमें छोटना धान उत्पन्न होते हुए देखा जाता है। पर छोटना धानके खेतमें बराण धान अच्छीतरह उत्पन्न नहीं होता। छोटना और बराण भेदसे इन दोनोंके आवादीमें किसी प्रकारका इतर-विशेष नहीं है और इन दोनोंके पेड़ भी प्रायः देखनेमें एकही तरहके होते हैं। आशु धानके पौधे दो हाथसे लगाय स्थल विशेष में तीन हाथ तक ऊंचे हुआ करते हैं। जिस खेतमें दो हाथसे अतिरिक्त वर्षाका पानी बह जाता है, उस खेतमें आशु धानका होना सम्भव नहीं है।

भादवी छोटना आशु धान ।*

छोटना आशु धानके पौधे और पत्तियां कुछ चिकनी होती हैं और धान कुछ मोटा हुआ करता है ।

गहरे कूड़ो और बिलान क्षेत्र[†] और लोना मिट्टी तथा ऊंचे जमीनके खेतोंके अतिरिक्त एटेल, पत्ती, वालुई तथा दुमट मिट्टी प्रभृति सब तरहके खेतोंमें यह धान उत्पन्न हुआ करता है । बराण धान कुछ जल्दी पका करता है ।

कुआरी बराण आशु धान ।

बराण धानके पौधे मोटे पत्तियां चौड़ी और धान चिकने होते हैं । ज्यादा गहरे तथा ऊंचे खेत और लोना मिट्टी वाली जमीनके सिवाय अन्यान्य सब तरहकी मिट्टीवाले खेतमें बराण धान हो सकते हैं ।

बराण आशु धानके खेतमें आधे हाथ परिमाणसे जलवृद्ध न रहने से इसके पौधे तेजस्वी नहीं होते । इसलिये इसे कुछ नीची जमीनवाले खेतोंमें जिनमें कि वर्षाकाल का पानी एकत्रित रहता

*केले, मूद, जामर बड़ा, छोट-कुमारी, बड़ी कुमारी, नड़ाई-जामर, साजाल नेड़ामूद, माणिकमूद, पूर्णिकेले, आशुलघु, काल-माणिक, कादाचांप, खजूरघौद, गुड़कपिली इत्यादि ।

इसी श्रेणीके बीच “घाठी” नाम एक जातीय धान है, जो अच्छीतरहसे परिपालित होनेसे षाठ दिनमें पक जाता है । प्रसिद्ध है, “श्यामा घाठी षाठ दिन, जब देव बरीसे रात दिन ।”

† गहरे कूड़ो और बिलान क्षेत्र में आशु धानके पौधे उत्पन्न होते हैं, लेकिन डूब जानेकी आशङ्कासे इन खेतोंमें आशु धान नहीं बोते ।

है, उसीमें बीना उचित है । इस बराण आशु * धानको कुआरी धान भी कहते हैं ।

—०—

कुआरी (आशु) धान बीनेकी रीति ।

कुआरी (आशु) धानके खेत जिनमें केवल धानकी ही फसल बोई जाती हों, उन्हें कातिक महीनेमें भली भांति जोत कर रखना चाहिये । तिसके अनन्तर फागुन चैत महीनेमें दो बार तीन बार जोतनेकी आवश्यकता रहती है । जब देखे कि, खेतकी मिट्टी जोतते जोतते मिहीन धूलकी तरह होगई है और खेतमें किसी जगह टणादिके चिन्ह मात्र नहीं हैं, तबही धान बीजोंको बीनेके योग्य खेतको दुरुस्त हुआ समझे । भादवी तथा कुआरी आशु धान बीनेका यथार्थ समय, जेठ महीना है, किन्तु वङ्गालके अतिरिक्त पश्चिमोत्तर प्रभृति देशोंमें आषाढ़ महीनेमें भादवी वा कुआरी आशु धान बोये तथा छीटे जाते हैं । धान छीटनेके बाद एक बेर जोतकर हेंगा चला कर मिट्टीको समतल कर देना होता है । किन्तु जब खेतकी मिट्टी पानीसे तर रहती है, तब खेतको केवल एक बेर हलसे जोत कर धान छीट कर उसके बाद केवल हेंगा चलाके समतल कर देनेकी ही आवश्यकता रहती है । कुआरी

*सर्वभोग, कपिलेश्वर, चन्द्रमणि, सूर्यमणि, कबूतर भूड़ी, लक्ष्मीजटा, वेनाफूली, पुटगजाल, वैंगनवीया, कालीघुइया, जगदुर्लभ, भुवन दुर्लभ, लोहागढ़, घृतकांचन, चिङ्गड़ीशाल इत्यादि ।

इनके बीच लक्ष्मीजटा तथा पुटगजाल प्रभृति कितनेही धान ज्यादा मोटे हुआ करते हैं ।

तथा भादवी धान प्रति बोधामें सोलह सैर परिमाणसे बोये जाते हैं । ध्यान रहे कि, धानके बीज मिट्टीके भीतर बहुत नीचे तक न जाने पावें, नहीं तो उन बीजोंके द्वारा अच्छी तरह पौधे उत्पन्न नहीं हो सकते । कुआरी तथा आशु धानके बीज दो प्रकारसे बोये जाते हैं जैसा एक “काक्ड़ी” दूसरा “यो” उपस्थित होने पर बोना ।

सूखी मिट्टीमें धानका बीज बोनेसे उसे काक्ड़ी, करना कहते हैं । काक्ड़ी किये हुए खेतमें धानके बीज बोनेके अनन्तर उसमें हेंगा चलानेकी आवश्यकता नहीं रहती, और जबतक उस खेतको मिट्टी जलसे तर न हो, तबतक अन्य किसी प्रकारकी आवादी नहीं कियी जाती ।

सब खेतोंमें ही काक्ड़ी की जा सकती है । किन्तु एटेल मिट्टी के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकारकी मिट्टीमें काक्ड़ी करना उचित नहीं है । एटेल मिट्टीके सिवाय अन्य जितने प्रकारकी मिट्टी हैं, उन सब मिट्टियोंका निम्न देश कुछ सरस रहना सम्भव है । इसलिये उन सब मिट्टियोंमें धानके बीज रस काक्ड़ी होनेसे पौधे हो सकते हैं, किन्तु उनमें दोमक प्रभृति कीटादि उत्पात उपस्थित होना भी विचित्र नहीं है, किन्तु एटेल मिट्टी तलपर्यन्त भी समभावसे परिशुष्क हुआ करती है और उसमें कीटादि उपद्रव भी बहुत कम होते हैं । इसलिये एटेल मिट्टीमें काक्ड़ी करनेसे किसी प्रकारके अनिष्ट होनेकी विशेष सम्भावना नहीं रहती ।

जिन खेतोंमें काश, कुश और मोथाकी अधिकता रहती है, वैसी जमीनमें काक्ड़ी करना कल्याणकारी नहीं है । देवमातृक देशमें कब जलकी वर्षा होगी—उसका निश्चय नहीं रहता ; देवात् यदि जलकी वर्षा न हो, तो धानके बीज जैसे बोये जाते हैं, वैसेही मिट्टीके भीतर पड़े रह जाते हैं । किन्तु काश कुश और मोथा प्रभृति अंकुरित होनेसे जमीन तृणोंसे परिपूरित होजाती है, जल

प्राप्ति मात्रसेही वे सब तृणादि बढ़ जाती हैं । तृणादिकीकी नीचे पड़नेसे धानके पौधे सतेज नहीं हो सकते ।

काकड़ी किये हुए खेतके जलसिक्त होनेसे उसकी यथायोग्य आवादी कर देनी होती है । यह आवादप्रणाली तथा :“यो” उपस्थित होने पर भादवी और कुआरी (आशु) धान बीनेकी रीति ठीक एकही प्रकार की है ; उसमें कुछ भी इतर विशेष नहीं है ।

जब मिट्टी जलसे तर रहती है अर्थात् कीचड़युक्त होकर हल चलाने योग्य रहती है, तब उसे जोत कर बीज छोट कर हेंगा चला कर मिट्टीको समतल कर देना होता है । उसके अनन्तर और एक बेर हेंगा चलाना चाहिये, फिर यदि सुवृष्टि हो, तो हेंगा चलानेकी आवश्यकता नहीं रहती, किन्तु वर्षाके जलका अभाव होनेसे धानके बीज रसकाकड़ी होनेकी आशङ्कासे जबतक उनके अंकुर बाहिर न हों, तबतक प्रतिदिन एक बेर हेंगा देनेकी जरूरत रहती है, उसके बीच धान बीनेके बाद चौथे दिन उस खेतमें हेंगा चलाना उचित नहीं है, क्योंकि विज्ञ कृषिकार लोग कहते हैं कि चौथे दिन “धान ध्यानमें बैठते हैं ।” इसका तात्पर्य यह है, कि चौथे रोज धानके अंकुर बाहिर होकर मिट्टीके साथ संयुक्त हुआ करते हैं ; इसलिये चौथे दिन खेतमें हेंगा चलानेसे धान के बीजोंके हिल जानेसे योग भङ्ग हुआ करता है किन्तु उसके अनन्तर पांचवें दिन हेंगा चलानेसे फिर किसी प्रकार हानि होनेकी सम्भावना नहीं रहती ।

बेर बेर हेंगा चलानेसे मिट्टी दबकर खूब बैठ जाती है और धानके बीज मिट्टीके सहित विशेषरूपसे लिप्त हुआ करते हैं, तथा भूगर्भमें वायु और सूर्यकी किरण अधिक परिमाणसे प्रवेश नहीं कर सकती । वायु और उत्तापके अभावसे मिट्टीके नीचेकी तह

पूरी तरहसे सख्त रहती है, जिससे कि चार पांच रोजके बीच धानके बीज अंकुरित होकर एक समाहके भीतर सूचिकाकारसे मिट्टीको भेदकर ऊपरको उठा करते हैं। दस दिनमें सूचिकाकार छूटकर पत्तियुक्त होकर धानके पौधोंके अवयवको धारण करते हैं।

जिस समय धानके पौधे पत्तियुक्त होकर ऊपरको उठते हैं, उस समय खेतकी हरे रङ्गयुक्त बहुतही रमणीय शोभा हुआ करती है। किन्तु धानके पौधोंके उत्पन्न होनेके साथही साथ उन धानके खेतों में बहुतसी घास वगैरः भी उत्पन्न होजाती हैं, और वे सम्पूर्ण खेत भरमें फैल कर धानके पौधोंको अपने प्रभावसे आच्छन्न करनेकी चेष्टा करती हैं। परन्तु जबतक धानके पौधे कुछ बड़े नहीं होजाते, तबतक उन घास प्रभृतिको निराकर खेतमेंसे पृथक् करनेका सुविधा नहीं रहता।

जबतक धानके पौधे दश अंगुल पर्यन्त ऊंचे नहीं होते, तबतक उस खेतमें विदे तथा लाङ्गली चलानेकी आवश्यकता नहीं होती। धानके खेतमें कितनी बेर हेंगा तथा लाङ्गली चलानेकी आवश्यकता होती है, उसे निश्चय करके नहीं कहा जा सकता। हेंगा और (विदे) चलानेका परिमाण खेतके “यो” के ऊपर बहुत कुछ निर्भर करता है। धान बोनेके बाद यदि प्रचुर परिमाणसे वर्षा हो, तो अंकुर बाहिर होनेके पहिले दो बेरसे ज्यादा हेंगा चलानेकी आवश्यकता नहीं रहती। किन्तु जलकी खींचाखींची रहनेसे अंकुर निकलनेके पहिले छ सातबेर हेंगा चलानेकी जरूरत हुआ करती है।

बावली-खेतमें सुयोग अनुसार हेंगा तथा विदे (लाङ्गली) चला सकनेसे चार बेर हेंगा तथा आठ बेर विदे (लाङ्गली) चलाई जा सकती है। किन्तु विलान खेतमें चार बेरसे ज्यादा लाङ्गली (विदे) चलानेकी जरूरत नहीं रहती। तब सुयोगका अभाव होनेसे ज्यादा भी चला सकते हैं। भादवी कुआरी धानके खेतोंमें हेंगा चलाने

तथा लाङ्गली (आंचड़ा) चलानेमें विमृष्टला उपस्थित होनेसे खेतमें घास प्रभृतिकी अधिकता होजाती है । अधिक घासवाले खेतोंके निरानेमें खर्च ज्यादा लगता है ; जिससे धानकी खेतीमें आमदनी बहुत कम होती है, ऐसी अवस्थामें खर्च अधिक होनेसे नुकसानो होनी सम्भव है ।

ऊँची जमीनवाले भादवीं वा कुआरी आशु धानके खेतोंमें हेंगा और लाङ्गली जहाँतक अच्छी तरह चलाये जायंगे, तृणादिकोंके निरानेका खर्च उतनाही कम लगेगा और धानके पीधे भी खूब तेजस्वी होंगे । इसके सिवाय हेंगा तथा लाङ्गली चलानेमें जितनीही विमृष्टला उपस्थित होगी, घास प्रभृतिको खेतमेंसे निराकर पृथक् करनेमें भी उतनाही ज्यादा खर्च लगेगा ; इतने पर भी धानके पीधे अच्छी तरह तेजस्वी नहीं हो सकेंगे । इस लिये हेंगी और लाङ्गली के चलानेमेंही कृषिकारोंके कृषिकर्ममें निपुणार्थकी परीक्षा हुआ करती है । हेंगी और लाङ्गली चलानेके दोष गुणसे धानकी विशेष क्षति वा वृद्धि होनी सम्भव है ।

धान बीनेके बाद खेतमें घास प्रभृति उत्पन्न होनेसे सब समय में ही उस खेतको निराया जा सकता है । खेतमें तृणादि उत्पन्न होनेसे उन्हें यदि जल्द न निराया जाय, तो उनकी बढ़नेसे धानके पीधोंकी हानि हुआ करती है ; और इसके अतिरिक्त पीछे निराने पर खर्च भी ज्यादा लगनेकी सम्भावना रहती है

धानके खेतमें चाहे कितनीही हेंगी और लाङ्गली चलार्द्र जाय, किन्तु तृणादिकोंको खेतमेंसे निराकर बिना पृथक् किये फलप्राप्तिकी आशा नहीं रहती, इस लिये निरानाही धानके खेतके आवादीकी हद्द सीमा है । बिना निराये हुए खेतके धान अच्छी तरह नहीं हो सकते । इसी लिये कृषिकार लोग कहते हैं कि, “खेत निराने से धान होता है, बिना निराये कृषिण जहन्नममें जाता है” ।

भादवीं वा कुआरी आशुधानको दो बेर निराते हैं, किसी किसी खेतको तीन बेर भी निरानेकी जरूरत हुआ करती है । एक बीघा धानके खेतको निरानेके लिये पहिली बेर सात आठ मनुष्योंकी आवश्यकता हुआ करती है । दूसरी बेर निरानेके समय भी इसी प्रकारसे मनुष्य अर्थात् मजदूरोंके लगनेकी सम्भावना रहती है । किन्तु काश, कुश, मोथा प्रभृतिवाले खेत बीस बाइस मजदूरोंसे कम होनेसे नहीं निराये जा सकते ।

भादवीं वा कुआरी आशु धान बोनेके अनन्तर जबतक वह अच्छी तरह नहीं पकते, तबतक कभी थोड़ा, कभी ज्यादा जलकी आवश्यकता हुआ करती है । जेठ महीनेमें एक दो बेर जलकी वर्षा होने पर आशु धानको बो देते हैं, अन्यथा कहीं कहीं आषाढ़ महीनेमें बोना होता है । जेठ महीनेमें मृगशिरा नक्षत्रमें घने बादल उठा करते हैं, मृगशिरानक्षत्रसे आरम्भ करके सावन महीनेतक दो चार रोजके अनन्तर एक एक बेर जलको वर्षा होनेसे भादवीं तथा कुआरी आशुधानके सम्बन्धमें विशेष फाइदा होता है । जेठ महीनेके बादहो आषाढ़में आद्रा नक्षत्र आरम्भ होनेसेही पृथिवीकी उत्पादिकाशक्तिका स्फुरन हुआ करता है और जलकी वर्षा भी प्रचुर परिमाणसे हुआ करती है । इसही समय भादवीं वा कुआरी आशुधानके पौधे कुछ बड़े होजाते हैं, और उनके गर्भके बीच सावन महीनेमें मंजरीका सञ्चार होता है । क्रमसे मंजरी बाहिर होते होते धानमें अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न हुआ करते हैं । ऐसे समयमें लगातार जलधाराकी वर्षा न होने से सम्पूर्ण धानके पौधे तथा मंजरी शिथिल हो जाती हैं । इसलिये आषाढ़ सावन तक अच्छे तरह जलको वर्षा होनी चाहिये । नहीं तो आशु-धानके सम्बन्धमें बहुत ही हानि हुआ करती है । जब गर्भसे धानकी मंजरी बाहिर होती है, तब शीघ्रमें प्रत्येक धान द्विधा

विभक्त हुआ करते हैं। किन्तु उस समय उनके बीच शस्यका कोई चिन्ह परिलक्षित नहीं होता। केवल धानके गालमें एकर सुद्र पुष्प दीखते हैं, उनको गर्भकेशर अति सुद्र होती है, वे उभय खण्डके पुरोभागमें अवस्थित रहती है, इसके विषयमें पहिलेही लिख आये हैं। दो तीन दिनके बाद पुष्प सूख जाते हैं और उभय खण्ड एकत्रित होकर धानके अवयवको सुसम्पन्न करते हैं और उनके बीच गर्भकेशरमें दूधका सञ्चार होनेसे आठ दिनके बीच चावलकी उत्पत्ति हुआ करती है। धान फूलने पर पन्द्रह दिन-तक बून्द बून्द वर्षाके जलसे मञ्जरी न भीगनेसे धानके बीच दूधका सञ्चार नहीं होता, इसलिये धानके बीच शस्यका अभाव होनेसे सम्पूर्ण धान चावलरहित रह जाते हैं। किन्तु जल पाने अर्थात् जलकी वर्षा होती रहनेसे आशु धानकी फसल अच्छी होती है।

भली भांतिसे पके हुए धानको काटकर खलिहानमें रखकर सूरजको धूपमें सुखाकर पीट कर वा बैलोंसे रौंदवा कर धानको विचाली यानी पोवालसे पृथक् कर लेते हैं। ध्यान रहे, — धानको खलिहानमें इस प्रकार रखे कि, उनके शीषमें सूरजको धूप बखूबी लग सके, अन्यथा धूप न लगनेसे धानके भीतरसे चावल शीस कर विवर्ण होजाते हैं, और वैसे धानको बोनेसे अच्छी फसल नहीं हो सकती। खानेमें भी ऐसे धानके चावल अच्छे नहीं होते।

—०—

अगहनी वा हैमन्तिक आसन (शालि) धान ।

जेठ महीनेमें जो सब धानके बीज जखिरामें वपन किये जाते हैं और और आषाढ़के शेष तथा सावन महीनेमें खेतीमें रोपण

किये जाते हैं और कातिक महीनेके शेष पक्षसे लगाय अगहन तथा पौष महीनेके प्रथमपक्षतक पकते हैं, उन्हें अगहनी वा हैमन्तिक आमन धान कहते हैं । हैमन्तिक धान अनेक जातीय हैं, किन्तु वे सब मुख्य करके दो श्रेणीमें विभक्त हैं । उनमें एक श्रेणीका नाम राढ़ीआमन वा शालीधान है और दूसरी श्रेणीको बागड़ा आमन धान कहते हैं ।

—०—

राढ़ी आमन (शालि) धान ।

राढ़ी आमन (शालि) धानके पौधे ऊपरमें दो हाथ अर्द्ध हाथ तथा कहीं कहीं तीन हाथ पर्यन्त ऊँचे हुआ करते हैं । इसके पौधे देखनेमें प्रायः आशुधानकी भांति ही होते हैं ; किन्तु उसकी अपेक्षा कुछ कड़े तथा सुथी और चिकने पक्षेवाले हुआ करते हैं । इस धानके चावल खूब मिहीन और परम सुन्दर होते हैं, पृथिवीके बीच जितनी श्रेणीके धान हैं, कोई भी इस अगहनी वा हैमन्तिक आमन धानके समान बढ़ियां नहीं होते ।

कूड़ी, कोलकूड़ी तथा जोलसे भिन्न कूर्मपृष्ठ, क्रमनिम्न संस्कृत समतल तथा विलान प्रभृति खेतोंमें राढ़ी आमन (शालि) धान उत्पन्न नहीं होते । किन्तु जिन सब विलानखेतों में बूड़ाका पानी प्रवेश नहीं करता, अथवा दैवात यदि बूड़ाका पानी उस खेतमें प्रवेश भी करे, और दो हाथसे अधिक जलवृद्ध न हो, तो ऐसे खेतमें शालिधान उत्पन्न हो सकते हैं । इसके लिये ज्यादा मृत्तिका भेद नहीं है, तब लोनाफोटा तथा लोनासेयारा मिट्टीमें इसके पौधे नहीं हो सकते । इसके अतिरिक्त अन्यान्य सब तरहके खेतों

में जिनमें कि, आध हाथसे ज्यादा और डेढ़ हाथसे कम जलवृद्ध रहता है, वैसे खेतोंमें राढ़ी आमन (शालि) धान उत्पन्न होते हुए देखे जाते हैं ।

भारतवर्षके अनेक स्थानोंमें इस धानकी प्रचुर परिमाणसे आवादी हुआ करती है । उनके बीच राढ़ प्रदेशमें इसकी अधिक परिमाणसे आवादी होनेके कारण इसका राढ़ीआमन नाम रक्खा गया है, किन्तु प्राचीन संस्कृत नाम इसका “शालिधान” है । राढ़ी आमन (शालि) धान भी छोटा और वराण भेदसे दो अणोंमें विभक्त है । दोनों अणोंके धानकी प्रकृति ठीक एकही समान है और आवादप्रणालीमें भी कुछ इतरविशेष नहीं है । विभिन्नता केवल इतनी ही है कि, छोटाआशु शालीधान कुछ पहिले पकता है और वराण आशु (शालि) धान कुछ विलम्बसे पकते हैं । और जिन खेतोंमें आध हाथसे लगाय पौन हाथ तक जलवृद्ध रहता है, उनमें छोटा-शालिधान होते हैं । जिन खेतोंमें पौनहाथसे ऊपर जलवृद्ध रहता है, उनमें वराण आशु-शालिधानके पीछे रोपण करनेसे भली भांति उत्पन्न हुआ करते हैं । इस राढ़ी-आमन वा अगहनो-शालिधानकी आवाद प्रणाली दो प्रकारकी है—एक वपन करना, दूसरा रोपण करना ।

जिस रीतिसे भादवी वा कुआरी आशुधान बोये जाते हैं, अगहनो शालिधानके बोनेका नियम भी अविकल उसी प्रकार जानो । तब प्रभेद इतनाही है कि, अगहनो शालिधानके बीज प्रति बीघामें बारह सेर परिमाणसे ही बोये जाते हैं । भादवी कुआरी आशु धानकी भांति अगहनो शालिधानके खेतमें भी हेंगी चलानेकी आवश्यकता हुआ करती है । किन्तु अधिक परिमाणसे विदे (लाङ्गली) चलाने वा वेर वेर निरानेकी आवश्यकता नहीं रहती, राढ़ीआमन (शालि) धानके खेतमें अधिकांश समयमें ही

विदे (लांगली) चलानेका “यो” नहीं मिलता । इसीलिये विदे (लाङ्गली) चलानेका सुविधा नहीं रहता, किन्तु “यो” उपस्थित न होने पर भी लाङ्गली चलाने में विशेष हानि नहीं होती, इसका आवाद करना कड़ान (लेउ) चाप परही अधिक निर्भर है । आषाढ़ महीनेके शेष से लगाय सावन महीनेतक लेउ लगनेपर इसे जखिरामें से उठाकर रोपण करनेसे विशेष फायदा होता है । कहीं कहीं वृष्टिके अभावसे भादो महीने तक रोपण करते हैं, किन्तु भादो महीनेमें रोपण करने से शालिधानकी द्वारा विशेष फलप्राप्ति होनेकी सम्भावना नहीं रहती । इसलिये सावन महीने भरमेंही इसे रोपण करना उचित है ।

उपयुक्त समयमें धानके खेतमें जलवृद्ध होनेसे उसकी परीक्षा करनी होती है । यदि दस बारह दिनके बीच जल शोषित न होकर स्थिर रहे, तो उसमें कड़ान चाप (लेउ लगे पर जोत) कर धान रोपणके उपयुक्त किया जा सकता है । जोतनेके बाद हेंगा चलाकर मिट्टीकी समतल कर देनेकी भी विशेष आवश्यकता रहती है ।

कड़ान चापके अनन्तर एक सप्ताहके भीतर खेतमें की सम्पूर्ण घास प्रभृति जलयुक्त कीचड़में सड़ जाती है । तब इन सब तृणादिको हाथसे निकाल कर खेतमेंसे बाहिर कर देना होता है । अनन्तर धानकी पौधोंके मूलसे कई एक शाखा पेड़ी निकाल क्रमसे बढ़ा करती हैं । कड़ान चापके दो तीन रोज बाद यदि खेतका पानी सूख जाय, तो मिट्टीके रूखो होनेसे धानके तेजकी विलक्षण हानि हुआ करती है । इसीलिये कड़ान चापके पहिले खेतके जलकी परीक्षा करना बहुतही जरूरी है ।

जिन सब गहरे कूड़ी खेत प्रभृतिमें अधिक परिमाणसे जलवृद्ध हुआ करता है, उनमें रोपुवा आमन धान रोपना उचित नहीं है

और जिन खेतमें, जलका हिस्सा कुछ कम होता है, उनमें रोपुवा आमन धान उत्पन्न हुआ करता है ।

रोपुवा आमनधानके खेतको वैशाख वा जेठ महीनेमें दो बेर जोत कर ठीक कर रखना चाहिये तिसके अनन्तर जलकी वर्षा होने पर उसे दोहरा जोत कर दो बेर हेंगा चलानेसे उस खेतको मिट्टी दधिकीचड़को भांति होजाती हैं । तब जखिरामेंसे रोपुवा धानके पौधोंको उठाकर उनकी आंटी बांये हाथमें लेकर दाहिने हाथमें दो वा तीन तीन पौधोंको लेकर खेतकी कीचड़वत् मिट्टीमें छ छ इन्चिके फासिले पर उनकी गुच्छमूलको बैठाना वा रोपण करना उचित है ।

सम्पूर्ण आषाढ़ महीना तथा सावन महीनेके प्रथम पक्ष पर्यन्त रोपुवा आमन धान रोपण करनेका उपयुक्त समय है । उसके अनन्तर रोपण करनेसे रोपुवा आमन धानसे बढ़िया फसल नहीं मिल सकती, क्योंकि अगहनी धान मात्रकेही कुआर महीनेमें ओछागत मञ्जरी आजाती है, और वे कातिक महीनेके प्रथम पक्षमेंही फूलकर बाहिर होने लगती हैं ।

सावन महीनेके शेष तथा भादों महीनेमें जो धान रोपण किये जाते हैं, उनके बढ़ने तथा मञ्जरी बाहिर होनेके लिये अधिक समय नहीं रहता । बहुत थोड़े समयके बीच उन धानके पौधोंकी परिपुष्टि नहीं हो सकती । इस लिये समयसे पीछे रोपण करनेके हेतु ऐसे धानसे पूरी फसलकी कौन कहे, अधूरी भी मिलने की आशा नहीं रहती । और जो धान ठीक समयपर अर्थात् आषाढ़ के शेष पक्षसे लगाय सावन महीनेतक रोपण किये जाते हैं, उन्हें बढ़नेके लिये यथेष्ट समय रहता है । इस जगह समयके बीच वे धानके पौधे अधिकांश पेड़ी (पीवाली) छोड़नेके लिये अवकाश पाते हैं, और उन धानोंके समस्त पौधे बड़े होजाते हैं । आशुधानकी

प्रकरणमें वर्णन कर चुके हैं कि, आषाढ़ सावन महीनेके बीच जो धान रोपण किये जाते हैं, उनके द्वाराही अच्छी फसल प्राप्त हो सकती है, और भादों महीनेमें रोपे हुए धानके पौधोंमेंसे अत्यन्त लुढ़ मज्जरी बाहिर होती हैं; और कुआर महीनेमें रोपण किये हुए धानके पौधोंसे कुछ भी फसल प्राप्त नहीं हो सकती। सिद्धान्तवात यह कि, आश्विन महीनेमें कदापि धान रोपण न करे। आश्विन महीनेमें रोपनेसे लाभ न होकर उलटी मुकसानीही हुआ करती है।

जिस दिन धान रोपण किया जाय, उसके दूसरे दिन एक बेर खेतको पुझानुपुझरूपसे देखना चाहिये। किसी स्थानकी दो चार गुच्छी धानके पौधे यदि जलके तरङ्गसे उखड़कर स्थानच्युत होगये हों, तो उन्हें फिर उनके स्थानमें बैठा देना चाहिये। और दस बारह दिनोंके बाद रोपे हुए धानके खेतमें जो लूणादि उत्पन्न हों, उन्हें खेतमेंसे निकाल कर पृथक् कर देना उचित है।

धानके जो बीज रोपण किये जाते हैं, वे दो प्रकारकी उपायसे संग्रहीत हुआ करते हैं। पहिला बीज बोये हुए खेतमें पौधोंके घने रहनेसे अन्यखेतमें कड़ान चाष देनेके पहिले उन्हें उस खेतमेंसे उठाकर लाया जा सकता है। दूसरा जखिरा वा वेहनौरमें बोकर पहिलेसेही पौधोंको तैयार कर रखना होता है। इन दो प्रकारकी रीति अनुसार धानके पौधे रोपण करनेके लिये तैयार हुआ करते हैं।

जिस प्रणालीसे धान बोये जाते हैं, जखिरामें भी धानके बीजोंकी छोटनेका वैसाही नियम है। प्रभेदके बीच केवल इतनाही तफावत है कि, जखिरामें प्रति बीघा सोलह सेरसे लगाय बत्तीस सेर तक धानके बीज बोये जा सकते हैं। जखिरामें बीज बोनेके अनन्तर फिर उसे जोतनेकी जरूरत नहीं रहती; केवल दो बेर हेंगा चलाके छोड़ देना होता है। धानके बीजके वेहनौर अर्थात् जखिरामें बीज बोनेके पहिले तथा बीजके पौधे बाहिर होनेके बादमें कुछ

खाद डालनेकी बहुतही जरूरत रहती है । खाद : 'डालनेसे धानके पौधे ज्यादा तेजस्वी होजाते हैं ।

विलानखेतके सिवाय सब तरहके खेतों तथा लोनाफोटा और लोनासियारा मिट्टीके अतिरिक्त अन्यान्य सब तरहकी मिट्टियोंमें बैहनौर वा जखिरा निर्वाचित करके उसमें धानके बीज छीटे जा सकते हैं । किन्तु जिन खेतोंमें सचराचर आध हाथतक जल बह हुआ करता है, वैसेही खेतोंमें धानके बीजोंको बोना अच्छा है । ध्यान रहे कि, जिस खेतमें बीयाके धान छीटे जाते हैं, उन खेतोंमें बीजों के नीचेवाली मिट्टी उपजाऊ होनी चाहिये । अनुपजाऊ मिट्टीमें धानके बीजको बोनेसे उसके पौधे अच्छी तरह तेजस्वी नहीं होते । यदि उपजाऊ जमीनमें बीज बोये जायँ और उनसे भलीभांति पौधे उत्पन्न हों, तो दो सेर बीजके पौधोंसे एक बीघा खेतमें धान रोपण किया जा सकता है, अन्यथा चार पांच सेर धानके बीजके पौधोंकी एक बीघा खेतमें रोपनेके लिये आवश्यकता हुआ करती है ।

बीज बोनेके पहिले खेतकी मिट्टीको जोतकर अच्छी तरह मिहीन धूलकी भांति कर देवे ; जब देखे कि, खेतमें कहीं भी छुणादिके चिन्ह मात्र नहीं हैं, उसी समय धानके बीजोंको जखिरा वा बैहनौरकी क्यारियोंमें बोना चाहिये । जखिरामें धानके बीजको बोनेके बाद जोतना, इस लिये निषेध किया गया है कि, धान मिट्टी के भीतर अधिक नीचेतक प्रविष्ट होनेसे रोपनेके समय वहांसे उनके पौधोंको सहजमें नहीं उठाया जा सकता । जोरसे खींच कर उठानेसे प्रायः पौधे बीचोबीचसे टूट जाते हैं । ऐसे घटनास्थलमें निरानी प्रभृतिकी सहायके बिना उन पौधोंको उत्तोलन करनेमें बहुतही कठिनाई हुआ करती है । किन्तु निरानी प्रभृतिके द्वारा धानके पौधोंको रोपण करनेके समय उठानेमें खर्चकी अधिकता हुआ करती है ।

दूसरे प्रकारसे जखिराके बीच बीज बोनेकी रीति यह है कि, किसी खेतमें आध हाथ वा उससे न्यून जल बद्ध रहने पर उस खेत को बर बर हलसे जोतकर, हेंगा चलाके भलीभांति मिट्टीकी कीचड़ को तरह करना होता है। तिसके अनन्तर कोचड़के जलमें बीजोंको छोट देनेसे सम्पूर्ण बीज कोचड़के बीच प्रोथित होजाते हैं। ऐसे जखिरामें भी प्रति बीघा खेतमें बत्तीस सेरके परिमाणसे धानके बीज छोटे जाते हैं। बीज बोने वा छोटनेके अनन्तर खेतमें हेंगा चलानेकी आवश्यकता नहीं होती।

अनन्तर जलमें घुली मिट्टी जब नीचे बैठ जाती है और उसके ऊपरका पानी साफ होजाता है, तब खेतको मेड़को काटकर उस जलको बाहिर कर देना होता है। एक सप्ताहतक खेत जलरहित होनेसे धानके अंकुर निकल आते हैं। अंकुर निकल आनेके अनन्तर रउनके ऊपर कुछ खाद छोटकर फिर खेतको जलसे युक्त कर देना होता है। ऐसा होनेसे थोड़ेही दिनोंके बीच धानके पौधे बढ़कर घने होजाते हैं।

चाहे किसी प्रकारसे धानके बीज द्वारा पौधे क्यों न उत्पन्न किये जायं, किन्तु जब वे पौधे चार अङ्गुल परिमाणसे ऊंचे हों, तब जखिरा अर्थात् खेतकी क्यारियोंमें सर्वदा जलबद्ध रहनेकी आवश्यकता रहती है, अन्यथा धानके बीजके पौधे अच्छे नहीं होते।

किसी किसी प्रदेशमें धानके बीजको जखिराकी क्यारियोंमें बोनेके पहिले उस जमीनकी मिट्टीको काठ वा ऊपले प्रभृतिकी आगसे जला देते हैं। यह व्यवस्था 'भी खराब नहीं' है। जला देनेसे मिट्टी अधिक उर्वरा होजाती है और उस जमीनकी घास प्रभृति भी जड़मूलसे जलकर नष्ट होजाती हैं। अनन्तर वैसी जमीनको जोतकर नियमपूर्वक बोनेसे धानके पौधे विशेष तेजस्व होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है।

विशेष विधि ।

खेतमें जिस दिन धानके पौधे रोपण किये जाते हैं, उसकी पहिलेही जखिरामेंसे धानके पौधोंको उठाकर रखना चाहिये। उठानेके समय तीन चार मुट्ठी उन धानके पौधोंकी आंटी बांधके उनको जड़ोंके कीचड़को धोकर रखना होता है। रातके बीच पौधोंके मूल देशसे नई सोरोंके बाहिर होनेका उपक्रम हुआ करता है। सद्योत्पन्न कीचड़में उन्हें रोपण करनेसे गुच्छमूल कीचड़में संलग्न होजाते हैं। जखिरामें से उठाये हुए सद्योत्पन्न धानके पौधे तथा धान रोपनेके लिये ताजे जोते हुए कीचड़युक्त खेतके बासी होजानेसे यथोचित फलप्राप्तिकी आशा नहीं रहती, किन्तु यह नियम सब समय परिपालित नहीं हो सकता। खेतमें रोपण करनेके समय जब रोपनेके लिये धानके पौधोंकी कमी होती है, तब टटकेहो पौधोंको जखिरामें से उठाकर रोपण किया जाता है। और अन्यान्य कारणोंसे दो तीन दिनके जोते हुए बासी कीचड़में भी धानके पौधे रोपित हुआ करते हैं।

आध हाथ तथा पौन हाथ ऊँचे धानके पौधेही रोपण करनेके लिये अच्छे होते हैं ; इससे छोटे होनेसे वे पौधे प्रायः जलमें डूब जाते हैं और ज्यादा बड़े होनेसे प्रायः जलके धक्के से उखड़ जाते हैं। इसलिये जलके समयोपयोगके सिवाय बहुत छोटे धानके पौधोंको रोपण करना उचित नहीं है। और अधिक बड़े होने पर पत्तियोंको काट कर रोपण करना उचित है।

पहिले लिख आये हैं कि, यदि बीजसे अच्छे पौधे उत्पन्न हों, तो दो सेर बीजके पौधोंसे एक बीघा खेत रोपण किया जा सकता है, किन्तु जितने बीघा खेतमें रोपुवा धान रोपनेकी जरूरत हो,

उन प्रत्येक बीघेके लिये चार सेर बीज प्रति बीघेके हिसाबसे जखिरामें वपन करना उचित है ।

काड़ान चापके अनन्तर जब धानके पीछे खेतमें रोपण किये जाते हैं, तब उस खेतमें जलबद्ध रहनेकी आवश्यकता रहती है । बूंद बूंद जलसे केवल मिट्टी भीगी मात्र रहनेसे रोपुवा आमन धानके सम्बन्धमें विशेष उपकार दिखाई नहीं देता, रात दिन इसके मूल स्थलमें आध हाथ वा उससे अधिक जल बद्ध न रहनेसे इस धानसे कुछ फलप्राप्ति की आशा नहीं रहती, तब रोपनेके बाद एक बेर जल सूखकर कौचड़ मात्र रहते रहते पुनर्वा र खेतमें जलबद्ध होनेसे उत्तम होता है । कृषिकार लोग कहा करते हैं कि, सावन महीनेमें रोपुवा आमन धानका खेत जलपूर्ण होकर भादवी महीनेमें वह जल एक बेर सूख कर फिर यदि आश्विन महीनेमें, वह खेत जलसे परिपूरित हो और कातिक महीने में अगर प्रवण रूपसे वायु प्रवाहित न हो, तो इस धानसे प्रचुर परिमाण फसल प्राप्त हो सकती है ।

आमन धान फूलनेके अनन्तर आशु धानकी भांति विधा विभक्त हुआ करते हैं, किन्तु आशु धानके उभय खण्डके एकत्र संयोजनाके लिये जिस प्रकार वर्षाके जलकी आवश्यकता होती है, आमन धानके लिये वैसी जरूरत नहीं रहती, इस सम्बन्धमें आमन धान की प्रकृति आशु धानसे सम्पूर्ण विपरीत है । ओसके बूंदके स्पर्शसेही आमन धानके उभय खण्ड एकत्रित हुआ करते हैं, बल्कि आमन धान फूलनेके अनन्तर यदि अधिक वृष्टि हो, तो उन धानी के बीच बहुधा चावलकी उत्पत्ति नहीं होती, इसीलिये कृषक लोग कहा करते हैं कि, भादवी कुआरी आशु धानके सिर पर जल और अगहनी शालिधानके जड़में जल रहने की आवश्यकता रहती है ।

प्रति वर्षमें राठी आमन (शालि) धानके खेतको जोत कर

उन्हें संस्कारयुक्त कर देना होता है । अर्थात् खेतका जल निकाल कर दूसरे खेतोंमें न जासके, इसी अभिप्रायसे चारों ओरसे मेंड़ बांध कर रखना होता है, क्योंकि, केंकड़े तथा अन्यान्य जातीय कीट लग कर मेंड़ोंको छिद्रयुक्त कर डालते हैं । इसीलिये प्रतिवर्ष मिट्टी चढ़ा कर खेतके मेंड़ोंको दुरुस्त कर देना होता है । अधिक हृष्टि होनेके पहिले आषाढ़ महीनेके प्रथममें ही आमन (अगहन) धानके खेतोंकी मेंड़ बांध देना उचित है । आषाढ़ सावन महीने में आकाश की गति वा भावको देख कर जल होनेका लक्षण अच्छीतरह समझा जा सकता है । अगहन शालिधानके खेतकी दुरुस्त करनेके सम्बन्धमें कृषकोंको असावधान होना न चाहिये । खेतका कोई स्थान ऊँचा नीचा हो, तो ऊँचे स्थानकी मिट्टी काट कर नीचे स्थानमें डालनी होती है । कोई खेत किञ्चित् क्रमनिम्न भावसे अवस्थित हो, तो उसके बीचोबीच एक मेंड़ बांध देना उचित है, ऐसा होनेसे दो भागमें विभक्त होकर ऊँचे नीचे क्रमसे दोनों खण्डही समतल होजाते हैं । आमन (शालि) धानका खेत जितनाही समतल होगा, उतनाही वह (शालि) धान श्रेष्ठता लाभ करेगा ।

चूनापटेल मिट्टीके अतिरिक्त अन्यान्य मिट्टीवाले खेतोंमें धानके पौधे रोपनेके समय कड़ान चाष (लेउलगेपर जोतने) के समय अधिक जोतनेकी बाहुल्यतासे ज्यादा कीचड़ होने पर धानके पौधों में प्राय पांखी लग जाती है, और शांखी नाम एक जातिकी कीट हैं, वे भी धानके पौधोंके पत्तोंको विनष्ट किया करते हैं । शांखी जलकेही दोषसे उत्पन्न हुआ करते हैं । पांखी और शांखी निवारण करनेका सर्वश्रेष्ठ उपाय यही है कि, खेतमें का पानी बाहिर निकाल कर खेतकी मिट्टीका अल्प परिमाणसे सूखने दे, इसके अतिरिक्त ये दोनों रोग और किसी प्रकार भी दूर नहीं हो सकते हैं ।

धानके पत्ते क्रम क्रमसे बाहिर हुआ करते हैं । उनके बीच किसी किसी पौधेके पत्ते कलिकापत्तों की भांति न होकर शलाका-वत् गोलाकार होकर बाहिर हुआ करते हैं ; ऐसे पत्तोंको “भेपू लगे पत्ते” कहते हैं । जिस पौधे में भेपू लगते हैं, उसमें पत्ते वा शीष होनेका स्थान नहीं रहता । भेपूही उसके जीवनकी परिणाम क्रिया रूपसे गण्य होते हैं, भेपू बहुतही भयानक रोग है । तब विशेषता इसमें यही है कि, जिस सीकामें भेपू लगते हैं, वही विनष्ट होजाता है, किन्तु पौधेकी अन्यान्य शाखा वा शीष तेजस्वी हो जाती हैं । भेपूकी उत्पत्तिका कारण क्या है, कुछ समझा नहीं जाता ।

इस धानमें कुआर महीनेसे मज्जरी शीषके मुख पर आजाती हैं और कातिक महीनेके प्रथम पक्षमेंही फूलने लगती हैं तथा अगहन महीनेके बीच पक जाती हैं । यह धान कटनेकी अनन्तर पीट कर वा बीलोंसे रौंदवा कर बिचाली वा पोवालसे पृथक् कर लिया जाता है ।

धानकी बिचाली वा पोवाल पश्चादिकोंके लिये बहुतही उपादेय खाद्य है । प्रदेश विशेषमें धानके बिचाली (फूस) के घर भी छाये जाते हैं ।

—o—

बागड़ा आमन धान ।

~~~~~

बागड़ा आमनधान छोटना और वराण भेदसे दो अंशोंमें विभक्त है । अन्यान्य धानोंकी अपेक्षा इसकी अंशी विभाग बहुतही आश्चर्यमय है । छोटना और वराण इन दोनों अंशीवाले

धानोंके आकारको देखनेसे सहसा एकजातीय धान कहके बोध नहीं होता । किन्तु उभय श्रेणीके धान एक विलान खेतमें एकाही समयमें बोये जाते तथा एकही समयमें उत्पन्न हुआ करते हैं ।

यह जेठ महीनेके प्रथम पक्षसे लगाय कहीं कहीं आषाढ़ महीने पर्यन्त बपन किया जाता है । किन्तु जेठ महीनेतक तथा आषाढ़ महीनेके प्रथम पक्षतक इसे बपन करनेसे भली भांति फल-प्राप्ति होती है, इसके उपरान्त बपन करनेसे उचित रीतिसे फसल प्राप्तिकी आशा नहीं रहती, यह धान कातिक महीने से लगाय अगहन महीने भरमें पक जाता है । इसके बीच “कालवयरा” प्रभृति कई एक जातिके धानोंके पकनेमें प्रायः पौष महीना व्यतीत होजाता है ।

राढ़ी आमन ( शाली ) धानके सहित इसकी आवादीमें कुछ भी सौसादृश्य नहीं है । बल्कि आशु धानके सहित इसकी आवादीमें यथेष्ट ऐक्यता है । प्रभेदके बीच आषाढ़ महीने भरमें निराना समाप्त न होनेसे आशु ( भादवी ) धानके पौधे अच्छीतरह नहीं होते, किन्तु यह धान सावन महीने भरतक निराया जा सकता है । इसके बीज प्रति बीघामें सोलह सेर परिमाणसे छोटे जाते हैं । किन्तु हेडमोएटेल मिट्टीयुक्त जिन सब विलान खेतोंमें अधिक विदे ( लाङ्गली ) चलानेका प्रयोजन नहीं होता, उन खेतोंमें प्रति बीघामें दस बारह सेर धानका बीज छोटनेसे भी कार्य चल सकता है ।

विलान खेतोंमें इस धानको बोनेके लिये ज्यादा जोतनेकी आवश्यकता नहीं होती । यह खेत कातिक महीनेमें रविव्र फसल बोनेके समय तीन भागमें विभक्त होजाता है । इसके कितनेही अंशमें जोतकर बीज बोये जाते हैं और कितने एक अंशमें बीज छोट दिये जाते हैं । इसके अतिरिक्त कितने एक अंश बिना जोते



बोयेही पड़ रहे हैं \* उनके बीच बीज छोटे हुए तथा पड़ती खेतमें तोम बार और जोतो हुई खेतकी जमीनमें दोबेर मात्रही जोतकर यह धान बोया जाता है । विलान खेत मात्रमेंही प्राय काकड़ी करके बीज बोये जाते हैं । धान मात्रही एक जोतकी मिट्टीके नीचे तक बोये जाते हैं, आशु धानमें जिस प्रणालीसे हेंगी वा विदे ( लाङ्गली ) चलाने जातो है, इसमें भी हेंगी और विदे ( लाङ्गली ) चलानेकी अविकल वैसेही व्यवस्था है । किन्तु वागड़ा आमन धान एकबेर निरानेसेही हो सकता है ; तब आशु और छोटना आमन यदि एकही बेर बपन किये गये हों, तो उस खेतकी दो बेर निरा देनेकी आवश्यकता रहती है । वागड़ा आमन धानके खेतमें काड़ान चाष नहीं किया जाता ।

—०—

### वागड़ा आमन छोटना धान ।

छोटना वागड़ा आमन धानकी पीधे अविकल आशु धानकेही तुल्य होते हैं । इस धानकी पीधे उर्ध्वमें दो तीन हाथसे ज्यादा बड़े नहीं होते । कूर्मीपृष्ठ क्रमनिम्न, समतल, गभोर विलकी रईके अतिरिक्त आड़कन्दी कूड़ो प्रभृति खेतोंमें ये धान उत्पन्न हुआ करते हैं । वर्षाकालमें जिन खेतोंमें आधे हाथसे ज्यादा तथा तीन हाथसे कम जल बड़ा हुआ करता है । उन खेतोंमें ये धान उत्पन्न हो सकते हैं ।

---

\* जलबद्ध रहनेसे कातिक महीनेमें रब्बिअ फसल बोनेके समय विलान खेतका कितनाही अंश पड़तो रह जाता है । उसे जल सूखने पर शीतकालमें जोतते हैं ।



कभी कभी आधे आशु धानके बीज और आधे इस धानके बीज को एकत्र मिलाकर एकही खेतमें बपन करते हैं, उसे “होसुट” कहते हैं। एक बीरके आवादसेही दोनों धानोंके आवादकार्य सम्पादन हुआ करते हैं। होसुट बपनप्रणालीसे आशु धानके पोवाल नष्ट होजाते हैं। क्योंकि भादों महीनेमें आशुधानके सुपक होने पर उसे जड़से काटनेको उपाय न रहनेसे केवल मज्जरीके शीघ्रको ही काट लेना होता है। उसके साथही साथ आमनधानके पत्तों के अग्रभाग कट जाते हैं, किन्तु उससे इसको विशेष कुछ हानि नहीं होती। होसुट बपन प्रणालीका गुण यही है कि, जिस वर्षमें मौसिम अच्छा रहता है, उस सालमें एकही खेतमेंसे आशु (भादवीं) धान जिस परिमाणसे उत्पन्न होता है, आमन धान भी उसही परिमाणसे उत्पन्न हुआ करता है, तब आशुधानके पोवाल जो कि नष्ट होजाते हैं, वे सड़कर मिट्टीके साथ मिलकर खेतकी उत्पादिका शक्तिको बढ़ाते हैं। आमन धानको काटनेके अनन्तर उस होसुटको जमीनमें चना, मटर, मसुरी तथा केशरी प्रभृति चैती फसलोंके बीज भी बोये जा सकते हैं।

छोटना वागड़ा आमनधानके बीज जखिरामें बोकर अन्य खेतमें रोपण करनेसे भी इस धानके द्वारा भली भांति फसल प्राप्त हो सकती है। धानके रोपण करनेका वृत्तान्त पहिलेही लिख आये हैं ; इस लिये फिर लिखनेकी आवश्यकता नहीं समझते।

## वागड़ा आमन वराणधान ।

—wotom—

वागड़ा आमन छोटना धानको अपेक्षा वागड़ा आमन वराण धान \* की प्रकृति अत्यन्त आश्चर्यजनक है । इसे एक प्रकारसे जलका पोधा कह सकते हैं । वूड़ाके जल अथवा वर्षाके जलसे डूबे हुए गह्वरे विलान खेत और चातरेके विलकी रईके सिवाय यह धान अन्य किसी खेतमें उत्पन्न नहीं होता । इसकी जड़की स्थानमें अल्प मात्र जलबद्ध होनेसे उसके द्वारा कुछ उपकार नहीं दिखाई देता कमसे कम दो तीन हाथ जलके ऊपर तिरते न रहनेसे इसका आलस्य दूर नहीं होता ।

जिस खेतमें वर्षाका पानी बद्ध हुआ करता है, उसमेंही इस धानको आवादो हुआ करती है । कहीं कहीं वूड़ा वा बाढ़का पानी भी अन्य स्थानसे आकर उस खेतमें संयुक्त हुआ करता है । जब बहुतही बाढ़ वा वूड़ा होता है, तबही यह धान जलमें डूबता है ; अन्यथा सामान्य वूड़ा वा बाढ़से इस धानका कुछ भी अनिष्ट नहीं हो सकता । यदि बाढ़ वा वूड़ाका पानी धीरे धीरे बढ़ता रहे, तो वागड़ा वराण धान बीस हाथ जलके ऊपर तक बढ़के पहुँचनेमें समर्थ हुआ करता है । देखा गया है कि, साफ जल इस धानके पोधीके ऊपर दो हाथ तक बढ़ जाने पर उसी समय सूरजकी धूप स्पष्ट पाने तथा तूफान प्रभृति न लगनेसे यह धान जलके भीतरही नई पत्तियां फेकता हुआ दो दिनके बीज जलके ऊपर दिखाई देता है ।

---

\* कृष्णकलि, मुक्ताहार, छोटादीघा, बड़ादीघा, धली, पिवराज, केयारशालो, कुल आमला, पूदो, बलमा, लालकन्हाई, हाशवत, कालवयरा इत्यादि ।

जलप्राप्तकी अपेक्षा यह धान किसी प्रकार भी नहीं उत्पन्न होता । जातिविशेष अनुसार यह धान तीन हाथसे लगाय दश बारह हाथ तक ऊँचा हुआ करता है । एक गहरे विलानखेतमें दो हाथ और क्रम क्रमसे मध्यस्थानमें दश हाथ तक जल होता है । किन्तु जगदोश्वरका क्याही आश्चर्य सृष्टिकौशल है कि, एकही खेतमें जहाँ दो हाथ तक जल होता है, उसमें कातिकी-डिपू, तीन हाथवाले जलके स्थानमें देवमुनि, दूधनाड़ि ; चारि हाथवाले जलके स्थानमें कृष्णकलि, पाँच हाथवाले जलके स्थानमें छोटा दीघा, बड़ा दीघा, छः हाथवाले जलके स्थानमें नेती, धलौ ; सात हाथ जलवाले खेतमें पिवराज ; आठ हाथ जलके खेतमें मुक्ताहार केयर-शाल ; नव हाथवाले जलके खेतमें हाशवत और दश हाथ जलवाले खेतमें कालबयरा इत्यादि क्रमसे उत्पन्न हुआ करते हैं । इसके सिवाय जिस स्थानमें आध हाथ वा पीन हाथसे ज्यादा जल नहीं होता, उस खेतमें डिंगाकूड़ी, आधार माणिक, केंको, आयदा प्रभृति धान उत्पन्न हुआ करते हैं । ये सब धान एकही विलान-खेतमें दोमुट बोये जाते हैं । कृषक लोग कहते हैं, खेतमेंसे पृथिवीके बीच एक हजार एक जातिके धान हैं ; यह वचन नितान्त अलौकिक नहीं मालूम होता है । किस खेतमें कौन धान उत्पन्न होता है, उसे यथोचित रीतिसे इस छोटीसी पुस्तकमें नहीं लिखा जा सकता । किन्तु इस पुस्तकमें धानके जो सब स्थूल स्थूल विवरण लिखे गये हैं, उसे पढ़कर कृषिकार लोग कृषिकार्यको करनेमें अवश्यही समर्थ होंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । इस धानको जड़से न काटकर इसके अग्रभागको मञ्जरी समेत दो हाथ अन्दाजसे काट लेना होता है । काटनेके अनन्तर सूरजकी धूपमें सुखाकर पीटके वा बैलोंसे रौंदवाकर घोवालेसे धानको पृथक् कर लेना होता है । भलीभाँति उत्पन्न होनेसे यह धान अन्यान्य धानोंकी अपेक्षा कम नहीं होता ।



## बीरो धान ।

बीरो धान सर्वत्र ही एकरूपके देखे जाते हैं । इसमें छोटा और बड़ा वराण इत्यादि कुछ भी प्रभेद नहीं है । यह धान प्रायः बारहों महीने उत्पन्न हुआ करता है । यह अन्यान्य सब धानोंकी अपेक्षा निम्न है । बीरो-धान देखनेमें कालावर्ण और कुछ श्वेतवर्ण भी मालूम होता है । किन्तु सफेद और काला धान पृथक् जाति मालूम नहीं होता । काला धान किसी कारण विशेषसे कुछ सफेदीयुक्त होजाता है । एकही शेषमें काला सफेद दोनों वर्णके धान देखे जाते हैं ।

बीरो धानके पीधे कुछ चिकने होते हैं ; पर वे दी हाथसे ऊंचे नहीं होते । इसके चावल प्रायः आशुधानके चावलोंकी तरह हुआ करते हैं । किन्तु सुसिद्ध होते नहीं देखा जाता । इसलिये बीरो धानके चावलका भात कुछ खुरा खुरा और कम मीठा होता है । किन्तु इसके समान पैदावार किसी धानकीही नहीं होती । यह धान सचराचर प्रति बीघा खेतमें सोलह मन पर्यन्त उत्पन्न हुआ करता है ।

इस धानकी आवादप्रणाली दो प्रकारकी है । जैसे रोपना और बपन करना ।

## रोपित बीरो धान ।

विलान खेतके भीतर वा गढ़े गड़हीमें जो कीचड़मयी जमीन रहती है, उसीमें रोपुआ बीरो धान उत्पन्न हुआ करता है । इसके सिवाय अन्य किसी खेतमें तथा किसी मिट्टीमें रोपुआ बीरो-धान



उत्पन्न नहीं होता । इसकी रोपणप्रणाली आमन धानकीही तुल्य है । प्रभेदके बीच आमन धानकी अपेक्षा बोरोधाननके पौधे कुछ घने करके रोपण किये जाते हैं । आमन धानकी गुच्छी रोपणके समय एक वा दो धानके पौधेही रोपे जाते हैं । किन्तु बोरो धानकी गुच्छी जो रोपण की जाती हैं, उन प्रत्येकमें चार चार पांच पांच पौधे रखा करते हैं ।

बोरो धानका खेत कीचड़मय रहता है, तो भी बोरो धानकी प्रकृतिगुणसे कीचड़के ऊपर कुछ जल बह रहनेकी आवश्यकता रहती है । इसके बीज तैयार करने तथा खेतीकी रीति आमनधानसे सम्पूर्ण स्वतन्त्र है ; वह यथा क्रमसे नीचे लिखी जाती है ।

### बोरोधाननके बीजसे पौधे तैयार करनेका

#### विशेष विवरण ।

एक घटके बीच इस बोरो धानके बीजको भरकर उसे जलसे परिपूरित करके रखना होता है । । आठ पहरके बाद उस घटके मुखपर वस्त्र आदिसे ढांक कर उसमेंका सम्पूर्ण जल बाहिर निकाल देना होता है । उसके अनन्तर किसी स्थानमें कितनेही सूखे तृण फूस वा धानके पोवाल बिछाकर उसके ऊपर केलेके पत्ते बिछाते हैं । और उन पत्तोंके ऊपर तीन बुरल ऊंचे परिमाणसे उस घटमें स्थित बोरोधाननके बीजोंको फैला देते हैं । फिर उन बीजोंको ऊपरसे केलाके पत्तोंसे ढांककर उसके ऊपर टाट प्रभृतिसे दुबारा ढांकते हैं । ऐसा करनेसे चार पांच रोजके बीच अंकुर निकल आते हैं । किन्तु प्रतिदिन बीजोंके ऊपरसे आच्छादन उठाकर थोड़ा थोड़ा जलसे सींचना होता है । जल सींचनेके बाद फिर पहिलेकी तरह ढांक देना उचित है ।

उक्त रूपकी प्रक्रियासे बीजोंके अंकुरोंके क्रमसे देढ़ दो इंच लम्बे होजाने पर उन्हें “तुलामुखी” कहते हैं। तुलामुखी बीज परस्पर एक दूसरे बीजकी सीरीसे संयोजित हुआ करते हैं। सावधानता सहित अंकुरोंके सहित बीजोंको एकत्रित सीरीसे पृथक् पृथक् करना होता है ; उसके अनन्तर जलाशय (तालाव प्रभृति) के निकट कीचड़-मय खेतमें बपन करने पर चार पांच रोजके अनन्तर पौधे बाहिर होने लगते हैं। किन्तु जबतक धानके पौधे चार पांच अंगुल ऊँचे न उठें। तबतक बीजोंके तले जल रहने देना उचित नहीं है। क्रमसे जब इसके पौधे कुछ ऊँचे तथा पत्तेयुक्त हो जावें, तब पौधोंके मूल-स्थानकी सर्वदा जलसे पूर्ण कर देना होता है।

किसी किसी विलान खेतके दोनों किनारे बहुत सी तरङ्ग वर्तमान रहती देखी जाती हैं। बीरो धानके बीजताल उन्हीं सब तरङ्गों के निकटमेंही मनोनीत हुआ करते हैं। तरङ्गके हिस्सोलके साथ इस धानके बीजतालको मिला देनेसे वह बीजताल सर्वदा जलसे पूर्ण रह सकता है ; और बेर बेर जलके परिवर्तित होनेसे नये जलसे बीजोंके पौधे खूब तेजस्वी होजाते हैं। तरङ्गके जलयुक्त बीजतालमें बीरोधानके पौधे बहुत जल्द उत्पन्न होकर यथेच्छा बढ़ते हैं ; किन्तु ऐसा सुविधा सर्वदा उपस्थित नहीं होता।

जिस स्थानमें तरङ्गका अभाव होता है, वहाँ ऐसे कौशलसे बीज-ताल तैयार किया जाता है कि, समीपवर्ती जलाशय (तालाव प्रभृति) का जल आकर उसे पूरण कर रखता है। वह कौशल बहुत सहज है। जिस स्थानमें बीजताल तैयार करना हो, उस जगहकी मिट्टी उठाकर निकटस्थ जलसीमासे उस स्थानको कुछ नीचा कर देवे और जलकी ओर एक बांधको बांध रखे। प्रयोजनके मुताबिक बांधको काट देनेसे स्वयंही जल आके उस बीजतालको परिपूर्ण करता है।

जिस स्थानमें तरङ्गका अभाव और जलाशयके निकटवर्ती बांधका भी अभाव होता है, वहां सिंचाई करके बीजतालको जलसे भरना होता है ; बीजतालमें जल बद्ध न रहनेसे बोरो धानके पौधे अच्छी तरह उत्पन्न नहीं होते ।

जब इसके पौधे आध हाथ वा पौन हाथ ऊंचे होजाते हैं । तब उन्हें खेतमें रोपण कर सकते हैं । रोपण करनेका विवरण पहिले कह आये हैं । बोरोधानके बीज जखिरामें प्रति बीघेके लिये छः सेर परिमाणसे वपन किये जाते हैं । कातिक, अगहन और पौष तीन महीनेके भीतर समय समय पर बोरोधानके बीज जखिरामें डाले जा सकते हैं । क्रमसे पौष, माघ और फाल्गुन महीनेमें बोरोधानके पौधोंको रोपण करना होता है । पौष महीनेमें रोपण किया हुआ बोरोधान चैतमें, माघ महीनेका रोपण किया हुआ वैशाखमें और फाल्गुन महीनेका रोपण किया हुआ बोरोधान जेठ महीनेमें पक जाता है । प्रदेश विशेषमें चैत महीने तक बोरोधान रोपण हुआ करता है ।

### बोरोधानके आबाद करनेके रीति ।

पङ्किल (कीचड़मयी) भूमिमें जब अल्प परिमाण जल रहता है, उसी समय पातकुदाल (फावड़ी) से उस जमीन वा खेतकी कीचड़-युक्त मिट्टीके ऊपरी तहका कुछ अंश खोदकर उसी खेतमें उलट पुलट देना होता है । अथवा कीचड़ ज्यादा न रहे तो, हलसे भी जोत सकते हैं । सात आठ दिनके बाद फावड़ीसे खोदकर उलटी हुई मिट्टी जब जलके साथ भलीभांति गल जाती है, तब पदतलसे मलने पर खेत कीचड़मय होजाता है । अनन्तर ऊंचे नीचे स्थानको



हाथसे समान कर लेना होता है। बोरोधानको खेतमें हेंगी और विदे (लाङ्गलो) नहीं चलाई जाते। कहीं किसी खेतके सिवाय जल भी बोरोधानके प्रत्येक खेतमें नहीं चल सकते। बोरोधानको आवादी हाथ पेरसेही हुआ करती है।

इस बोरोधानकी फसल अधिक परिमाण होने पर भी कृषिकार लोग पूर्वोक्त असुविधाके लिये अधिक परिमाणसे इसे आवाद करनेमें समर्थ नहीं होते।

उपरोक्त रीतिसे खेत दुरुस्त होजाने पर उसमें बोरोधानकी पौधे रोपण किये जाते हैं। किन्तु पौधोंको गुच्छी रोपनेके एक सप्ताह बाद खेतका कीचड़ फूल उठता है। उससे धानकी गुच्छियोंके लगनेमें व्याघात होता है, ऐसे स्थलमें फूले हुए कीचड़को हाथसे हिलाकर, बैठा देना होता है और प्रत्येक गुच्छियोंको जड़ोंको उसके साथही साथ हाथके जरिये धीरे धीरे थोड़ा कीचड़में दाब देना होता है। ऐसा होलेसे धानकी गुच्छियां लगकर क्रमसे सतेज होजाती हैं। उसके अनन्तर खेतमें तृण प्रभृति उत्पन्न होनेपर उन्हें ज्यादा न बढ़ने दे, बल्कि हाथसे खींचकर उखाड़ देना उचित है। क्षेत्र विशेषमें दो बेर तृणोंको उखाड़ देना होता है।

पहिले कह आये हैं कि, खेतमें जल वृद्ध न रहनेसे केवल कीचड़मय खेतमें बोरो धान उत्पन्न नहीं होते। यह जल दो उपायसे प्राप्त होता है। जिस पङ्क्ति भूमिमें छोटे छोटे उत्स (तरङ्ग) का होना सम्भव रहता है, वहां उस तरङ्गके जलसेही बोरोधानके खेत परिपूरित रह सकते हैं। ऐसे स्थलमें कृषकोंके जल सींचनेका खर्च बच जाता है। किन्तु जहां इस प्रकार जलका सुविधा नहीं रहता, वहां सिंचाई करके खेतको जलसे भरना होता है।



## बपन किये हुए बीरोधान ।

रोपित बीरोधानके बीज आशुधानकी रीति अनुसार अल्प गहरे कूँड़ोक्षेत्रमें बपन किये जाते हैं अथवा आमनधानकी भांति रोपण भी किये जा सकते हैं । इन दोनों प्रकारसेही भलीभांति बीरोधान उत्पन्न होसकते हैं । बीये हुए बीरोधानकी आवादप्रणाली आशुधानकी भांति सुसम्पन्न हो सकती है । इसके बीजबपन करनेसे प्रति बीधामें सोलह सेर परिमाणसे और रोपण करनेसे चार सेर परिमाणसे बीज लगते हैं । किन्तु बीरोधानके खेतमें जल वृद्ध रहनेकी आवश्यकता रहती है ।

बीरोधानकी और एक आश्चर्य्य प्रकृति यह है कि, जो सब बीरोधान खेतमेंसे चैत वैशाख महीनेमें काटे जाते हैं, उनके मूलसे फिर शाखा प्रशाखा निकला करती हैं, जिन्हें धानकी पेड़ो कहते हैं । यत्नपूर्वक उनकी रक्षाकर सकनेसे उनके द्वारा प्रति बीधा खेतमें दो अढ़ाई मन परिमाणसे धानकी प्राप्ति ही सकती है ।

बीरोधानकी आशुधानकी भांति काटकर उनके पोवाल (विचाल) से बीजको पृथक् कर लेना होता है । तथा आमन धानकी भांती पीटकर पोवाल (विचाली)से बीरोधानके बीजको पृथक् कर ले सकते हैं ।

१९१२

—०—

## जलि धान ।

—०—

जलि खनाम प्रसिद्ध स्वतन्त्र एक जातीय धान नहीं है । यह आशुधानकाही रूपान्तर मात्र है । पङ्क्ति भूमि कुछ ऊँची होनेसे अपेक्षाकृत कठिन होजाती है । उसके एक तरफ जलाशय और

दूसरी ओर ऊंची भूमि रहती है । जलाशयके निकट रहनेसे वर्षा उत्तापको अधिक प्रखरता नहीं होती ; और ऐसे खेत सर्वदा जलसे आद्र रहते हैं । ऐसे खेतोंमें फाल्गुन चैत महीनेमें छोटना आशु-धानके बीज बोनेसे आस “यो” में बावली (अंकुर) उत्पन्न हुआ करते हैं । उसे जलिधान कहते हैं । चिर जलाद्र मृत्तिकामें उत्पन्न होनेसे इसका नाम जलिधान हुआ है । जलिधानके बीज प्रति बीघामें बारह सेर परिमाणके सुताविक वपन किये जाते हैं ।

जलिधानकी आवाद-प्रणाली प्राय आशुधानकेही तुल्य है । प्रभेदके बोच उसमें विदे (लाङ्गली) चलानेके लिये यथोपयुक्त “यो” उपस्थित नहीं होता । अधिक करके ऐसी मिट्टीमें विदे चलानेसे धानके सम्बन्धमें अनिष्ट होनेकी सम्भावना रहती है । इस लिये जलो-धानकी आवाद-प्रणाली हल हेंगा और निरानीसेही सम्पन्न करनी होती है ।

चिर-जलाद्र मिट्टीमें सर्वदाही कच्चापन दोष वर्तमान रहता है । कच्ची मिट्टीमें हल चलानेसे वह (मिट्टी) भलीभांति परिचालित नहीं होती । ऐसी मिट्टीमें उत्पन्न कदर्य तृणपुष्प प्रभृति भी परिशुष्क नहीं होते । इसी लिये पातकोदाल वा फावड़ोंसे उस खेतकी आद्र मिट्टीके ऊपरी तहकी मिट्टीको उलट देते हैं । वर्षाका जल वा बूड़ाका पानी आनेके पहिले आषाढ़ सावन महीनेमेंही ऐसे खेतके ऊपरी तहकी मिट्टीको फावड़ोंसे उलट देना होता है । कभी कभी पौष और माघमहीनेमें भी ऐसे खेतोंकी मिट्टीको फावड़ों द्वारा उलटना होता है । जलके बीच ऐसे खेतकी कीचड़मयी मिट्टीको फावड़ोंके द्वारा उलट देनेसे उसमेंके तृणसमूह सड़के खाद (सार) रूपसे परिणत होजाते हैं । इस प्रकारसे फावड़ोंके द्वारा मिट्टी उलटने पर जलिधानके खेतमें पश्चात् “यो” उपस्थित होने पर चार पांच वेर हलसे जोत देनेसेही मिट्टी परिचालित हो जाती

है । अनन्तर उसमें जलिधानके बीज बोने पर आश “यो” से धानके पौधे बाहिर होकर रस और उत्तापकी सहायसे बहुत उत्कृष्ट धान उत्पन्न हुआ करता है ।

ऊंचे अंशवाले जलीधानके खेत कभी कभी परिशुष्क होते हुए भी देखे जाते हैं । वैसे स्थलमें धानके बीज बपन करनेमें काकड़ी हुआ करती है । एक बेर वृष्टि बिना हुए काकड़ी किये हुए धानसे अंकुर बाहिर नहीं होते । वृष्टिका अभाव होनेसे खेतमें जल सींचना होता है । इसका नाम “काटजलि” है ।

‘बोरोधानकी रीति अनुसार आशुधानके बीजसे पौधे उत्पन्न करके किसी पक्किल भूमिमें जो जलिधान रोपन किया जाता है, उसे वारजलि धान कहते । वारजलि धानको माघ महीनेके शेषमें वा फाल्गुन महीनेके प्रथम पक्षमें जखिरामें वपन करके फाल्गुन महीनेके शेष वा चैत महीनेके प्रथम पक्षमें रोपण करना होता है ।

जलिधान जेठ आषाढ़ महीनेमें पका जाता है । जलिधान पकनेके समय प्राय वर्षाके पानीसे वा बूड़ा बाढ़से जलमें डूब जाता है । इसलिये जहांतक हो सके, इस धानको अग्रिम बोने तथा रोपण करनेसे विशेष फाइदा होता है । किन्तु यह विचार करना होगा, कि बोरोधानको भांति जलिधान शीतऋतुमें उत्पन्न नहीं होता । क्योंकि जलिधानके पौधे बसन्त ऋतुकी वायु न पानेसे विशेष तेजस्वी नहीं होते हैं ।

—०—

### त्वरा आशुधान ।

त्वरा आशुधान पूर्वोक्त चार प्रकारके धानके अन्तर्भूत नहीं है । विशेष करके आशुधानके सहित उसकी कुछ सीसादृश्य नहीं



है । वल्कि यह अनेक अंशमें आमन धानके तुल्य है । त्वरा आशु-और राढ़ी आमनधान देखनेमें प्राय एक समान हैं और उनको आवादीके नियम भी परस्पर अधिक विभिन्न नहीं हैं । जिन जिन खेतोंमें छोटनाराढ़ी आमनधान उत्पन्न होता है, उन खेतोंमें त्वरा-आशुधान भी उत्पन्न हो सकता है ।

इसके बोनेकी रीति प्रचलित नहीं है । कारण यह है कि, त्वरा आशुधानमें कड़ान (लेउलगना) जोतार्ह नहीं हो सकती ; और वर्षा-कालमें कूड़ी खेतके बीच विदे (लाङ्गली) चलानेका भी अच्छा सुविधा नहीं होता । इसी प्रकार कई एक कारणोंसे बपन किये हुए खेतमें त्वरा आशुधानके पीधे भलीभांति तेजस्वी नहीं हो सकते । पहिले वैशाखके शेष पक्षसे लगाय जेठ महीने पर्यन्त इसके बीज जखिरामें डाले जाते हैं, और जेठ महीनेके शेष पक्षसे लगाय आधे आषाढ़ तक इसके पीधे रोपण किये जाते हैं । पांच सेरसे लगाय आठ सेर पर्यन्त इसके बीजके पीधे एक बीघा खेतमें रोपण किये जाते हैं । रोपण करनेकी रीति आमनधानके प्रकरणमें देखिये ।

त्वरा-आशुधान मुख्य करके तीन ओणीमें विभक्त हैं । जैसे भादवीं, कुआरी और कातिकी धान । जो ही, इन्हें आशुधानकीही विशेष जाति समझना चाहिये ।

दार्जिलिङ्ग तथा बिहार प्रभृति देशोंमें जो इस जातिके अन्तर्गत सफेद और काले दो प्रकारके धान होते हैं, उन्हें वङ्गके निवासी भादवीं धान कहते हैं । साठी नाम धान जो कि साठ दिनमेंही उत्पन्न होके पक जाता है, वह इसी त्वरा आशुधानकीही एक जाति विशेष है । पकने पर त्वरा आशुधानको, काटकर सूरजकी धूपमें सुखाकर बैलोंसे रौदवा कर पोवाल (विचाली) से धानको पृथक् कर लेते हैं ।

बैलोंसे रौदवानेसे वा पीटनेसे धानके पेड़ोंका धूर्ण वा भूसा नहीं



हीता ; वे पेड़ ज्योंके त्यों ही रह जाते हैं ; उन्हें पोवाल कहते हैं । धान पीटकर पृथक् कर लेनेके अनन्तर पोवालको उठाकर एक किनारे रखना होता है और धानका ढेर मध्यस्थलमें जमा करना होता है । इन धानके बीजोंमें बहुतसी धूल वा कङ्कर प्रभृति मिश्रित रहते हैं । जिन्हें टोकरी प्रभृतिमें उठाकर सिरतक हाथ उठाकर धीरे धीरे नीचे जमीनमें थोड़ा थोड़ा गिराते जाते हैं, ऐसा करनेसे वायुके झकोरेसे धूल प्रभृति उड़कर पृथक् हो जाती है और धानका ढेर साफ स्वच्छ होजाता है ।

सूखे हुए वा नरम दोनों अवस्थामेंही धानको बैलोंसे रौंदवाकर वा पीटकर पृथक् कर सकते हैं । तब कच्चे पोवालके बीच कितने ही धानके बीज रह जाते हैं । पीछे पोवालको सुखाकर धानके बीजोंको भाड़ लेना होता है ।

—०—

## पोस्ता वा अफ्यून ।

भारतवर्षमें प्रचुर परिमाणसे अफ्यून ( अफीम ) उत्पन्न हुआ करती है । पोस्ता नाम एक प्रकारके वृक्षके फलके लासासे अफीम तैयार होती है । “तुरष्ककी” अफीम सबसे बढ़िया हुआ करती है ।

पोस्ता वा अफीमके पेड़ सचराचर दो ओणोंमें विभक्त हैं । एक प्रकार पोस्ताके पेड़ोंके फूल लाल और बीज काले होते हैं । अन्य एकप्रकारके पोस्ताके पौधोंके फूल और बीज सफेद होते हैं । भारत-वर्षमें सफेद बीजवाले पोस्ताकी बपनप्रणाली अधिक प्रचलित है । किन्तु भारतवर्षमें अफीमकी व्यवसाय अन्य कोई मनुष्य नहीं कर सकता, क्योंकि गवर्मेण्टका यह एकचटिया व्यवसाय है, इससे गवर्मेण्टको बहुत लाभ हुआ करता है । पटना तथा काशी प्रभृति

स्थानोंमें अधिक परिमाणसे पोस्ता (अफीम) की खेती हुआ करती है । गाजोपुरमें भी इसकी खेती होती है । इन स्थानोंके सिवाय अन्य स्थानोंमें भी बहुतेरे लोग इसकी अधिकताके सहित खेती किया करते हैं । भारतवर्षमें उत्पन्न हुई अफीम चीन और ब्रह्माके मुल्कमें ज्यादा परिमाणसे रफ्तानी होती है । अफीमके जरिये गवर्मेण्टको प्रतिवर्ष ४ करोड़ ३४ लाख २४ हजार ५ सौ रुपयेसे भी ज्यादा लाभ हुआ करता है ।

भलका और ब्रह्माके देशमें कच्ची अफीमको भी पका कर चण्डू तैयार करके व्यवहार किया जाता है । भारतवर्षीय लोगोंमें जो लोग अफीम सेवन करते हैं, वे कुछ ज्यादा उमर होने पर अफीम व्यवहार किया करते हैं । जो लोग अधिक परिमाणसे मद्य पीया करते हैं, उनके बीच भी बहुतेरे लोग मद्य त्याग करनेके लिये अफीम सेवन किया करते हैं । कहते हैं कि, अफीम खानेवाले बहुतेरे लोग दीर्घजीवी होते हैं । अफीमकी मौताद (मात्रा) बहुतही भयानक वस्तु है । अफीम खानेका समय बीतने पर जमुहाई (तन्द्रा) आने लगती है ; शरीर अवसन्न बोध होता है । आंखोंके सामने धुन्धकार दिखाई देता है ; जबतक अफीम न खाया जाय, तबतक कुछ अच्छा नहीं लगता । बहुतेरे दुष्ट लोग इसी लिये अफीमकी गोली पका कर एक डिब्बियामें भर कर निर्दिष्ट स्थानमें रख देते हैं, जिससे किसी तरह भूल न होजाय । किसी स्थानमें जाना होता है, तो उसी डिब्बियाको सङ्ग लेकर जाते हैं ।

विश्वदन्ती प्रसिद्ध है कि, किसी मनुष्यने अफीमके मौतादकी परीक्षा करनेके लिये एक गधेके बच्चेको प्रतिदिन अफीम खिलानेका अभ्यास किया था । गधा क्रमसे बड़ा हुआ, वह स्वयं मैदानमें घरके और सांभके वखत अफीम खानेका समय उपस्थित होने पर उक्त मनुष्यके छिड़कीके पास आके चिल्लाता था । वह मनुष्य भी प्रतिदिन

उसी समय गधेको अफीम खिला देता था, वह यदि कहीं किसी कार्यको जाता, तो घरके अन्य मनुष्यको इस कार्यका भार दे देता था। एकवेर वह किसी कार्यके लिये अन्य स्थानमें गया, जानेके समय अन्य किसीको उस गधेको अफीम खिलानेका भार भूलकर नहीं सौंपा। अनन्तर गधा उसी निर्दिष्ट समय पर आके चित्ताने लगा; किन्तु अफीम न पानेसे क्रमसे अवसन्न होकर उसी स्थानमें गिरा और सो गया। दो रोजके बाद जब वह मनुष्य लौटकर आया, तब उस गधेकी बात स्मरण होनेसे देखा कि, गधा खिड़कीके पास तालाबके किनारे मृतककी भांति सोया पड़ा है। ऐसा देखकर उसने बहुत दुःखित और लज्जित होकर उसी समय अफीम लाकर उस गधेको खिला दिया। कुछ देरके बाद गधा अफीमके मीतादसे सतेज होकर आनन्दसे चिल्लार करते हुए मैदानकी ओर चरनेको चला गया।

जिस खेतमें अफीमकी खेती करनी होती है, उसे किसान-लोग वर्षाकालमें भलीभांति खाद डालकर एक वेर जोत रखते हैं। अनन्तर कुआर महीनेके शेष पक्षमें फिर जोतकर हिंगा चलाकर खेतकी मिट्टीको समतल करके बीज छोट देते हैं। बीज छोटनेके बाद फिर एक वेर जोतना होता है। उसके बाद, जल सींचनेके सुविधाके लिये ६ वा ७ हाथकी फासिले पर एक एक क्यारी बना देते हैं। क्यारियोंके दोनों ओर नाली बरहा भी तैयार कर रखते हैं। १५।१६ दिनके बीच पोस्ताके बीज अंकुरित हो जाते हैं। जब इसके पौधे ५।७ अंगुल बड़े होजाते हैं, तब कृषिकार लोग उन पौधोंके मूल (जड़) की मिट्टीको निराकर पोली कर देते हैं; और खेतमें उत्पन्न हुई घास मोथा प्रभृति अच्छी-तरह निकाल कर खेतसे बाहिर कर देते हैं। माघ महीनेमें इसके पौधोंमें फूल उत्पन्न हुआ करते हैं। इसी समय फूलोंके दल पौधोंके नीचे जब झड़कर गिर जाते हैं, तब उन्हें कृषक लोग



बटोर लाते हैं और मिट्टीके खपड़ीमें कुछ गरम करके रोट्टी \* बनाकर रखते हैं। फूल फूलनेके प्राय दो हफ्तेके बीच पोस्ताके ढोंड़ बड़े होजाते हैं। तब कृषाणलोग सांमको वा खूब सबेरे उठ कर उन ढोंड़ोंको चीतरफा लम्बाकृति चीरा करते हैं। चीरनेके बाद उन ढोंड़ोंमेंसे एक प्रकार सफेद दूधकी भांति लासा बाहिर हुआ करता है ; उसी लासासेही अफीम तैयार हुआ करती है। सूर्य उदय होनेके अनन्तर अर्थात् धूप होने पर पोस्ताके ढोंड़ोंको चीरनेसे उनके भीतरसे लासा बाहिर नहीं होता, ज्यादा वर्षा होनेसे भी पोस्ताके ढोंड़ोंका लासा धी उठता है। ढोंड़ चीरनेके बाद दूसरे रोज सबेरके समय कृषिकार लोग “सितुही” से उक्त लासाको निकाल कर करासीमें † रख देते हैं।

सब लासा पोस्ताके ढोंड़ोंमेंसे निकालनेके बाद कृषिकार लोग उसे एक कांसेकी थालीमें रखते हैं। कुछ देरके बाद उस लासामेंसे से जल बाहिर हो आता है। उस जलको बाहिर न करनेसे अफीम खराब होजाती है। प्रतिदिन उस लासाको एक बेर हिला देना होता है ; इस प्रकार हिलाते हिलाते लासा गाढ़ा होजाता है, इस अफीमके लासाको गाढ़ा होनेमें प्राय एक महीना समय लगता है। कभी कभी एक महीनेसे भी ज्यादा समय लगता है। जब वह अफीम गाढ़ी होजाती है, तब उसे मिट्टीके वर्तनमें रख देते हैं। जब इस प्रकारसे अफीम तैयार होजाती है, तब कृषिकार लोग उसे सरकारी अर्थात् गवर्मेण्टकी गुदाममें लाया करते हैं, क्योंकि पहिले कह आये हैं कि, गवर्मेण्टकी यह

---

\* रोट्टी—खानेकी नहीं है, इस रोट्टीसे कृषिकार लोग अफीमको बांधा करते हैं।

† करासी यह सरावकी भांति एक प्रकार मिट्टीका पात्र है।



एकचेटिया व्यवसाय है । सरकारी गुदाममें अफीम तीली जाती है, तीलनेके बाद मजदूर लोग एक चौबच्चा में अफीम जमा कर रखते हैं । अनन्तर उसे वारकोस में डाल कर गरमा कर डली बांधा करते हैं । उस डलीके ऊपर अफीमकी रोटो लपेट कर लेई \* लगा देते हैं । उसके अनन्तर इन सब डलियोंको टोनके पात्र में रख देते हैं । उन टोन पात्रोंका नाम "तगर" है । तगरोंको रैकके ऊपर उठा रखते हैं ; और वहां पर ही लड़के लोग उसे हिलाया डुलाया करते हैं, इसी प्रकार अफीम धीरे धीरे हवा लगनेसे सूख जाती है ।

बहुतेरे लोग पोस्ताके बीजके बड़े तथा अन्यान्य श्राव्य बनाकर खाया करते हैं । यथार्थमें पोस्ताके बीजोंका बड़ा बहुतही उपादेय सामग्री है । पहली मटर मूंग अथवा उड़दको दाल भिगा रखते हैं, उसके साथ पोस्ताके दानोंको सिलपर पीस कर घृतके संयोगसे बड़ा तैयार करनेसे खानेमें उत्तम होता है ।

अफीम मादकतायुक्त, मस्तिष्कको उत्तेजक, धारक, पीड़ा-निवारक, निद्राकारक, स्वेदजनक ; स्पर्शहारक तथा पर्याय-निवारक है । बालक और स्त्रियोंकी अफीमघटित औषध देना उचित नहीं है, स्त्रियोंको बल्कि खूब सावधानीसे अफीमघटित औषध दिये जा सकते हैं, किन्तु बालकोंकी कोमल धातुमें अफीम-घटित औषध प्रयोग करना एकबारगी अनुचित है ।

अफीमके प्रधान बौर्यका नाम मर्फिया है, और इसीलिये अफीम खानेसे नसा हुआ करता है ।

जो ही यद्यपि यह अफीम गवर्मेण्टकी एकचेटिया व्यवसाय है, तथापि इसकी आवादीमें कृषकोंकी नुकसानी नहीं होती, बल्कि

\* एक प्रकारको लसदार लेई, जोकि निकृष्ट अफीमसे तैयार हुआ करती है ।

भलीभांति इसको खेतो करनेसे कृषकोंको लाभही होनेकी सम्भावना है ।

—०—

### शण ( सनई ) ।

शण वा सनईकी खेती बङ्गाल बिहार, पश्चिमोत्तर प्रभृति देशोंमें अधिक परिमाणसे हुआ करती है, जेठ महीनेसे लगाय आषाढ़ महीनेके प्रथम पक्षतक शण वा सनईके बीज खेतोंमें बोये जाते हैं । अर्थात् जलकी वर्षा आरम्भ होतेही खेतको दो एक बेर जोतकर सनईके बीजोंको छीट देना होता है । छीटनेके अनन्तर इसकी किसी प्रकारकी विशेष परिचर्या करनेकी आवश्यकता नहीं होती, इसके पीछे वर्षाके पानीसे स्वयंही बढ़ते हैं । अढ़ाई तीन महीनेके बीच सनई तैयार होजाती है अर्थात् इतने समयके बीच इसके पीछे ४।५ हाथ पर्यन्त ऊँचे हुआ करते हैं । अनन्तर भादों महीनेके शेष पक्षमें सनईके पेड़ोंको काट कर उसे एक रोज पड़ी रहने देते हैं, जिससे कि, उसके पेड़ोंमेंकी पत्तियां भाड़ जाती हैं । और सनईके अग्रभागको काटकर उसके छोटे छोटे टुकड़े करके गवादि पशुओंको खिला देते हैं, अनन्तर इसके पेड़ोंको आंटी बांधकर जलसे भरे हुए गड़हे गड़ही प्रभृतिमें गाड़ देते हैं । इसकी आंटीके मूलांशकी तरफ गढ़ोंमेंके कोड़ड़ चढ़ा कर पानीके बीच गाड़ देते हैं । तीन चार रोजमें जब शणके ऊपरका छिलका फूल जाता है, तब सनईको जलमें धोना होता है । हल जोतनेवाले किसानही सनईको जलमें धोते हैं । धोने पर सनईके ऊपरका छिलका जलमें बह जाता है और शण तथा सनईका डंटा सफेद रङ्गका साफ स्वच्छ दिखाई देता है । इसके अनन्तर धोई

हुई सनईकी आंटीको जलके बाहिर किनारे पर रख देते हैं । जब सनईमेंका पानी कुछ सूख जाता है, तब उसे किसान तथा मजदूर लोग हाथके जरिये शणसे सनईकी लकड़ी निकाल लेते हैं । और शणकी आंटी बांधकर सूरजकी धूप अथवा वायुके सहारे सुखाकर रख देते हैं । शण बहुतही काम आता है, इससे विविध प्रकारके रस्से रसरी तैयार होते हैं ; तथा इसके जरिये अनेक प्रकारके कीमती बस्तादि भी तैयार हुआ करते हैं । इसी लिये भारत-वर्षसे प्रचुर परिमाणसे शण विलायत तथा अन्यान्य देशोंमें रफ्तानी हुआ करता है ।

सनई दो प्रकारकी होती है, एक देशी और दूसरी पूर्वी । देशी सनईके पेड़ कुछ छोटे और पतले हुआ करते हैं ; लेकिन इसका शण बहुत मजबूत और मिहीन तथा मुलायम हुआ करता है । पूर्वी सनईके बीजसे जो पीष उत्पन्न होते हैं, उनके पेड़ कुछ ज्यादा बड़े और मोटे हुआ करते हैं ; इसका शण कुछ खरखरा तथा मोटा होता है और देशी सनईके शणकी अपेक्षा कुछ कम मजबूत हुआ करता है । परन्तु इस सनईमें शण कुछ ज्यादा होता है । इसी हेतु कृषिकार लोग अधिक परिमाणसे इसकी खेती किया करते हैं । बीज संग्रह करनेके लिये देशी सनईका बीज तो भादोंके शेषमें वा आश्विनके प्रथम पक्षमें काटनेके समयमेंही पक जाने पर संग्रह करके रक्खे जाते हैं । पर पूर्वी सनई जो बीज संग्रह करनेके लिये रक्खी जाती है, उसके बीज अगहनके शेष वा पीष महीने तक पकते हैं ।

कलकत्तेमें सनईका शण बाजारमें किसी किसी समय छः सात अथवा आठ रुपये मन बिका करता है । एक बीघा खेतमें जो भलीभांति सनई उत्पन्न हो तो, उसमें कमसे कम यदि छः मन भी शण हो, और वह छः रुपये मनके हिसाबसे भी बिके, तो प्रति



बीघे खेतके सनईके शणसे ३६) छत्तीस रुपयेकी आमदनी हुआ करती है।

सनईकी खेतोमें विशेष परिश्रम और परिचर्याकी आवश्यकता भी नहीं है। किन्तु जिन स्थानोंमें वर्षाका अभाव होता है, वहां सनईको खेती नहीं हो सकती। वर्षाकालके बीचमेंही सनईकी खेती होजाती है। अतएव सनईकी खेतीसे किसानोंको अधिक परिमाणसे धनप्राप्तिकी सम्भावना है। इसलिये इसको खेतो करनेमें बुद्धिमान कृषिकारोंको कदापि उदाशील न रहना चाहिये।

—०—

### कोदो ।

—०—

कोदोकी मञ्जरी बाहिर नहीं होती- सींकाके बीचमेंही रहके पक जाती है। इसके बीज पांच पाव परिमाणसे प्रति बीघा खेतमें छीटे जाते हैं। वर्षाकालके आरम्भमेंही इसके बीजोंको एक दो बेर जोतकर छीट देना चाहता है। और वर्षाकालमेंही इसकी फसल अढ़ाई तीन महीनेमें होजाती है। जो खेत न बहुत ऊंचा रहे और न ज्यादा ऊंचा हो, वैसेही जमीनमें कोदो होती है। कोदो को खेतोंके लिये किसी प्रकारके विशेष परिचर्याकी आवश्यकता नहीं रहती। इसके बीजको भूसी रहित करके चावल निकाल लेते हैं, भूसीयुक्त कोदो पचासों वर्षतक खराब नहीं होती।

—०—

### पाट वा पटुआ ।

—०—

जगत्में ऐसा कोन विद्वान् मनुष्य है, जो पाट वा पटुआकी नहीं जानता? पाट वा पटुआके द्वारा अनेक कार्य होते हैं। इस पाट\*वा



पटुआसे विविध प्रकारके रस्से रसरी, टाट, धैले तथा बस्तादि बनाये जाते हैं। इसलिये पटुआकी खेती करनेसे कृषिकारोंको अधिक लाभ होनेकी सम्भावना है।

जिस प्रकार शण वा सनईके बीज बोनेकी रीति लिख आये हैं, पटुआके बीजके बोनेकी रीति भी ठीक उसी प्रकार जानो वैशाखके शेष पक्षसे लगाय सम्पूर्ण जेठ तथा कहीं कहीं आषाढ़ महीनेके प्रथम पक्षतक पटुआके बीज खेतोंमें बोये जाते हैं। जलकी वर्षा होनेसे जब खेतकी मिट्टी जलसे भोग जाती है, तब उस खेतकी दो तीन बेर भलीभांति जोतकर उसमें पटुआके बीज छीट देना होता है। पटुआ दो प्रकारके होते हैं, एक देशी दूसरा पूर्वी। देशी पटुआके बीज कुछ बड़े तथा मोटे होते हैं और पूर्वी पटुआके बीज पतले छोटे तथा मिहीन हुआ करते हैं। देशी पटुआके बीज प्रति बीघामें ७५ सेर और पूर्वी पटुआके बीज ४ चार सेर परिमाणसे बोये जाते हैं। देशी पटुआकी अपेक्षा पूर्वी शिवराजगंजी पटुआ के पाटकी लोग अधिक पसन्द करते हैं। बीज बोनेके अनन्तर ५७ रोजके बीच पटुआके बीजसे अंकुर बाहिर होते हैं। अंकुर बाहिर होने पर इसके पौधे सनईके पौधोंकी भांति क्रमसे बढ़ा करते हैं; पटुआके खेतमें वर्षाका पानी इकट्ठा होनेसे इसके पौधे नष्ट होजाते हैं, इसलिये इसे ऐसे खेतमें बोना चाहिये कि, जिसमें वर्षाका पानी एकत्रि न होता हो। पटुआके खेतमें जो सब तृण घास प्रभृति उत्पन्न हों, उन्हें निरानी प्रभृतिके सहारे खेतमेंसे निकाल कर पृथक् कर देनेसे विशेष लाभको सम्भावना रहती है। इसके अनन्तर फिर पटुआकी खेतीमें विशेष परिचर्याकी आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि सनईकी भांति इसके पौधे भी वर्षाकालके भीतर ही तैयार होजाते हैं। भादो महीनेके शेष पक्षसे लगाय आश्विन महीने तक पटुआके पेड़ोंको काटनेका समय है। पटुआके पेड़ोंकी

काटकर उन्हें एकाध रज योंही पड़े रहने देते हैं, जिससे कि उनकी पत्तियां स्वयं धूप और वायुके लगनेसे भाड़ जावें। अनन्तर पटुआके पेड़ोंके अग्रभागमें जो छोटे छोटे फल रहते हैं, उन्हें भी पेड़ोंमेंसे पृथक् कर देते हैं। इस प्रकारसे पत्तियां तथा फलोंको और छोटी छोटी शाखाओंके काट देने पर केवल सीधे साधे पटुआके पेड़ही रह जाते हैं। अनन्तर कृषिकार लोग उन सब पेड़ोंको एकत्रित करके छोटी छोटी वा बड़ी बड़ी आंटो बांधा करते हैं। उन आंटियोंको सनईकी आंटियोंकी भांति गढ़े गड़ही जिनमें कि जल होता है, उसीमें ले जाकर एक किनारे जलमें डाल उन आंटियोंके मूलांश अर्थात् जड़ों पर उन्हीं गढ़ोंमेंसे कीचड़ निकाल कर चढ़ा देते हैं। कीचड़ चढ़ा देनेसे पटुआके मूलांश जलमें डूब जाते हैं; और उसका अग्रभाग पानीके ऊपर तरता रहता है, क्योंकि इसके अग्रभाग पर कीचड़मयी मिट्टी नहीं चढ़ाते; अग्रभाग पर तालाब प्रभृतिके कीचड़को न चढ़ानेका कारण यह है, कि पटुआके अग्रभागकी छाल बहुत नरम होती है, वे मूलांशकी छालके फूलने और सड़नेके पहिलेही केवल जलसे भीगनेसेही फूलकर सड़ जाती हैं। और मूलांशकी त्वक कठोर रहनेसे उनके ऊपर कीचड़ चढ़ानेकी आवश्यकता हुआ करती है।

किन्तु ध्यान रहे कि, कृषिकार पटुआके पौधोंको तालाबमें छोड़नेके अनन्तर ५।७ रोजके बीचमें हर समय देखता रहे कि, उसकी ऊपरी छाल फूलकर सड़ी है वा नहीं; जब इसके ऊपरकी छाल जिसके नीचे पाट रहता है, जलमें फूलकर सड़ जाती है। तबही पटुआके पौधोंको धोकर उनमेंसे पाटको पृथक् करनेका समय जाने।

ध्यान रहे कि, ऊपरी छालोंके फूलकर सड़नेके अनन्तर शीघ्रता सहित, उन पटुआकी आंटियोंको जलमेंसे धोकर बाहिर निकाल



लेवे; क्योंकि, देरी होनेसे यदि वे आंटी दो चार रोज योंही पड़ी रहें, तो उनमेंसे पाट खराब होजानेकी सम्भावना रहती है ।

इसके पीधीको धोनेका यह तरीका है कि, कृषिकार लोग जब देखें कि, पटुआके मूलांशकी छाल फूलकर सड़ी हुई मालूम होती है ; तब आंटियोंके ऊपरसे कीचड़ हटाकर उनके मूलांशकी पीटना प्रभृति काष्ठसे जलके बीच भलीभांति पीट देते हैं, जिससे कि, इसके पीधीके ऊपरकी छाल जलमें बह जाती है । उसके अनन्तर अग्र-भागकी तरफ केवल हाथसेही मसलनेसे जलके बीच इसके पीधीकी ऊपरी छाल बह जाती है । इस प्रकारसे जब ऊपरकी छाल बह जाती है और पाट सफेद रङ्ग दिखाई देने लगता है ; तब उस आंटीकी बीचों बीचसे तोड़ देते हैं ; ऐसा करनेसे उसमेंके पाट नहीं टूटते बल्कि पटुआके पीधीकी पाटके भीतरी लकड़ीही टूट जाया करती है । अर्द्धभागकी पकड़कर आधे हिस्सेको पानीमें हिलाकर उलभाड़नेसे उस आंटीके अर्द्धभागके पीधीमेंकी लकड़ियां जलमें गिर जाती हैं । अनन्तर शेष अर्द्धभाग आंटीकी लकड़ियोंकी भी इसी प्रकार जलमें हाथसे हिलाकर उल भाड़नेसे उसमेंकी भी लकड़ियां जलमें गिर पड़ती हैं और केवल उनमेंके पाटही कृषिकारोंके हाथमें रह जाते हैं । अनन्तर उस पाटको भलीभांति धोकर उसमेंका पानी निचोड़ कर जलके बाहिर डारा प्रभृति पर सुखाते हैं । सूखनेपर पाटकी आंटी बांध बांध बिक्रयार्थ रख देते हैं । पाट यानी पटुआकी खेती वर्षाकालमेंही तीन चार महीनेके बीच होजाती है । जिन स्थानोंमें वर्षाके जलका सुविधा नहीं रहता, वहां पाट अर्थात् पटुआकी खेती नहीं हो सकती । पटुआकी खेतीसे कृषिकारोंको भलीभांति लाभ होनेकी सम्भावना है, क्योंकि प्रति बीघामें यदि १० दश मन पाट हो और वह ५) पांच रुपये मनके हिसाबसे भी बिके, तो एक बीघाके पटुआके पाटसे ५०)



पचास रुपयेकी आमदनी होती है। उसमेंसे यदि १०५ रुपये मजदूरी प्रभृति खर्चका बाद दे दें, तो भी ४०) चालीस रुपये लाभकी सम्भावना रहती है। इसके सिवाय पटुआका खेत कुआर महीनेमें खाली होजाता है। जिसमें फिर आलू प्रभृति बोकर कृषिकार लोग चैती फसल तैयार कर ले सकते हैं। इस प्रकार एक बीघा खेतमेंही एकवर्षके बीच दोबेर कहीं तीनबेर फसल उत्पन्न करके फाइदा उठा सकते हैं। इसलिये ऐसे स्वतन्त्र कृषिकर्मको करनेमें कदापि आलस न करना चाहिये।

—०—

### भूरो काकुन वा सांवां ।

—०—

भूरो काकुन वा सांवाके बीज जेठ महीने अथवा आषाढ़ महीनेके प्रथम पक्ष तक जलकी वर्षा होने पर छीटे जाते हैं और सांव न भादों महीनेमें पक जाते हैं। इनके बीज प्रति बीघा खेतमें एक सेर वा पांच पाव परिमाणमें छीटे जाते हैं। एक दो बेर खेत जोत कर बीजोंको छीट देने पर हेंगा चला कर खेतको समतल कर देनेसेही यथेष्ट होता है।

—०—

### मंडुआ ।

—०—

मंडुआके शीघ्र चारि अंशमें विभक्त और वक्राकृति होते हैं। मंडुआके बीज एक सेरके हिसाबसे प्रति बीघा खेतमें छोटे जाते हैं। इसकी एक जातिका मंडुआ बैशाख महीनेमें पक कर काटा जाता है। दूसरी जातिके मंडुआके बीजोंको जेठ महीनेके शेष पक्ष



तथा आषाढ़ महीनेके प्रथम पक्षमें जखिरा वा बेहनौरकी बघारोमें वपन करके पौधोंको तैयार करना होता है, जब पौधे कुछ बढ़े होजाते हैं, तब उन्हें जलकी वर्षा होने पर जब खेतकी मिट्टी भीग कर गीली होजाती है, तब उन पौधोंको जखिरामेंसे निकाल कर दो दो वा तीन तीन पौधोंको खेतमें आठ आठ वा दस दस अंगुल के फासिले पर रोपण करना होता है। रोपनेके बाद वर्षाके जलको पाकर इसके पौधे स्वयं बढ़ते हैं; खेतमें घास बगैर; उत्पन्न होने पर बीच बीचमें निरानेकी आवश्यकता हुआ करती है। आषाढ़ महीनेमें रोपण किये हुए मडुआके पौधे भादोंके शेष पक्ष तथा कुआर महीनेके प्रथम पक्षमें पक जाते हैं। इसी प्रकार रोपनेके समयके तारतम्यसे मडुआके पकनेमें भी तारतम्य हुआ करता है। पहाड़ी देशोंमें मडुआसे मद्य तैयार किया जाता है। इसलिये पहाड़ी असभ्य लोग इसे आदर सहित रोपण किया करते हैं। कभी कभी मडुआ तीन रुपये तथा चार रुपये मनके हिसाबसे बिका करता है।

पहाड़ी देशोंमें मडुआकी खेती करनेसे खूब लाभ होनेकी सम्भावना है।

मडुआ कोदो, काकुन प्रभृति शस्योंके बीजकी रोटी प्रभृति बहुतही निकृष्ट हुआ करती हैं, जो कि, भद्र पुरुषोंके आहारके उपयोगी नहीं हैं। किन्तु ग्रामीण गरीब कृषक तथा जङ्गली पहाड़ी लोग इन सब मोटे अन्नको रोटी प्रभृति बना कर खाया करते हैं। जलकी वर्षा होने पर जेठ महीके शेष पक्ष वा आषाढ़ महीनेके प्रथम प्रथम पक्षमें खेतकी जोतकर उनमें इन शस्योंके बीज छोटकर हेंगा दे देनेसे ही इनके वपन कार्य्य शेष होते हैं। बीनेके अनन्तर इन शस्योंके लिये अन्य किसी प्रकारके परिचर्याकी विशेष आवश्यकता नहीं होती।

कृषि-दर्पणमें इन सब मोटे शस्यों के उल्लेख न करनेसे भी कुछ हानि नहीं थी । तब इन सब शस्योंके पौधे पश्वादिकों के आहारीय घास हो सकते हैं ; यही उल्लेखका एक मात्र कारण हुआ है । इन सब घास रूपीय पौधोंको काटकर पशुओंको खिलाया जा सकता है । इसके सिवाय इनके पौधोंको सुखाकर गड़ास प्रभृतिके सहारे उनके छोटे छोटे टुकड़े करके कृषिकार लोग रख देते हैं ; जिन्हें समयानुसार गवादि पशुओंको खिलाया करते हैं । इन शस्योंके सिवाय और भी कई तरह के शस्य हैं, जिन्हें विज्ञ लोग उपरोक्त शस्योंकी भांति बपन करने तथा रोपन करनेकी रीति जानें ।

### कृषिदर्पणका तृतीय खण्ड समाप्त ।

## कृषिदर्पणके तीसरे खण्डका

# परिशिष्ट ।

### रुई वा देशी कपास ।

रुई वा देशी कपासके बीजको जेठ महीनेके शेष पक्ष वा आषाढ़ महीनेके प्रथम पक्षमें दुमट मिट्टीवाले खेतमें बोना होता है । जलकी वर्षा होने पर दो तीन बेर खेतको जोतकर रुईके बीजको खेतमें छीट कर हेंगा चला कर मिट्टीको समतल कर देना होता है । भारतवर्षमें प्रायः कृषिकार लोग इसके बीजको अड़हड़ और ज्वार बाजरेके बीजके साथ एक ही खेतमें छीट देते हैं ; इस प्रकार अड़हड़ प्रभृतिके साथ मिलाकर बोनेसे इसके बीजको प्रति बीघा खेतमें प्राय दो सेर परिमाणमें बोना होता है । अड़हड़ प्रभृतिके साथही साथ इसके भी अंकुर निकल कर पौधे बढ़ते हैं । पर रुईके बीजको ऐसे खेतमें बोना उचित है, जिसमें वर्षाकालका पानी एकत्रित न होता हो । क्योंकि वर्षाका जल इसके पौधोंके मूलमें एकत्रित रहनेसे उन पौधोंके नष्ट होजानेकी सम्भावना है । वर्षाके जलसे इसके पौधे स्वयं ही बढ़ते हैं । बीच बीचमें खेतमें पैदा हुई घास प्रभृतिको खेतमेंसे निरा कर पृथक् कर देनेको जरूरत हुआ करती है । अनन्तर कातिक वा अगहन महीनेके प्रथम पक्षमें जब खेतमेंसे ज्वार बाजड़ेको काट लेते हैं, तब केवल उस खेतमें अड़हड़ और रुई कपासके पेड़ ही रह जाते हैं । ऐसे समयमें वे सब पेड़ यथोचित वायु तथा सूर्यकी रोशनी पाकर शाखा प्रशाखा



युक्त होकर भलीभांति बढ़ते हैं, ऐसे समयमें जल सींचनेकी भी विशेष आवश्यकता नहीं रहती; क्योंकि इसके पौधोंके लिये आकाश के ओसका जल ही यथेष्ट होता है। किन्तु बीच बीचमें यदि एकाध बेर जलसे इसके खेतको सींच दिया जाय, तो अधिक लाभ होनेकी सम्भावना रहती है। वसन्त ऋतुमें इसके पेड़ोंमें फूल लगते हैं और और उसके थोड़े ही दिनों बाद फल भी दीखते हैं। अनन्तर चैत महीनेके शेषमें जब खेतमेंसे अड़हड़के पेड़ोंको काट कर निकाल लेते हैं। उस समय वैशाख महीनेसे लगाय जेठ महीने तक इसके फल सूर्यकी धूपसे सूख कर फूटने लगते हैं। इन्हीं फूटे हुए फलोंमें रूईको कृषिकार लोग निकाल निकाल एकचित्त करते हैं। अनन्तर चखी प्रभृतिमें ओटनोसे इसके बीज अलग होजाते हैं और रूई पृथक् होजाती है। इसके बीजको बेनउर कहते हैं; बेनउरको गऊ आदिको खिलानेसे वे शिष्टपुष्ट होकर अधिक परिमाणसे दूध दिया करती हैं, और रूई बाजारोंमें उचित मूल्य पर विक्रय हुआ करती है। इसलिये इसकी खेतीमें भी यथेष्ट लाभ होनेकी सम्भावना है। कृषकोंको इसकी खेतीके सम्बन्धमें कदापि उदाशीन न रहना चाहिये।



## अमेरिकन वा देशी कपास ।

अमेरिकन वा देशी कपासके बीजको भलीभांति जोते हुए खेतमें कातिक महीनेमें बोना होता है । जब इसके पौधे ५।६ रोजमें बाहिर होकर कुछ बढ़ते वा दो चार पत्तेयुक्त होजाते हैं, तब मिट्टीको सूखती हुई देखकर इसके खेतोंमें जल सींचनेकी जरूरत हुआ करती है । अनन्तर खेतमें घास बगैर; उत्पन्न होनेसे उन्हें निराकर खेतमेंसे पृथक् कर देना उचित है । इसी प्रकार बेर बेर निरा कर कपासके जड़ोंकी मिट्टी नरम और पोली कर देनेसे इसके पौधे जमीनके अन्दरसे भलीभांति अपनी शुराक खींचकर, रिष्टपुष्ट और तेजस्वी होते तथा शाखा प्रशाखायुक्त होकर अच्छी तरह बढ़ते हैं । बहुतेरे कृषिकार लोग कपासकी शाखा प्रशाखाके अग्रभागको काट देते हैं, अग्रभाग काट देनेसे उनमेंसे और भी बहुतसी शाखा प्रशाखा बाहिर होती हैं और कपासका वृक्ष खूब सुन्दर सुडील तथा सुहावना मालूम होता है । अनन्तर बसन्त ऋतु अर्थात् फागुन चैत महीनेमें कपासके वृक्षमें फूल लगना आरम्भ होता है, और उसके थोड़ेही दिनोंके बाद वे सब कपासके वृक्ष फलोंसे परि- पूरित होजाते हैं । अनन्तर वैशाख महीनेसे लगाय जेठ महीने तक इसके फल सूरजके धूपकी उतापसे स्वयं ही फूटते हैं, फलोंके फूटने पर कृषिकार लोग उनमेंकी रूई निकाल कर इकट्ठा करते हैं । देशी कपासकी अपेक्षा अमेरिकाके कपासके रूईके रंग बहुत ही नरम और मिहोन होते हैं । और बाजारोंमें भी अमेरिकावाले कपासकी रूई ज्यादा कीमत पर बिका करती है । भारतवर्षमें इसकी खेती करनेसे कृषकोंको अधिक परिमाणसे धन प्राप्त होनेकी सम्भावना

है। क्योंकि इस कपासकी रूई २०) बीस रुपये मन पर्यन्त बिक सकाती है। यदि एक बीघा खेतमें पांच मन भी रूई हो, तो भी १००) एकसौ रुपये उसकी कीमत हो सकती है। कलकत्ता—काशी-पुर कृषिशालामें अमेरिकाके कपास वा रूईके बीज सदा सर्वदा विक्रयार्थ मौजूद रहते हैं। इसलिये इसकी खेतीके सम्बन्धमें कभी भी भारतीय कृषिकारोंको पश्चात्पद होना उचित नहीं है। इसके बीज प्रति बीघा खेतमें प्राय दो सेर परिमाणसे बोये जाते हैं। दुमट मिट्टीवाले उपजाऊ खेत ही कपासके बीज बोनेके लिये उत्तम समझे जाते हैं। यहाँवाले जेठ महीनेमें रूई संग्रह कर लेने पर इसके पौधोंको काटकर उस खेतको जोतकर नई फसल बोते हैं। पर अमेरिकावाले कपासके पेड़ोंको ऊपरसे काटकर फिर उसे जलसे सींच कर गोड़ निरा कर पुनर्बार उनसे दूसरी और तीसरी फसल यानी दो तीन बेर रूई प्राप्त करते हैं। जो हो, कपासकी खेतीमें प्रचुर परिमाणसे धन प्राप्तिकी आशा है।

कृषिदर्पणके तीसरे भागका  
परिशिष्ट समाप्त।

— — —

# कृषि दर्पण ।

## चौथा-भाग ।

### तृतीय-अध्याय ।

देशीय विदेशीय शाकसजी फसल प्रभृति\* ।

## अमेरिकाकी सबसे बड़ी बढ़ियां फूल-गोभी ।

इस सर्वोत्कृष्ट खूब बड़ी अमेरिकन-फूलगोभीका बीज हम प्रतिवर्ष अमेरिकासे मंगाकर निज “काशीपुर कृषिशाला”से असंख्य ग्राहकोंको प्रदान करके उनके मनोरञ्जन करनेमें समर्थ हुए हैं । यह अमेरिकन-फूलगोभी केवल खानेमें खादिष्ट है,—इतनाही मत

\* जो लोग विदेशसे अथवा “काशीपुर कृषिशाला” से विलायती वा अमेरिकन बीज डाक पार्सल द्वारा मंगाते हैं ; उन्हें ध्यान रखना चाहिये कि, ठीक समय पर बीजोंको मंगावे, और वायु प्रभृतिसे बचाना चाहिये । शर्दी भी बीजोंमें न लगने पावे, इसलिये सूरजकी धूपमें कुछ समयतक सुखा कर फिर शीशी वा बोतल प्रभृतिमें भर कर ऊपरसे उसका मुंह बन्द कर दें । जिससे कि, स्थानीय वायु तथा शर्दी प्रभृतिसे बीजोंकी उत्पादिकाशक्ति नष्ट न हो जावे । इस लिये खूब सावधानीसे विदेशीय बीजोंको हिफाजतको साथ रखना चाहिये और योग्य समय पर बीना उचित है ।



समझो, बल्कि सुन्दर स्वादके सिवाय इसकी और भी अनेक गुण हैं। यह फूलगोभी देखनेमें अत्यन्त सफेद और खूब कड़ो होती है। इसकी पेड़में ज्यादा पत्ते नहीं होते तथा एक छोटे पेड़में अच्छा बड़ा गोभीका फूल उत्पन्न हुआ करता है। पीधोंको रोपण करनेके अनन्तर ७० वा ८० दिनके बीचमेंही इसकी पेड़ोंमें फूल लगते हैं।

इस फूलगोभीके रोपण करनेका उपयुक्त समय आश्विन कातिक महीना है। नीचे लिखी रीतिसे जखिरा तैयार करके उसमें बीज छोटना होता है। किसी निर्दिष्ट भूमिखण्डको एक हाथ परिमाणसे मिट्टी द्वारा ऊँचा करके रखें; मिट्टी इस प्रकारसे चूर्ण करके मिचीन कर देना उचित है कि, अनुमान तीन इंच नोचे तथा ठीक धूलको तरह मिचीन तथा पोली रहे। ध्यान रहे कि, यह मिट्टी जखिरा वा क्यारीमें सब ओर समान भावसे पड़नी चाहिये, जिससे किसी जगहकी जमीन ऊँची नोची न होने पावे। इसी प्रकारसे जखिराको मिट्टी तैयार होजाने पर उसमें खूब सावधानीसे बीज छोटना चाहिये। बीज इस प्रकारसे छोटना उचित है कि, सब स्थानोंमें समान भावसे पड़े; क्योंकि बीजोंके एक स्थानमें इकट्ठे ज्यादा परिमाणसे पड़ने पर उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। यदि किसी प्रकारसे एक स्थानमें ज्यादा बीज पड़ जायं, तो उन्हें हाथसे चलाकर समान कर देना उचित है। उक्त प्रकारसे बीज छोटकर उनके ऊपर सूखी मिट्टीका चूर्ण इस भाँतिसे भुरभुरा देवे कि, भाँभरी तथा अन्य वस्तुसे बीजोंके ऊपर जलका छोट्टा देनेसे मिट्टी बैठकर बीज दब न जावें। बीजके ऊपर ज्यादा मिट्टी रहनेसे उस मिट्टीके स्तरोंकी मद्द कर बीजोंसे अङ्कुर उत्पन्न होना असम्भव है। यदि ऐसा देखा जाय कि, जल सींचनेके समय जखिरामें वपन किये हुए बीज मिट्टीके ऊपर निकल आये हैं, तो जानें कि बीजोंके ऊपर अल्प परिमाणसे ही मिट्टी डाली गई है। ऐसे स्थानमें फिर मिट्टीका चूर्ण डालने



जब बाहिर निकले हुए बीजोंको ढांक देना चाहिये । जखिरामें जल देनेके समय खूब सावधान रहना उचित है । घड़ा प्रभृतिसे अधिक जोरसे जल ढालने पर बहुतेरे बीज मिट्टीके नीचे चले जाते और कितनेही बीज मिट्टीके ऊपरसे इधर उधर बह जाते हैं ; इस लिये भँभरौ द्वारा जखिरामें जल सींचना चाहिये । बीज बोनेके दो दिन के बादसेही जल देना आरम्भ करना उचित है । दो दिन जल न देनेसे मिट्टीकी गरमीसे बीज शीघ्र अङ्कुरित होते हैं । तीसरे दिन जल सींचने से बीज फूटकर अङ्कुर बाहिर होते हैं ; और पांच दिनके बीच सब बीज अङ्कुरित होजाते हैं । जब प्रति पौधोंमें चार चार वा पांच पांच पत्ते लगें, तब जखिरामेंसे उन पौधोंको उठाकर अन्य जखिरामें सुविधा अनुसार दो दो वा तीन तीन दूधके फासिले पर एक एक पौधोंको रोपण करे । इस स्थलमें स्मरण रखना जरूरी है कि, गोभीके बीजसे पौधोंको उत्पन्न करनेके लिये एकही समयमें दो जखिरा तैयार करके रखना चाहिये । एकमें बीजको अङ्कुरित करना होगा और दूसरेमें अङ्कुरित पौधोंको उठाकर हिलाकर रोपना होगा ।

जब पौधोंमें पांच छः अथवा सात पत्ते होजायँ, तब उन्हें जखिरामें से उठा कर गोभीके लिये तैयार किये हुए खेतमें दो दो हाथके फासिले पर एक एक पौधोंको रोपण करना चाहिये । नीचे लिखी रीतिसे खेतको तैयार रखना उचित है ।

वर्षाके समयमें प्रति कट्ठा परिमाण जमीनमें बीस पचीस गढ़ा (थाला) करे, और प्रति गढ़ोंमें भेड़की मँगनी वा सूखे गोबरके चूरासे बनौ हुई खादको मिट्टीमें मिलाकर भर देवे । बरसातके पानीसे भेड़की मँगनी वा गोबरके चूरा प्रभृतिकी खाद सड़कर मिट्टीमें मिल जाती है । वर्षाकालके शेषमें जमीनको मिट्टीको कुदालसे खोदकर छलट देवे और हलसे जोतकर समतल कर देवे ; अर्थात्

खादवाली मिट्टी जिससे सारे खेतमें समभावसे फैल जाय, वैसा करे। अनन्तर क्यारी, बरहा वा कुत्ता, मेड़ तैयार करके दो मेड़ोंके बीच डेड़ डेड़ वा दो दो हाथके तफावतकी छोटी छोटी क्यारी बनाकर फूल-गोभीके एक एक पौधोंको रोपण करे। जिस दिन पौधे रोपण किये जायं, उसी दिनसे खेतमें जल सींचनेकी जरूरत रहती है। जमीनकी अवस्था विचारकर जल सींचना उचित है। पौधोंके जड़की मिट्टी तर रहनेसे जल देनेको कुछ जरूरत नहीं रहती। गोभीके खेतको सींच सकनेसे अच्छा होता है, तीन चार बेर सींचनेसेही गोभीके फूल तैयार हो सकते हैं। गोभीकी आवादीमें अधिक परिमाणसे जल सींचनेकी आवश्यकता रहती है। जलसे गोभीका कुछ अनिष्ट नहीं होता। किन्तु वर्षाका पानी उत्तम नहीं है। फूलगोभी, ओल (गांठ) गोभी और बंधी गोभी आदि सब प्रकारकी गोभियोंकी आवादीमें प्रचुर परिमाणसे जल देनेकी आवश्यकता रहती है।

पूर्वोक्त जखिरामें जब गोभीके पौधे रोपण किये जाते हैं, तब उन्हें सूरजकी कड़ी धूपसे रक्षा करनी होती है अर्थात् किसी वस्तुसे उनके ऊपर कड़ी धूपके समय छाया रखनेकी आवश्यकता रहती है; रातके समय छाया रखनेकी जरूरत नहीं रहती। किन्तु वर्षाके पानीसे पौधोंको नुक़्तानी हो सकती है, इसलिये वर्षा होनेके समय पौधोंके ऊपर किसी वस्तुसे छाया रखनेसे अच्छा होता है। ज्यादा ढांकना भी अच्छा नहीं है, क्योंकि ऐसा होनेसे पौधोंके अधिक बढ़ जानेसे उनके गुप्ते (पेड़) टेढ़े होके लचकाकर टूट जाते हैं और फिर सीधे नहीं हो सकते, इस लिये वे एकवारगी नष्ट होजाते हैं। इस निमित्त केवल कड़ी धूप वा वर्षाके समय रक्षाकरनेके लिये पौधोंको ढांक रखना चाहिये, अन्यथा नहीं।

## ब्रोकली नाम फूलगोभी ।

पहिले हमारे देशमें यह ब्रोकली नाम फूलगोभी नहीं बोई जाती थी । पर “काशीपुर कृषिशाला” में परीक्षा करके देखा गया है कि, यह भारतवर्षमें भी भलीभांति उत्पन्न हो सकती है । बहुत दूर अफ्रिका महादेशके दक्षिणप्रान्तस्थित उत्तमाशा अन्तरीप ब्रोकलीका जन्मस्थान है । ब्रोकली फूलगोभीके पौधे काले रङ्गके हुआ करते हैं । यह देखनेमें बहुत सुन्दर होती है । जब बगीचे वा खेतमें प्रचुर परिमाणसे ब्रोकली फूलगोभी बढ़कर फूलती है, तब बगीचा वा खेत बहुतही शोभायमान लगता है । ब्रोकली जैसे बाहिरी सौन्दर्यमें नयन-मनोरम है ; वैसेही इसका आस्वादन भी मधुर और रसनाको तृप्तिकारक है । एकबेर ब्रोकलीके मधुर स्वादको चखनेसे फिर उसे भूल नहीं सकते । इस सुस्वाद ब्रोकली नाम फूलगोभीमें एक ऐसा विशेष आस्वादन है, जो कि, अन्यान्य फूलगोभियोंमें नहीं मिल सकता । जिन्होंने इस तृप्तिकर ब्रोकली फूलगोभीके स्वाद नहीं पाये हैं, उन्हें एक बेर इसका स्वाद लेनेके लिये हम अनुरोध करते हैं ।

ब्रोकली नाम फूलगोभीके आवाद करनेकी रीति अन्यान्य फूलगोभियोंकी भांति है । इस लिये इस स्थलमें इसके आवाद करनेकी रीति स्वतन्त्र रीतिसे नहीं लिखी गई ।

यद्यपि ब्रोकलीका जन्मस्थान अफ्रिका देश है ; किन्तु इस समय इसकी आवादी विलायत तथा अमेरिका प्रभृति देशोंमें प्रचुर परिमाणसे होती है । भारतवर्षमें भी यह भलीभांति उत्पन्न हो सकती है । इस लिये हम प्रतिवर्ष इसके बीज विलायत तथा अमे-



रिकासे मंगाकर “कलकत्ता काशीपुर कृषिशाला” द्वारा सम्पूर्ण भारत-वर्षमें प्रचार करनेके लिये विक्रय किया करते हैं ।

—०—

## बँधी गोभी ।

—०—

जिस प्रकार फूलगोभीके बोने और रोपनेकी रीति लिख आयी है, उसी भाँति बँधीगोभीके बीज बोने और पौधोंको उत्पन्न करने तथा परिचर्या करनेकी रीति जानो । जिस समयमें फूलगोभी तैयार होती है, उसी समय बँधीगोभी भी तैयार होजाती है । इसमें फूल नहीं लगते ; इसके पत्तोंकीही तरकारी हुआ करती है । इसके पत्ते गोलाकार घड़ेके मानिन्ह बँध जाते हैं ; खानेमें इसकी तरकारी भी उत्तम हुआ करती है । विलायती और अमेरिकन बँधीगोभीके बीजसे जो पौधे तैयार होते हैं, उनके पत्ते नरम होते तथा उनकी तरकारी भी अच्छी हुआ करती है । “कलकत्ता काशीपुर कृषिशाला” में बँधीगोभीके बीज मिलते हैं ।

—०—

## ओल ( गांठ ) गोभी ।

—०—

विलायती वा अमेरिकन ओल ( गांठ ) गोभीके आवाद करनेकी रीति भी फूलगोभीकी भाँति जानो । अर्थात् इसके बीज द्वारा फूलगोभीके पौधोंकी भाँति जखिरामें पौधे तैयार करके खेतमें रोपन करना होता है । इसमें फूल नहीं लगते, बल्कि इसके मूलही गोलाकाररूपसे परिणत होते हैं, उसकीही स्वादिष्ट तरकारी हुआ करती



है । तरकारियोंके बीच यह भी बढ़िया समझी जाती है, भोल-  
गोभीको तरकारी भी स्वादिष्ट होती है । अङ्गरेज लोग इसे अधिक  
पसन्द करते हैं ।

—०—

## बीट ।

—०—

बीटपालमके बीजको २।३ घण्टे तक धूपमें उत्तापित करके  
उसके अनन्तर चार रोज तक नित्य ताजे जलमें भिंगाना होता है ।  
पहिले इसके पौधोंको टब्, गमले वा जखिरामें तैयार करके खेतमें  
एक एक हाथके फासिले पर एक एक पौधोंको रोपण करना  
चाहिये । इसके बीज पांच सात वा आठ दिनमें अंकुरित होकर  
पौधे उत्पन्न हुआ करते हैं । इसके बीजोंको बिना भिंगाये जमीनमें  
बोनेसे पौधे उत्पन्न नहीं होते । बीट गाजरकी भांति खानेमें  
खूब मोठा होता है, इसके मूल प्रायः गाजरकी भांति होते हैं ।  
यद्यपि यह विलायती है, तथापि भारतवर्षमें भी अच्छी तरह उत्पन्न  
हो सकता है । जर्मन देशमें बीटके द्वारा लाखों मन चीनी तैयार  
करके विदेशोंमें बेचनेके लिये भेजी जाती है, इसलिये इसकी आयादी  
सम्बन्धमें यहांवालोंको विशेष ध्यान देना योग्य है । कलकत्ता  
काशीपुर कृषिशालामें इसके ताजे बीज विलायत और अमेरिकासे  
मंगाकर प्रतिवर्ष विक्रयार्थ मौजूद रहते हैं ।

—०—

## विलायती गाजर ।

बीटके बीजकी भांति विलायती गाजरके बीजको भी ४।५ रोज  
जलमें भिंगा कर उसके बाद गाजर बोनेके लिये पहिलेसेही तैयार

किये हुए खेतमें एकवारगी बपन करना होता है। इसके बीज सात आठ दिनसे लगाय पन्द्रह दिनके बीचतक अंकुरित हो सकते हैं। इसके पौधे जखिरामें नहीं उत्पन्न किये जाते। गाजरके खेतमें जल सींचने और निराने प्रभृतिकी विशेष जरूरत रहती है। इसके बोनेका समय आश्विन कातिक महीनाही अच्छा समझा जाता है। गाजरका मूल खाया जाता है, इसका मुरब्बा उत्तम होता है। गाजर खानेमें मीठा होता है और पुष्टिकारक तथा खूनका परिष्कारक समझा जाता है।

—०—

### सलगम ।

—०—

सलगमके बीजको ४।५ घण्टे तक जलमें भिंकाकर उसके बाद १ वा १॥ घण्टे तक जलसे निकाल कर हवामें रखे, जिससे कि, बीजोंके ऊपरी जलका अंश सूख जाय अर्थात् एक बीज दूसरेसे चिपकने योग्य न रहें। तब उन्हें खेतमें बोना चाहिये। इसके बीज भी गोभीके बीजकी भांति तीन रात्रिके बीच अंकुरित होते हैं। इसके पौधोंको जखिरामें तैयार नहीं करना होता। और इसके बीजको बिना भिंगाये भी खेतमें बो सकते हैं। खेतमें यदि अधिक परिमाणसे पौधे उत्पन्न हों, तो कितने एक पौधोंको निकाल कर पृथक् कर देना उचित है। इसके बोनेका समय आश्विन कातिक महीना है।

—०—

### मूली ।

—०—

देशी वा विलायती मूलीके बीजको एकवारगी तैयार किये हुए खेतमें बोना होता है। इसके बीज तीन चार दिनके बीच

अंकुरित होते हैं । इसके बीजोंको बोनेके पहिले जलमें भिंगाकर नहीं रखना होता । इसके पौधे एक दूसरेसे सटे रहनेसे मूलीकी फसल अच्छी नहीं होती । एक एक पौधे आध आध हाथके फासिले पर रहनेसे मूलीकी जड़ें खूब बड़ी और मोटी हुआ करती हैं । मूली बोनेके लिये जमीन जितनी गहराईसे जोत कर मिट्टीको मिहीन वा पोली रखे, उतनाही फाड़दा होता है ; आवश्यकता-नुसार जलसे सींचने तथा मूलीके मूलपर खादयुक्त पोली मिट्टी भी चढ़ानेकी जरूरत हुआ करती है । इसका विशेष विवरण हमारी “कृषिशिक्षा” पुस्तकमें देखिये ।

—०—

## कलाद ।

—०—

कलादको अंगरेजीमें लेटुस भी कहते हैं । इसके बीजको टव् वा जखिरामें डालकर गोभीके बीजकी भांति पौधोंको उत्पन्न करना होता है । जब इसके पौधे पांच पांच वा छः छः पत्तियोंसे युक्त हों, तब उन्हें एक एक हाथके फासिलेसे खेतमें रोपण करना चाहिये । इसके बीजको बोनेके समय खूब सावधान रहना उचित है । क्योंकि चींटी इसकी प्रधान शत्रु हैं, ये २१ घंटेके बीचमेंही मिट्टीमेंसे सब बीज निकाल कर खा डालती हैं । इसी लिये इसके बीजको बोनेके समय जखिराकी मिट्टीमें थोड़ीसी गोबरकी राख मिला देनी होती है । इसके बीजके अंकुरित होनेमें ३४ दिन समय लगता है । बहुतेरे लोग शीघ्र अंकुरित होनेके लिये इसके बीजको जलमें भिंगा कर रोपन करते हैं । बीजोंको दो घंटेतक जलमें भिंगाकर कान लेते और किसी कपड़ेकी पोटलीमें बांधकर दो रोज तक सुला



रखते हैं। तब उन्हें टब् वा जखिरामें बोके पौधे उत्पन्न करते हैं। आश्विन कातिक मासही इसके पौधोंको उत्पन्न करनेके लिये उपयुक्त समय है। कलकत्ता,—“काशीपुर कृषिशालामें” इसके बीज प्रतिवर्ष विलायत और अमेरिकासे मंगाकर विक्रयार्थ मौजूद रहते हैं।

—०—

### सिलेरी ।

सिलेरीके बीजको दो तीन घंटेतक पानीमें भिंगाकर छान ले और एक घंटातक हवामें सुखाकर उसके बाद जखिरा वा टब्में बीज बोकर पौधा उत्पन्न करना होता है। इसके बीजके अंकुरित होनेमें ५।६ दिन समय लगता है। पहिले पौधे बहुत छोटे छोटे रहते हैं। अनन्तर जब उनमें ५।७ पत्ते हों, तब एक हाथके तफावतसे पहिलेसे तैयार किये हुए खेतमें रोपण करना होता है; समयानुसार जल सींचने निरानेकी आवश्यकता हुआ करती है। इसके बीज बोनेका समय आश्विन कातिक महीनाही अच्छा समझा जाता है। प्रतिवर्ष इसके बीज विलायतसे मंगाकर कलकत्ता,—“काशीपुरकृषिशाला”में विक्रयार्थ मौजूद रहते हैं।

—०—

### हालिम वा इण्डियन क्लेश ।

हालिमके बीजको पहिले टब् वा जखिरामें बोकर पौधोंको उत्पन्न करना होता है। उसके बाद जब पौधे चार पांच पत्तीस युक्त हो, तब उन्हें किसी जलाशयके किनारे जगह तैयार करके एक एक हाथके तफावत पर एक एक पौधोंको रोपना होता है।



हालिम एक प्रकारके मसालेके बीच परिगणित हैं। इसे भी शीत-कालमें बोना या रोपण करना चाहिये।

—०—

## स्पिनाक ।

—०—

स्पिनाक एक प्रकारका विलायती शाक है। इसके बीजोंको एकबारगी खेत या निर्वाचित स्थानमें शाकके बीज बपन करनेकी भांति बोना होता है। आश्विन कातिक महीना इसके बीज बपन करनेका मुख्य समय है। इसके पत्ते शाककी भांति अत्यन्त सुखाद्य समझे जाते हैं। इसके बीज तीन चार दिनमें अंकुरित होते हैं। अन्योन्य शाकोंकी भांति इसकी भी परिचर्या करनी होती है। शरतकालमें इसके बीज बोते हैं। कलकत्ता,—“काशीपुर कृषि-शाला” में इसके बीज मिलते हैं।

—०—

## अमेरिकन वा विलायती तरबूज खर्बूजा प्रभृति ।

—०—

अमेरिकन वा विलायती सब तरहके तरबूज खर्बूजा तथा ककड़ी ( Watermelon ) प्रभृतिके बीजको वर्षाके शेष अर्थात् आश्विन कातिक महीनेमें बोना या रोपना होता है। इसके बीज रोपनेके पहिले खेतमें नियम पूर्वक थाला बनाना होता है। प्रति थालेकी मिट्टीके साथ थोड़ी खाद मिलाकर फिर उसमें चार चार पांच पांच बीज रोपण करना होता है। इसके बीजको बारह घंटेतक जलमें भिंगाकर रोपण करना चाहिये। इनके बीजसे पौधोंके उत्पन्न होनेमें ५७ रोज तक समय लगता है। चैती खीरा देशी वैशाखी ककड़ी वा देशी तरबूज खर्बूजा प्रभृतिके बीज गोभी वा आलूकी

फसल जब खेतमेंसे निकल जाती है, तब इनके बीजको बोते हैं, क्योंकि दक्षिणी हवाके बिना इनके बीज भली भांति अंकुरित नहीं होते ।

—०—

## कुम्हड़ा ( Quash. )

इस विलायती कुम्हड़ाके बीजको वर्षाके शेषमें आवाद करना होता है । इसके बीजको जमीनमें थाला बनाकर रोपना चाहिये । इसके बीज रोपण करने पर अधिक परिमाणसे जल देनेकी आवश्यकता नहीं रहती ; क्योंकि इसके पोले पतले बीज अधिक जलमें पड़नेसे सड़ कर नष्ट होजाते हैं । इसलिये इसे बोने वा रोपनेके समय खूब सावधान होना चाहिये । यह देशी कुम्हड़ा नहीं है ।

—०—

## आर्टीचक् वा हाथीचक् ।

—०—

आर्टीचकके बीजको २।३ रोज जलमें भिंसा कर उसके बाद जमीनमें रोपना होता है । आश्विन कातिक महीनाही इसके बीज बोनेका समय है । इसके बीजको अंकुरित होनेमें चार पांच रोज समय लगता है । इसके बीज एकवारगी निरूपित स्थानमें एक एक थाला बनाकर रोपण करना चाहिये । यह बहुतही सुखाद्य है । इसका विशेष विवरण हमारी कृषिशिक्षा नाम पुस्तकमें लिखा है । कलकत्ता,—“काशीपुर कृषिशाला” में इसके बीज मिलते हैं ।

—०—

## विलायती सेंम ।

वर्षाके अन्तमें इस विलायती सेंमके बीजको एकवारगी निरूपित स्थानमें एक एक करके रोपण करना होता है । और अल्पपरिमाणसे जल देनेकी आवश्यकता रहती है । इसके अंकुर जब निकल कर पौधे बड़े होते हैं, तब उन्हें टट्टर प्रभृति पर चढ़ा देना चाहिये, क्योंकि इसके पौधे लतारूपसे बढ़ते और यथोचित फल प्रदान करते हैं ।

— ० —

## विलायती वैंगन ( Tomato. )

इसे एकप्रकारका विलायती वैंगन कहते हैं । यह तीन चार प्रकारका होता है । इसे आवाद करनेकी यह रीति है कि, पहिले जखिरामें इसके पौधोंको तैयार करके उसके बाद तैयार किये हुए खेतमें डेढ़ डेढ़ हाथके फासिले पर एक एक पौधोंको रोपना उचित है । चाहे नाली बरहा कुत्ता तैयार करके रोपण करे, चाहे समतल जमीनमेंही रोपण करे । इसका विशेष विवरण हमारी कृषिशिक्षा पुस्तकमें लिखा है । कलकत्ता,—“काशीपुर कृषिशाला” में इसके बीज विक्रयार्थ मौजूद रहते हैं । कातिक महीना इसके पौधोंको रोपनेका ठीक समय है ।

— ० —

## टेपारी ( Gooseberry. )

टेपारीकी आवादी करनी हो, तो वर्षाकालके अन्त अर्थात् आश्विन कातिक महीनेमें जखिरा बनाकर उसमें इसके पौधोंको



तैयार करके खेतमें रोपण करे । इसको चटनी अच्छी होती है । इससे यह लोगोंको बहुत प्रिय है ।

—०—

### बिल्लाती भुटा वा मक्का ।

—०—

बिल्लाती भुटा वा मक्काकी आवादी करनी हो, तो आश्विन कार्तिक महीनेमें तैयार किये हुए खेतमें एक एक हाथके फासिले पर एक एक बीज बोके अल्प परिमाणसे जल सींच कर पौधोंको उत्पन्न करे । जब इसके पौधे कुछ बड़े हों, तब अधिक परिमाणसे जलसे सींचे । इसके बीज अंकुरित होनेमें चार पांच रोज समय लगता है । खेतमें मेड़ बरहा क्यारी वा कुत्ता बनाकर इसका बीज बोते हैं । समतल खेतमें बोनेसे भी इसकी फसल कम नहीं होती । विशेष विवरण हमारौ कृषिशिक्षा नाम पुस्तकमें देखो । कलकत्ता, “काशीपुर कृषिशाला” में इसके बीज प्रतिवर्ष अमेरिका तथा विलायतसे मंगाकर बेचनेके लिये मौजूद रहते हैं । इसके दाने खूब बड़े तथा सुस्वादु होते हैं ।

—०—

### बिलायती प्याज वा लहशुन ।

—०—

बिलायती प्याजको अङ्गरेजीमें ओनियम और लहशुनकी लीक कहते हैं । इसके बीज द्वारा पहिले जखिरामें पौधोंको उत्पन्न करके तब तैयार किये हुए खेतमें रोपण करना होता है । इनके बीज चार पांच दिनमें अंकुरित हुआ करते हैं । इसके लिये समय पर जल सींचने और निरानेकी आवश्यकता रहती है । और विशेष



परिचर्याकी आवश्यकता नहीं है ; तब खेतकी मिट्टी खादयुक्त होनी चाहिये । इनके बीज प्रतिवर्ष अमेरिका और विलायतसे मंगाके कलकत्ता,—“काशीपुर कृषिशाला” में विक्रयार्थ मौजूद रहते हैं ।

—०—

## चीनावादास ।

~~~~~

इसे अंगरेजीमें (Ground-nut) कहते हैं । इसकी प्रथम उत्पत्ति-स्थान दक्षिण अमेरिका है । १७१२ ई० में दक्षिण अमेरिकामें यह पहिले पहिल उत्पन्न को गई । इस समय अनेक देशोंमें इसे बोते हैं । भारतवर्ष और अफ्रिकामें भी यह प्रचुर परिमाणसे उत्पन्न होती है ; बोध होता है, चोन देशसे पहिले पहिल इस देशमें आनेसे इसका नाम चीनावादास हुआ है । ग्रीष्मप्रधान देशोंमें ही यह अच्छी तरह पैदा होती । भारतवर्षके दक्षिण प्रान्तमें अधिक परिमाणसे इसको खेती हुआ करती है । और प्रति वर्ष लाखों मन अन्यान्य प्रदेशोंमें विक्रयार्थ भेजी जाती है । बङ्गाल देशमें प्रति बीघा जमौनमें प्राय ६ मनके हिसाबसे चीनावादास उत्पन्न हुआ करतो है । और प्रत्येक मन ५) पांच रुपये अथवा ५॥) साढ़े पांच रुपये मनके हिसाबसे बिकती है ; इसलिये इसकी खेतीमें अच्छा लाभ हो सकता है ; इसको शाखा प्रशाखा लता रूपसे जमीनके ऊपर फैलती हैं, जो कि ३ इंचसे लगाय ६ इंचसे ज्यादा नहीं होती । वालू मिली हुई ऊँची भूमि ही इसकी खेतीके उपयुक्त है । फागुन चैतसे लगाय वैशाख जेष्ठ महीने तक इसके बोनेका समय है ।

भाद्र महीनेके बाद फागुन महीनेके प्रथम पक्षमें ही इसे बोनेके लिये ३।४ बेर जोत कर हिंगा देकर खेतको समतल करके

दुरुस्त कर रखना होता है। इस समय जमीनके ऊपर जरा सूखा दृष्टि रखे। अर्थात् ईंट, कंकड़, ढेला तथा घास वगैरः की जड़ोंको खेतमें से निकाल कर पृथक् कर देवे। जमीनकी उपजाऊ शक्ति कम हो, तो उसमें कुछ खाद डाले, अन्यथा खाद डालनेकी आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि इसके पत्ते सड़कर खेतमें गिरनेसे स्वयं ही खाद रूपसे परिणत होते हैं। इस प्रकार जमीन तैयार होने पर दो दो फीटके फासिले पर छः छः इंच के गढ़े वा थाला बना कर उसमें चीनावादामकी रोपण करके उसके ऊपर दो इंच मिट्टीका मिहीन चूर्ण डालके ढांक देवे; एक सप्ताह बीतने पर यदि बीज अंकुरित न हों, तो थोड़ा थोड़ा जलसे सींचना उचित है। बीज अंकुरित होने पर भी इसकी रक्षाके लिये जल सींचना होगा। शाखा प्रशाखा बाहिर होने पर जल सींचनेकी विशेष आवश्यकता नहीं रहती। जल सींचनेके समय देखना चाहिये कि, खेतकी मिट्टी पानी पानेसे बैठ न जाय वा सिमिटकर कड़ी न होजाय, अर्थात् जमीनकी मिट्टी पोली रहनी चाहिये।

बीज अंकुरित होने पर शाखा प्रशाखा निकलनेसे अच्छी तरह निराकर इसके पौधोंके मूल पर मिट्टी चढ़ा देनी उचित है। निरा देनेसे खेतकी घास प्रभृति साफ होजाती है और मिट्टी भी नरम तथा पोली रहती है। चीनावादामकी खेतीके लिये खेतकी मिट्टी जितनीही पोली रहे, उतनाही अच्छा है, क्योंकि पोली मिट्टीमें चीनावादाम भली भांति उत्पन्न होती है। यह वादाम मिट्टीके भीतरमें ही उत्पन्न हुआ करती है। इसलिये जब देखा जाय, कि इसको शाखा प्रशाखा ८ इंचों परिमाण तक बढ़ी है; तबही उन शाखाओंकी ग्रन्थियोंकी भली भांति मिट्टी द्वारा ढांक देवे। सावन अथवा भादों महीनेके शेषमें जब वर्षाका समय शेष होता जाने, उसी समय मिट्टी चढ़ानेका उपयुक्त समय है। इस प्रकारसे मिट्टी

चढ़ाना चाहिये कि, जिससे इसकी सम्पूर्ण शाखाओंकी डंटियां मिट्टीसे दब जावें ; केवल उनके अग्रभाग ही चार इंच परिमाणसे मिट्टीके बाहिर रहें । जब तक इसकी पौधे तेजस्वी रहें अर्थात् उनके शाखाओंकी वृद्धि हो, तब तक इसी प्रकार शाखाओंकी अग्रभागको छोड़कर मिट्टी चढ़ानो उचित है । इसके सम्बन्धमें खेत निराना और शाखाओंकी डंटियों पर मिट्टी चढ़ाना बहुत यत्न और सावधानीके कार्य हैं । इस समय ऐसी सावधानीसे कार्य करे कि, नीचेकी सोरें जो वादाम रूपसे परिणत होंगी, कटने न पावें । बरसातके समयमें मिट्टी चढ़ाने वा निरानेका बहुत असुविधा रहता है, क्योंकि उस समय जमीनकी मिट्टी बहुत गीली रहती है और निरानेसे मिट्टीके बड़े बड़े चक्के निकलते हैं, इसलिये इसके खेतकी जमीनको सूखी अवस्थामेंही निरानेसे अच्छा होता है । इसकी शाखाओंकी डंटियों पर मिट्टी चढ़ानेका यह प्रयोजन है कि, उससे शाखाओंको वृद्धि नहीं होती, तथा उनका तेज घटनेसे उनकी डंटियोंसे सोरें उत्पन्न होती हैं और पत्ते सड़कर जमीनकी उर्वरताशक्तिको बढ़ाते हैं । इसलिये ऐसे समयमें इसकी खेतमें जल सींचनेकी आवश्यकता नहीं रहती ।

कुआर. कातिक महीनेमें मटरके फूलकी भांति इसकी भी पौले रङ्गके फूल फूलते हैं ; उसके बाद दो तीन महीनेमें इसकी लताओंका वैसा तेज नहीं रहता । इसी समय शाखाओंकी डंटियों वा गांठोंसे निकली हुई सोरें मिट्टीके भीतर वादाम रूपमें परिणत होती हैं । पौष महीनेमें वादाम पक जातौ हैं, उस समय खुरपी प्रभृतिके द्वारा मिट्टी खोद कर वादामको निकालके धूपमें सुखा लेते हैं ।

यह चीनावादाम अनेक प्रकारसे हम लोगोंके व्यवहारमें आती है । इसके तेलसे साबुन तथा अन्यान्य सुगन्धित चीजें बनती हैं,

इसलिये यह विदेशोंमें रफ्तानी हुआ करती है । अनेक देशोंमें इसका तेल, जलपार्श्व-तेलके परिवर्तमें व्यवहार किया जाता है । पशुगण इसकी लताओंको बड़े चावसे खाते हैं । चीनावादासको लोग भूनके वा इसके बीजोंका तेल निकालकर कर भी खाते हैं, चीनदेशवासी इसके तेलसे दीपक जलाया करते हैं । जो हो, हमारे देशमें इसको खेतीसे विशेष लाभ होनेकी सम्भावना है ।

—०—

अमेरिकाका बड़ा मिर्चा ।

—१९००—

इस देशमें हमलोग जितने प्रकारके मिर्चा बोते हैं, उनके बीच यह अमेरिकन मिर्चा सबसे अच्छा और बड़ा है । अमेरिकाके प्रसिद्ध बीजविक्रेता लेशड्रथ एण्ड कम्पनीके यहांसे प्रतिवर्ष इसके बीजको भारतवर्षमें प्रचार करनेके अभिप्रायसे हम कलकत्ता, ---“काशीपुर-कृषिशाला”में मँगाया करते हैं । हमारे देशमें इसको खेती करनेसे विशेष फायदा हो सकता है । देशीमिर्चाकी भांति इसका तीखापन ज्यादा तीव्र नहीं होता । यह मिर्चा देखनेमें बहुत सुन्दर होता है । देशी मिर्चाकी भांति इसकी भी आवादप्रणाली है, एकही खेतमें ज्यादा दिनतक मिर्चाको खेती करनेसे उस जमीनकी उपजाऊशक्ति घट जाती है । इसलिये प्रतिवर्ष एकही खेतमें इसे रोपण करना अनुचित है । मिर्चाके खेतकी उपजाऊशक्तिको ठीक रखनेके लिये प्रतिवर्ष खाद डालना चाहिये । साधारण रीतिसे गोबर की खाद डालनेसे यथेष्ट उपकार होता है ।

भादों वा आश्विन महीनेमें इसके बीजको जखिरामें डालकर पौधे तैयार करते हैं । बीच बीचमें जल सींचनेकी जरूरत रहती

है । जब पौधे ४।५ अंगुल बड़े हो जाते हैं, तब उन्हें जखिरामेंसे उठाकर खेतमें रोपण करना चाहिये ।

खेतमें मिर्चीके पौधोंको एक एक हाथके तफावत पर रोपनेसे अच्छा होता है । यदि इसके पेड़में कौटादि लगें, तो उन वृक्षों पर तथा खेतमें राख छोट देनेसे कौटादि नष्ट होजाते हैं । पौष महीनेसे इसके पेड़ोंमें फल लगना आरम्भ होता है । यह अमेरिकन मिर्ची भी कच्ची हालतमें सज रङ्ग रहता है ; किन्तु अच्छी तरह पकने पर खूब माल होकर वृक्षकी शोभाको बढ़ाया करता है ।

—०—

अमेरिकन वा देशी तमाकू ।

भारतवर्ष तथा अन्यान्य देशोंमें तमाकू का विशेष प्रचार दीखता है । इसलिये तमाकू की खेती करनेसे विशेष फाइदा होनेकी संभावना है, इससे विस्तारसहित तमाकूकी खेतीका विवरण लिखते हैं ;—

जल सींचनेका सुविधा हो, वैसे स्थानमें तमाकूकी खेती करनी चाहिये । तमाकूका खेत अन्यान्य फसलोंके खेतोंकी अपेक्षा ऊँचा होना चाहिये । क्योंकि तमाकूके खेतमें वर्षाका पानी लग जानेसे तमाकूके पक्षमें बहुत अनिष्ट हुआ करता है । खेतकी दुमट मिट्टी हो, तो अच्छा होता है ।

उपरोक्त रीतिसे खेत निर्वाचन करके उसे कातिक महीनेके पहिलेसेही जोतना उचित है । कातिक महीनेके पहिले सप्ताहमें एकबेर जोतकर फिर उस महीनेके शेषमें एकबेर वा दो बेर जोतना चाहिये, उसके बाद प्रति पक्ष वा पन्द्रह दिनके बाद

खेतको एक एक बेर जोतना उचित है। खेतमें किसी तरहकी घास वगैरह रहनेसे निकाल कर फेंक देना चाहिये। इसी तरह जोतनेके बाद फागुन महीनेमें खेतके बीच खाद डालना उचित है। इसके लिये घरके भाड़न बहारनकी मिट्टी वा सड़ा हुआ गोबर और तालाव प्रभृतिके कीचड़की सुखार्द रुई मिट्टीकी खाद उपयोगी समझी जाती है।

उपरोक्त तीन प्रकारकी खादके सिवाय अन्यान्य प्रकारकी खादोंको तमाकूके खेतमें डालना उचित नहीं है। कोई कोई तमाकूके खेतमें खलीकी खाद डालनेकी परामर्श देते हैं, पर हमारी समझमें खलीकी खादसे तमाकूके फसलकी हानि हुआ करती है।

खलीकी खादसे तमाकूके पौधे शीघ्रतासहित बढ़ जाते हैं, इसलिये उनके पत्ते खूब परिपुष्ट नहीं हो सकते, अपुष्ट तमाकूके पत्ते सूखने पर तत्काल आखादनयुक्त होते हैं। इसलिये तमाकूके खेतमें खलीकी खाद डालना किसी प्रकार भी उचित नहीं है।

खेतमें खाद डालनेके बाद खादके सहित खेतकी मिट्टीको जोतकर एकमें मिला देते। वर्षाकालमें विशेष सावधान होकर खेतको रक्षा करनी चाहिये। वर्षाकालमें खेतका पानी खेतमेंसे निकल जाने पर उस जमीनकी उपजाऊशक्ति घट जाती है। खेतसे लगाय भादों महीनेतक कृ. महीनेके बीच प्रति महीनेमें एक बेर खेतको जोतना चाहिये, इस प्रकार खेतको बेर बेर जोतनेसे उसमें घास प्रभृति उत्पन्न नहीं हो सकती। वर्षाकालमें खेत जोतनेका बहुतही असुविधा रहता है। वर्षाके पानीसे मिट्टी कीचड़मयी होनेसे उसे जोतनेसे कुछ फल नहीं होता, बल्कि उससे हानि हुआ करती है। वर्षाकालमें जब मिट्टी सूखी अवस्थामें रहे, तब उसे हलसे जोत सकते हैं।

। उपरोक्त रीतिसे खेत तैयार होने पर भादों महीनेके पहिले तमाकूके बीज को जखिरा में डालकर पौधोंको उत्पन्न करना चाहिये । जिस जमीनमें तमाकूके बीजको बोके पौधे उत्पन्न करने हों ; वह कुछ ऊँची होनी चाहिये । ऐसी जमीनमें प्रति कड़ा दस बारह सेरके हिसाबसे पुराने गोबरकी खाद मिट्टीके साथ मिलाकर छोड़ देना उचित है । अनन्तर जेठ, आषाढ़ और सावन महीनेमें सावधानीसहित तमाकूके जखिरामेंसे घास प्रभृतिको निराकर पृथक् कर देना उचित है । इसके बाद 'भादों' महीनेमें जब देखे कि, वर्षा होनेकी सम्भावना नहीं है । उसी समय जखिरामें बीज बोना चाहिये । बीज बोनेके पहिले अच्छी तरह जोत कर हेंगा देकर जखिराकी मिट्टीको खूब नरम वा पोली तथा समतल करके तमाकूका बीज वपन करना चाहिये ।

प्रति बीघाके लिये दस वा बारह तोला तमाकूके बीज जखिरामें वपन करनेसे ही यथेष्ट होता है । अर्थात् छोटी आकृतिवाले तमाकूके पौधोंके बीज १२ तोला और बड़ी आकृतिवाले तमाकूके पौधोंके बीज दस तोला बीघाके हिसाबसे जखिरामें बोये जाते हैं ।

तमाकूके बीज बोनेके बाद यदि वर्षा न हो, तो बीज बोने पर तीसरे दिन सांभके वखत भूँभरी द्वारा मिहीन धारसे जल सींचना जरूरी है । इस प्रकारसे सींचना चाहिये कि, जिससे जखिरामेंके सब बीज भीग जावें और जल जखिराकी क्यारीसे बाहिर निकल जावे । उपरोक्त प्रकारसे जल सींचने पर दो तीन दिन बाद बीज अंकुरित होकर पौधे उत्पन्न होते हैं । प्रायः पांच छः दिनमें सब पौधे निकल आते हैं । किन्तु अंकुर निकलनेसे ही निश्चिन्त न रहें । उस समय प्रति दिन सन्ध्या और सबेरे दो घंटेतक जखिराके कार्यमें मनोयोगी होना उचित है । इस समय जखिराके बीच जो सब घास प्रभृति रहें । उन्हें निराकर अलग फेंक देवे; क्योंकि ।

इन घास प्रभृतिके पानी तमाकूके पौधोंकी पत्तियोंमें लगनेसे उनके पत्ते सड़ जा सकते हैं । जब पौधे कुछ बड़े हों, तब उन्हें जखिरामेंसे निकालकर तमाकूके पौधोंको रोपनेके लिये पहिलेसेही तैयार हुए खेतमें रोपण कर देवे । समय समय पर जल सींचने और खेतमें उत्पन्न घास वगैरह को निराकर पृथक् करनेकी आवश्यकता रहती है । इसकी खेती भारतवर्षमें बहुतायतसे होसकती है । इसलिये इसके विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं समझते ।

— ० —

रूटा-बागा ।

— १७५७ —

रूटाबागा एक प्रकारका शलगम विशेष है । यूरोप, अमेरिका प्रभृति भिन्न भिन्न स्थानोंसे इसके बीज प्रतिवर्ष कलकत्ता “काशीपुर-कृषिशाला”में भंगाय जाते हैं । अमेरिकाके बीज हमारे देशके लिये विशेष फलदायक हैं, क्योंकि अमेरिकाके जल वायुके सहित हमारे भारतवर्षीय जल वायुमें बहुत कुछ समभाव देखा जाता है ।

पहिले कह आये हैं कि, शलगम कई श्रेणीमें विभक्त हैं । उनके बीच यह रूटाबागा नाम शलगम सर्वश्रेष्ठ है । इसके मूलकी अच्छी तरकारी हुआ करती है । शलगमके पत्ते लाल सफेद सब प्रभृति आभायुक्त हुआ करते हैं ।

हमारे देशमें भादों महीनेके शेषसे लगाय आश्विन महीने तक रूटाबागा नाम शलगमका बीज बोना उचित है । विलम्बसे बोनेसे इसके पौधे उत्पन्न होते हैं ; परन्तु असमयमें पक जानेसे इसके मूल बड़े नहीं होसकते ।

रूटाबागाके बीज जखिरामें बोके पौधे तैयार करके अन्य खेतमें रोपे जाते हैं, अथवा अच्छीतरह जोते हुए खादयुक्त खेतमें एकवारगी

कीनेसे भी काम चल सकता है। ध्यान रहे कि, इसके पौधे बहुत घने न रहें। चाहे रोपे हुए हों, चाहे बोये हुए रहें। दस दस अंगुलके तफावतसे एक एक पौधोंको रखना चाहिये। रूटाबागा शलगमके खेतकी मिट्टी खूब नरम, पोली तथा गहराई युक्त जोती रहनेसे इसके मूल सुगमताईसे बढ़कर बड़े होते हैं। काड़ी मिट्टी होनेसे इसके मूल ज्यादा नहीं बढ़ सकते। रूटाबागाके खेतमें घास प्रभृति उत्पन्न होने पर उसे निराकर पृथक् कर देवे। मिट्टीको सूखती हुई देखकर जलसे सींचना चाहिये। जैसे जल ज्यादा सींचनेसे फसलकी हानि होती है, वैसेही जल न सींचने पर भी फसलकी लुक्सानी हुआ करती है।

इस देशके शलगमके पेड़ोंसे बोज संग्रह किया जा सकता है, लेकिन उससे अच्छा शलगम उत्पन्न नहीं होता, और इसके मूल भी अमेरिकावाले शलगमके बोजकी भांति अच्छे नहीं होते।

—०—

अदरक ।

—~—

अदरककी आबादीसे विलक्षण लाभ होनेकी सम्भावना है। क्योंकि अदरक प्रचुर-परिमाणसे उत्पन्न हुआ करता है। एक बीघा जमीनमें प्रायः चालीस मन पर्यन्त अदरक उत्पन्न हो सकता है। यदि अल्प परिमाणसे उत्पन्न हो, तो भी प्रति बीघामें २० बीस मन निश्चयही उत्पन्न हुआ करता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। अदरक अनेक प्रकारसे हम लोगोंके व्यवहारमें आता है ; देशीय विदेशीय विविध प्रकारके औषधोंमें अदरकका व्यवहार हुआ करता है।

कुछ ऊँची तथा ज्यादा दिनकी पड़ती जमीनमें अदरकको खेतो अच्छो हो सकती है। अदरक आबाद करनेके लिये पहिले खेतको दुरुस्त कर लेना चाहिये। जिस खेतको नीचेके तहकी मिट्टी बालुई तथा ऊपरी तहकी मिट्टी पत्थी वा दुमट हों, वैसेही खेतमें अदरकको बोना वा रोपना उचित है। खेत अच्छी तरह जोता रहे, मिट्टी खूब मिहीन और पोली रहे ; अदरकके खेतमें पुराने गोबरकी खाद डालनेसे फाइदा होता है।

अदरकके किसी तरहके बीज नहीं होते, उसकी मूलसेही बीजके कार्य चलते हैं। अदरकके मूलमेंसे आंखयुक्त छोटे छोटे अंशोंको पृथक् पृथक् तोड़कर रोपण करना होता है।

वैशाख महीनाही अदरक रोपण करनेका उपयुक्त समय है। यदि किसी कारणसे वैशाख महीनेमें न रोपण किया जाय, तो जेठ महीनेके भीतरही निश्चय रोपण करना चाहिये।

पहिलेसे ही जोतकर दुरुस्त किये हुए समतल खेतमें एक एक फिटके फासिले पर एक एक अदरक रोपण करना उचित है। अदरक रोपनेके समय सावधान रहे कि, अदरकके मूल अंश जो खेतमें रोपण किये जाते हों, उनकी आंख ऊपरकी ओर रहें, रोपण करनेके अनन्तर अदरककी आंख जो ऊपरकी ओर हों, उन्हें मिट्टीके चूर्णसे ढांक देना चाहिये।

इस प्रकारसे अदरक रोपनेके थोड़े दिनके बादही अङ्कुर बाहिर होते हैं। जेठ महीनेके शेष अथवा आषाढ़ महीनेके प्रथम पक्षतक जब पौधे कुछ बड़े होजायँ, उसी समय एक बेर खेत निरा देनेसे अच्छा होता है, इसके बाद फिर अदरकके खेतकी अन्य किसी प्रकारसे परिचर्या नहीं करनी होती। तब खेतके सम्बन्धमें सर्वदा सावधान होकर दृष्टि रखना प्रत्येक कृषिकारीकाही विशेष कर्त्तव्य कार्य है। कुआर कातिक महीनेमें वर्षाके बाद जो कुछ घास वगैरः

उत्पन्न हुई हों, तो उन्हें खेतसे निकाल कर पृथक् कर देना उचित है। फागुन महीनेमें खेतमेंसे अदरकको खोदकर निकालना होता है। सावधानीसे यत्नपूर्वक अदरकको निकालना होता है, नहीं तो इसके मूल अंश पृथक् पृथक् टुकड़े रूपसे टूटकर निकलते हैं। अदरक तीन प्रकारके होते हैं, एक साधारण अदरक जो कि सर्वत्र व्यवहार होता है, दूसरा आम अदरक और तीसरा काला अदरक, सबके आवाद की रीति एक समान है।

जब पौधे कुछ बड़े हो जायं, उसी समय एक बेर खेत निरादनेसे अच्छा होता है, इसके बाद फिर अदरकके खेतकी अन्य किसी प्रकारसे परिचर्या नहीं करनी होती। तब खेतके सम्बन्धमें सर्वदा सावधान होकर दृष्टि रखना प्रत्येक कृषिकारोंका ही विशेष कर्त्तव्य कार्य है। कुआर कातिक महीनेमें वर्षाके बाद कुछ घास वगैरः खेतमें उत्पन्न हो सकती हैं, उस समय विशेष यत्न सहित उन घास प्रभृतिको खेतमेंसे निकाल कर बाहिर कर देना चाहिये।

फागुन महीनेमें अदरककी गांठोंको खेतमेंसे खोद कर निकालना होता है। यदि अदरककी गांठ यत्नपूर्वक न निकाली जाय तो उनकी गांठोंकी चाक टूट कर नष्ट हो सकते हैं।

अदरककी गांठोंको खेतमेंसे निकालनेके अनन्तर बीजके लिये अदरक रखना चाहिये, बीजके वास्ते अदरक रख कर बाकी अदरकोंकी आंखोंको घुरीसे पृथक् करके उन्हें जमीन वा खेतमें फैलाकर एकबेर जरा सुखा लेना उचित है। ध्यान रहे कि, जमीनमें अदरक सुखानेके समय वर्षा वा अन्य किसी प्रकारका पानी न लगने पावे। जल लगनेसे अदरक ज्यादा दिनोंतक नहीं रह सकते, बल्कि सड़ कर नष्ट होजाते हैं।

आम अदरक तथा कृष्ण अदरककी आवादप्रणाली भी ठीक

उपरोक्त साधारण अदरककी भांति है। गृहस्थ लोग यदि चेष्टा करें, तो प्रति गृहोंमें इसी रोपण करके अदरक प्राप्त कर सकते हैं। अदरक अनेक तरहके औषधों तथा मसाले प्रभृतिके साथ व्यवहार होता है।
































देशी मिर्चा ।

मिर्चाकी खेती भारतवर्षमें प्रायः सब जगह हुआ करती है। लेकिन ढाका, मैमनसिंह, कूचबिहार, राङ्गपुर, जलपाईगोड़ी, बाकरगञ्ज, यसोहर प्रभृति जिलामें इसकी प्रचुर परिमाणसे खेती हुआ करती है। ऊँची जमीनवाले खेतोंमें मिर्चाकी आवादी कर सकनेसे उसके लुत्तोंमें अधिक परिमाणसे फल उत्पन्न हुआ करते हैं। इसलिये लाभकी भी ज्यादा सम्भावना रहा करती है। बहुत थोड़े ही दिनोंके बीच मिर्चाके पेड़ोंमें फल उत्पन्न होने लगते हैं। दुमट मिट्टीवाले खेत मिर्चाके आवादीके लिये उत्तम समझे जाते हैं। वैसेख वा जेठ महीनेसेही मिर्चा रोपण करनेके लिये खेत निश्चारित कर रखना चाहिये। ध्यान रहे कि, मिर्चाके खेतके चारों ओर बड़े बड़े वृक्षादि न रहें, क्योंकि वृक्षोंकी छाया मिर्चाके खेतोंमें पड़नेसे पौधे सतेज नहीं रह सकते। और न उनमें भलीभांति फल फूलही लग सकते हैं। जेठ महीनेमेंही जलकी वर्षा होने पर अथवा बिना वर्षाके ही मिर्चाके खेतकी भलीभांति हलसे जोतकर मिट्टीको समतल कर देवे। खेत जोतने पर उसमें जो कुछ घास मोथा प्रभृति लहनादि हों, उन्हें निकाल कर खेतसे

बाहर कर देवे। इसके अनन्तर खेतकी मिट्टीमें गोबरकी खाद मिलाकर छोड़ दे। अनन्तर एक बेर जलकी वर्षा हो जानेसे जब खेतकी मिट्टी भीगकर खादके साथ मिल जाती है, तब वह खेत बीज बोनेके योग्य हो जाता है। जब मिट्टी भलीभांति सरस हो जाती है, तब उस खेतके एक बगलमें एक छोटा सा गढ़ा खोद कर उसीमें मिर्चाके बीजोंको खूब सावधानीसे बोये। वर्षा कालमेंही गढ़ेके भीतर बीजोंको बोना होता है, पर सावधान रहें कि, वह गढ़ा वर्षाके पानीसे भर न जाय। इसलिये जिससे गढ़ेके भीतर पानी इकट्ठा न होने पावे, उसके निमित्त विशेष दृष्टि रखनी चाहिये। जब गढ़ेके भीतर मिर्चाके पौधे ५ या ६ इंच बड़े हो जायँ, तब उन्हें उस गढ़ेमेंसे उठाकर खेतमें रोपण करें। खेतमें एक एक हाथके फासिले पर कतारकी कतार मिर्चाके पौधोंको रोपण करना चाहिये। वृक्षोंके नीचे खेतमें जिस प्रकार घास इत्यादि न उत्पन्न होने पावें, उसके विषयमें विशेष ध्यान रखें। यदि घास, फूस, मोथा इत्यादि खेतमें उत्पन्न होते दिखाई दें, तो उसी समय उन्हें खेतमेंसे निकाल कर बाहर करा दें। बीच बीचमें मिर्चाके पौधोंके मूल (जड़ों) की मिट्टीको निराकर पोली कर देनी उचित है। क्योंकि मिट्टी जितनी ही नरम और पोली रहेगी, पौधे उतनीही शीघ्रतासे निज खुराकको जमीनके अन्दरसे खींच कर हृष्ट पुष्ट और तेजस्वी होते हैं।

आषाढ़ महीनेमें मिर्चाका बीज बोना होता है; भादों वा कुआर महीनेमें इसके पौधे बड़े बड़े हो जाते हैं। अनन्तर कार्तिक महीनेमें उपरोक्त गढ़ा वा बेहनौर तथा जखिरामेंसे पौधोंको उठाकर खेतमें रोपण करना होता है। मिट्टी नरम और कुछ रसीली रहनेसे पौधोंको रोपण करना चाहिये। जबतक मिट्टी सरस रहती है, तबतक जल सींचनेकी आवश्यकता नहीं होती। मिट्टी सूखने

पर बीच बीचमें निराने और जल सींचनेकी जरूरत हुआ करती है। अगहन महीनेमें मिर्चाका पेड़ फलोंसे परिपूरित होजाते हैं। रोपनेके तारतम्य अनुसार कार्तिक महीनेमेंही मिर्चाके पेड़ोंमें फल उत्पन्न होजाते हैं। जब मिर्चाके फल पकते हैं, तब उस खेतकी ऐसी अपूर्व शोभा होती है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यद्यपि अगहन महीनेमें प्रायः सब पेड़ोंमें ही मिर्चाके फल कच्चे रहते हैं तथापि मिर्चाके फलोंको तोड़ लेना बहुत जरूरी है। क्योंकि पेड़ोंके पहिली बारके फलोंको तोड़ लेनेसे जो दूसरी बारके फल पेड़ोंमें उत्पन्न होते हैं, वे पहिली बारकी अपेक्षा दूने हुआ करते हैं, इसे हमने भलीभांति आजमाया है। तीन महीने तक मिर्चाके पेड़ोंमें भलीभांति फल उत्पन्न हुआ करते हैं। इसके पेड़ोंका यह विशेष गुण है कि, प्रत्येक महीनेमें ही उन पेड़ोंमें नये फल उत्पन्न हुआ करते हैं। कृषिकार लोग मिर्चाके खेतसे बहुत सा मिर्चाका फल पाया करते हैं, तब उन्हें पेड़ोंमेंसे तोड़ कर भलीभांति धूपमें सुखाना होता है और रातके वक्त ओसमें फैला देते हैं। अनन्तर उन्हें थैलोंमें बांध कर जांत वा अन्य किसी भारी पत्थर प्रभृतिसे दान कर रखना होता है; इस प्रकार रखनेसे मिर्चाके फल नरम चिकने तथा घोर लाल रङ्गके बने रहते हैं। यदि इस प्रकारसे मिर्चाके फल न रक्खे जायँ, तो उनके रङ्गमें बहुत तारतम्य हुआ करता है। मिर्चाकी खेतीमें लाभ भी कमती नहीं होता। इसमें दो दफे तक हल चलानेका खर्च तथा मजदूरीकी मजदूरी और एक बीघे जमीनकी मालगुजारी प्रभृति जोड़नेसे साधारण रीतिसे २०) रुपये खर्च पड़ते हैं, एक बीघा जमीनमें तीन महीनेके बीच यदि मिर्चाके फल बहुतही कम हों, तो भी १० दश मनसे कम नहीं होते। मिर्चाकी विक्री यदि प्रति मन ७) सात रुपये हिसाबसे भी मान लें, तो एक बीघा साधारण

मिर्चाके खेतसे १० दस मन मिर्चाको कीमत ७०) सत्तर रुपये होता है ; उसमें से भूमिकर तथा मजदूरी बगैरः २०) बीस रुपये बाद देनेसे भी १ एक बीघा खेतके मिर्चाके फलोंसे ५०) पचास रुपये लाभ होता है । बहुतेरे भले आदमियोंके लड़के दस बारह रुपयेकी नौकरीके लिये मारे मारे फिरते हैं, वे लोग यदि एक बेर इस स्वाधीन जीविकाकी ओर ध्यान देकर इस स्वाधीन जीविका (कृषिकर्मा) को अवलम्बन करें, तो उन्हें वृथा दस बारह रुपयेकी नौकरीके लिये दूसरेकी गुलामी न करनी हो और उनके जीवनका समय भी सुख स्वच्छन्दतासे व्यतीत होजाय । कलकत्ता,— “काशीपुर कृषिशाला” में कई प्रकारके मिर्चाके बीज सदा सर्वदा विक्रयार्थ उपस्थित रहते हैं ।

—०—

हल्दी ।

—०—

हल्दीकी खेती करनेके लिये दुमट तथा बालुई एटल मिट्टीवाले खेतही उपयुक्त समझे जाते हैं । केवल एटलअथवा बालुई मिट्टीवाले खेतमें हल्दी अच्छी नहीं होती । ज्यादा दिनोंकी पड़ती जमीनमें हल्दीकी फसल बहुत अच्छी और अधिकताके साथ हुआ करती है । यदि ज्यादा दिनकी पड़ती जमीन न मिले, तो दो एक वर्षकी पड़ती जमीन भी हल्दीके वास्ते अच्छी समझी जाती है । जिस जमीनके खेतमें बाढ़ वा बूड़ाका पानी एकत्रित होता है, वैसे जमीनमें कदापि हल्दी उत्पन्न नहीं हो सकती । क्योंकि हल्दीके मूलमें पानी इकट्ठा होनेसे वह समूल नष्ट हो जाती है । इसलिये

जिससे जल्दीके पौधोंके नीचे जल एकत्रित न होसके, वैसी ऊँची जमीनवाले खेतोंमें हलदीकी खेती करनी चाहिये ।

जिस जमीन वाले खेतमें हलदीकी खेती करनी हो, उसकी मिट्टीको कमतीसे कमती एक फिट तककी गहराईसे खोदके उलट पुलटकर मिहीन धूलकी तरह कर देनेी चाहिये । जानना चाहिये कि, कार्तिक अथवा अगहन महीनेमें ही हलदीके खेतकी मिट्टीको फावड़ोंसे खोदकर उलटना होता है । उसके बाद माघ फागुन अथवा चैतमें फावड़ोंसे खोदकर वा हलसे जोतकर तीन चार बेर उस खेतमें हेंगा चलाकर मिट्टीको समतल कर देवे । पर ध्यान रखना चाहिये कि, हलदीके खेतमें यदि छोटे छोटे मिट्टीके ढेले रहें, तो उस जमीन वा खेतमें हलदी अच्छी उत्पन्न हुआ करती हैं । हलसे जोतनेकी अपेक्षा फावड़ोंसे खोदकर खेतकी मिट्टीको दुरुस्त करके हलदीकी खेती करनेसे सुविधा होता है ।

वैशाखके शेष पक्ष अथवा जेठ महीनेमें तथा आषाढ़के प्रथम पक्ष तक जलकी वर्षा होने पर हलदीके रोपनेका अच्छा समय समझा जाता है । इसके बाद हलदीकी गांठ रोपण करनेसे पौधे निस्तेज होते हैं ; इसलिये उनके नीचे हलदी गांठ अच्छी नहीं होती । हलदीकी गांठही मुख्य करके बीज रूपसे व्यवहृत हुआ करती है, खेत तैयार होने पर उसके एक ओरसे लगाय दूसरे ओर तक एक एक हाथके फासले पर पांच छः अंगुल गहरो सीधी नाली बनाकर उसके बीच पन्द्रह सोलह अंगुलके फासिले पर एक एक हलदीके बीज अर्थात् गांठको बोके उसके ऊपर तीन चार अंगुल ऊँची मिट्टी चढ़ा देना होता है । कृषिकार लोग नाली बनाना तथा हलदीके बीज वा गांठोंको रोपन करना एक साथही किया करते हैं । वे लोग पहले एक नाली बनाकर उसके बीच हलदीको उचित रीतिसे बो देते हैं और दूसरी नालीकी मिट्टी

उस बोर्ड हुई हलदीकी नालीमें छोड़ते जाते हैं। ऐसा करनेसे सहजमें ही हलदीका रोपण कार्य सम्पन्न हुआ करता है। हलदीके खेतमें नाली बरहा वा क्यारी कुत्ता बना देनेसे और भी अच्छा होता है, ऐसा करनेसे यदि खेतमें पानी एकत्रित हो, तो उस नालीके जरिये बाहिर हुआ करता है ; जिससे कि हलदीका खेत जितना सूखा रहे, उतनाही अच्छा होता है।

किसी किसी स्थानमें लम्बाई चौड़ाईके हिसाबसे आध आध हाथके तफावतसे हलदीके बीज (गांठ) को रोपण करनेकी रीति प्रचलित है, किन्तु वह अच्छी व्यवस्था नहीं है ; इससे हलदीके पौधे ज्यादा घने होते हैं, और उन पौधोंके मूलमें हलदीकी गांठ भी कम उत्पन्न होती है। विशेष करके उत्पन्न हुई हलदीकी गांठोंको फावड़ोंसे खोदकर खेतमेंसे निकालनेके समय बहुतेरी गांठें कट जाती हैं। हलदीके पौधोंके मूल पर मिट्टी चढ़ा देना होता है, जिससे कि, उनकी जड़ोंमें पानी एकत्रित न होवे ; क्योंकि जड़ोंमें जलके एकत्रित होजानेसे हलदीके पौधोंके नष्ट हो जानेकी सम्भावना रहती है।

पूर्वोक्त प्रकारसे बीज रोपण करके, उसकी ऊपरकी मिट्टीको हाथसे यदि समान न की जावे, तो भी कुछ नुकसानों नहीं हो सकती, क्योंकि खेतमें जो मिट्टीके ढेले रहते हैं, वे वर्षाके पानीसे स्वयं मिलकर समान होजाते हैं। अंकुर उत्पन्न होके जब इसकी पौधे कुछ बड़े होते हैं, तब खेतको निरानेकी आवश्यकता हुआ करती है, अर्थात् पौधोंके उत्पन्न होने पर एक महीनेके बाद एक बर खेतको निराकार उसमें उत्पन्न हुई घास प्रभृतिको बाहिर कर दे, और पौधोंको जड़ोंपर मिट्टी चढ़ा देवे। खेत निरानेके समय सावधान रहना चाहिये कि, पौधोंको जड़में आघात न लगने पावे तथा पौधे कटने या टूटने न पावें। प्रथम बार निरानेके अनन्तर

बीस पच्चीस रोजके बाद फिर एकबेर खेतको निरा देना उचित है । निरानेके समय खेतमें की घास वगैरः को किसी प्रकार भी खेतमें न रहने देना चाहिये ; बल्कि घासोंके मूल पर्यन्तको खेतमेंसे निकाल बाहर कर देना उचित है । दो बेर निरा देनेके अनन्तर हलदीकी पौधोंके चौतरफा मेंड़ा बना दे वा मिट्टी चढ़ा देवे । जब इसके पौधे बड़े होजाते हैं, तब उनके नीचे घास प्रभृति नहीं उत्पन्न हो सकती । घास यदि उत्पन्न हों, तो वे खयंही नष्ट हो जाती हैं ; यदि दैवात् घास उत्पन्न होजावे, तो हाथसे उखाड़ कर फेंक देना चाहिये । इसके अनन्तर हलदीकी पौधोंके लिये और किसी प्रकार यत्न करनेको विशेष जरूरत नहीं होती । तब इस बातसे सावधान रहना चाहिये कि, पश्चादि हलदीकी पौधोंको नष्ट न कर दें । पश्चादिकोंसे बचानेके लिये बहुतेरे विज्ञ कृषिकार हलदीके खेतके चौतरफा मेंड़ासे घेर देते हैं, जिससे कि, मेंड़ाको तोड़कर पश्चादि हलदीको खेतमें प्रवेश नहीं कर सकते । हलदीकी खेतमें खाद डालनेकी ज्यादा जरूरत नहीं समझी जाती ; क्योंकि ज्यादा दिनोंतक इसके खेत जो कि, पड़ती रहते हैं, उनकी उपजाऊशक्ति खयंही बढ़ी चढ़ी रहा करती है । यदि नितान्तही खाद डालनेकी जरूरत हो, तो सड़े हुए पत्ते घास फूस तथा थोड़े सूखे गोबरके चूराकी खाद व्यवहार की जासकती है । गोबरकी खाद डालनेसे पौधे बहुत बड़े होजाते हैं, इसलिये इनके नीचे वा मूलमें अच्छी हलदी की गांठ उत्पन्न नहीं हो सकती, इससे ज्यादा जोरदार हलदीके खेतमें गोबरकी खाद डालना उचित नहीं है । गोबरकी खाद डालनेसे कभी कभी हलदीकी पौधोंमें कड़ा नाम एक प्रकारके कीट लग जाते हैं, ये कीट हलदीकी पौधोंको काट देते हैं ; इसलिये हलदीके खेतमें किसी प्रकारकी खाद न डालना ही अच्छा है । खाद डालनेसे

हलदी की गांठ मोठी होती हैं, लेकिन उनमें जलीय अंश अधिक होजाता है, इसलिये वे सूखने पर तेलमें कमती हुआ करती हैं ।

बंगाल देशमें चारि जातीय हलदी देखी जाती हैं । जैसे— पांकालिया, काजला, हुक्मी और वाघहाता । इनके बीच प्रथमोक्त दो जातीय हलदी हो सर्वोत्कृष्ट हैं । कछाड़ प्रदेशमें “कामराजा” नाम एक जातीय हलदी मिलती है, यह हलदी अत्यन्त मोटी होती है, किन्तु सिद्ध करने (उवालने) पर इसकी गांठ तैयार नहीं होती ।

माघ महीने अथवा उससे पहिले जब हलदीके पेड़ सूख जाते हैं, तब उन्हें स्थानान्तरित करे, वा जला देवे । अनन्तर प्रत्येक पेड़ोंको जड़ोंको मिट्टीको खोद कर हलदीको गांठोंको खेतमेंसे निकालना होता है । इस प्रकार हलदीको खेतमेंसे निकालनेके साथही साथ बड़ी गांठों तथा छोटी छोटी गांठोंको पृथक् पृथक् रखना चाहिये । खेतमेंसे निकालनेके समय हलदीकी गांठोंमें जो छोटी पूती मिट्टी समेत लगी रहती हैं, उन्हें इसी समय अच्छी तरह झाड़ लेना होता है और उन्हें बीजके लिये किसी वृक्षकी शीतल छायामें एकत्रित करके पोवालसे ढांक रखना होता है ।

हलदीको सिद्ध कर (उवालकर) के सूखाकर उसकी गांठोंको तैयार करना कुछ कठिन कार्य है । किस प्रकार हलदी सिद्ध करनी होती है और उस सिद्धकी हुई हलदीको किस प्रकार सुखाना होता है, जिन लोगोंने आंखसे उसे नहीं देखा है वा स्वयं नहीं किया है, वे लोग स्वतः प्रवृत्त होकर इस कार्यमें प्रवृत्त न होंगे । सिद्ध करने (उवालने) के समय इधर उधर होनेसे तनिक भी ताव खराब होजानेसेही सब नष्ट होजाता है । वस्तुदर्शी कृषकके बिना सहजमें यह कार्य सम्पन्न होना कठिन है । किसी

पुस्तकको पढ़ कर उतावली सहित हलदी सिद्ध करनेके विश्वास-
वलसे जो अज्ञ लोग इस कार्यमें अग्रवर्ती होंगे, वे प्रायः कृतकार्य
न ही सकेंगे । हलदी कम सिद्ध होनेसे उसकी अच्छी गांठ तैयार
नहीं होती और ज्यादा सिद्ध होनेसे उसका रस जल जाता है,
जिससे मालकी कीमत कमती हुआ करती है ।

—०—

हलदी सिद्ध करने और सुखानेकी

रीति ।

हलदी सिद्ध करनेके पहिले नाद टोकरी “तिकटा” संग्रह करके
रखना चाहिये, इन्हे हलदी सिद्ध करनेकी उपकरण (सामग्री)
कहनेसे भी अत्युक्ति नहीं होती । जिस जगह हलदी सिद्ध करनेके
लिये आखा किखा “वाइन” काटा जाय हलदीका परिमाण
समझ कर आखा किखा “वाइन” काटना होता है, उसके थोड़ी दूरमें
नाद गाड़ कर उसके ऊपर “तिकटा” और टोकरी रखनी होती
है । हलदी सिद्ध होजानेसेही उसे शीघ्रता सहित उसी टोकरीमें
ढाल देना होता है । मंभारी हांडीही हलदी सिद्ध करनेके लिये
अच्छी समझी जाती हैं, पहिले हांडीके चारि भागके तीन भाग
को हलदीसे भरके उसमें गोबर मिला हुआ जल ढालना होता है ।
गोबर मिला हुआ जल न डालके केवल जलसे भी हलदी सिद्ध की
जासकती है, ध्यान रहे कि, यह जल हलदीके तीन अंगुल नीचे
तकही रहे । हलदीके बराबर हांडीमें जल ढालना अथवा जलसे
हांडीको सुहेमुह भर देना अथवा हांडीके मध्यमें स्थित हलदियों
को जलसे डूबा देना किसी प्रकार भी उचित नहीं है । इसी प्रकार

हांड़ी भरकी हलदी सिद्ध करना होगा । आगकी आंचसे जिस समय जलमें हलदी उबल उठे वा उत्ला आवे, उसी समय उसे हांडी समेत आगकी आंच परसे उतार कर टोकरीमें जल समेत डालना होता है । केवल इतनाही न समझना कि, एकबेर जल उबल उठनेसे हलदी उतलाने सेही सिद्ध होगई । बल्कि इस बातका ध्यान रखना चाहिके कि, गरम जलकी भाफ सब हलदियोंके ऊपर लगी है वा नहीं ; उसे भली भांति देख कर तब आखा (भट्टी) परसे हांडी सहित सिद्ध हलदीको उतार कर टोकरीमें डालना होता है । यदि देखे कि, ऊपरी हलदीमें अच्छीतरह गरम जलकी भाफ नहीं लगी है ; तो और एकबेर आंच वा आखा पर चढ़ाकर उत्ला जाने पर हलदीको उतारना होता है । दो बरसे ज्यादा जल उतलाने देना उचित नहीं है । इसके अनन्तर सिद्धकी हुई हलदियोंको एक जगह एकत्रित करके पहिले दिन उन्हें चटार्ने वा टाट प्रभृतिसे ढांक रखना चाहिये । दूसरे दिन उन सिद्ध हुई हलदीयोंको किसी घासयुक्त स्थानमें ३।४ अंगुल ऊंचे परिमाणसे फैला देना होता है ; और प्रत्येक चार दिनके अनन्तर उन्हें हिला डुलाकर उलट पुलट देना होता है । इसी प्रकार ४।५ बेर उलट पुलट देनेसेही सिद्धकी हुई हलदियोंका रस भर जाता है । उसी समय हलदियोंको बेलना होता है बिना बेली हलदीकी गांठीमें गोलापन नहीं आता, बल्कि गांठ चिपटी होजाती है । तीन चार बेर बेलनसेही हलदीकी गांठ भलीभांति लम्बी गोलाकृति वाली होजाती है । एक दिनमेंही ३।४ बेर बेलना नहीं होता । प्रथम दिन बेलनेके बाद २।३ रोजके अनन्तर फिर एकबेर बेलना होता है । बेलनेके बाद भी जबतक हलदीको गांठें नहीं सुखती, तबतक उन्हें धूपमें सुखाना होता है । भलीभांति सुख जाने पर उन सब हलदियोंको एकत्रित

कारके रखते अथवा धैलोंमें भर कर रख देते हैं । अनन्तर उचित कीमत पर विक्रय किया करते हैं ।

यदि खेतमें हलदीकी फसल अच्छी हो, तो प्रति बीघा खेतमें २० बीस मन सूखी हलदी हो सकती है । प्रति मन हलदी यदि ५) रुपये मनके हिसाबसे बिके, तो २० बीस मन हलदी की कीमत १६०) एकसौ साठ रुपये होती है । इसमें से भूमिकर तथा मजदूरी प्रभृतिका खर्च यदि ५०) पचास रुपये भी मान लें, तो भी एक बीघा खेतकी हलदीसे कृषकोंको प्राय ११०) एक सौ दस रुपये लाभ होनेकी सम्भावना रहती है । पर एकही खेतमें दो बेरसे ज्यादा हलदी रोपण करना उचित नहीं है, क्योंकि जिस खेतमें हलदी रोपण करते हैं, उसकी उपजाऊ शक्ति नष्ट होजाती है । इसलिये हलदीको खेतमें से निकालनेके अनन्तर उस खेतमें भली भांति बिना खाद डाले अन्य किसी प्रकारकी फसल बोना उचित नहीं है । माघ महीनेके भीतरही हलदी सिद्ध करनेका कार्य श्रेष्ठ करना होता है । हलदी सिद्ध करनेके समय हाड़ी समेत सिद्धकी हुई हलदीको जब टोकरीमें उभाल देते हैं, तब उसमेंका गरम जल टोकरीके नीचेसे नांदमें एकत्रित हुआ करता है । उसी गरम जलसे फिर हलदीको सिद्ध करनेसे वह बहुत सज्जमें तथा थोड़ेही समय के बीच सिद्ध होती हैं । कृषक लोग इसी गरम जलसेही हलदी सिद्ध किया करते हैं ; बेर बेर कच्चे जलमें नहीं सिद्ध करते ।

—०—

चैती खीरा ।

—००००००—

वालू मिली हुई मिट्टीवाले खेतमें चैती खीरा भलीभांति उत्पन्न हो सकता है । इस लिये जिस मिट्टीमें वालूका हिस्सा ज्यादा हो

उसमें ही चैती खीराका बीज बोना चाहिये । पौष महीनेके शेष वा माघ महीनेके प्रथम पक्षमें अच्छी तरह दो तीन बेर हल चलाना चाहिये । और उसके बाद हिंगा चलाकर जमीनके ऊँचे नीचे भागको समतल कर देना चाहिये । उसके अनन्तर दो तीन हाथके फासिले पर एक एक थाला बनाकर उसके बीच पाँच छः बीज बोकर उसके ऊपर अल्प परिमाणसे मिट्टीका चूरा चढ़ा देना उचित है । मिट्टीके चूर्णसे बीजोंको इस प्रकार ढांक देना चाहिये कि, वे बीज बाहिरसे न देखे जायँ । जिस रोज उक्त प्रकारसे बीज बोये जायँगे, ठीक उसके दूसरे दिन उन बीजोंके ऊपर अल्प परिमाणसे जल डाल कर केवल मिट्टीको शीतल रखना होगा ; इसी प्रकारकी प्रणालीसे बीज बोने पर तीन चार रोजके बीचमें ही खीराके पौधे बाहिर होंगे, पौधोंके बाहिर होनेमें कदाचित् कभी कभी विलम्ब भी हुआ करता है । जब पौधे कुछ बड़े होकर लताके आकारको धारण करेंगे, तब खीराके पौधोंके थालोंमें प्रचुर परिमाणसे जल सींचना होगा । यदि बड़े खेतोंमें चैती खीरा बोया जाय, तो उसमें नाली प्रभृतिके जरिये सम्पूर्ण खेतमें जल सींचनेकी आवश्यकता हुआ करती है । चैती खीराके पेड़ोंकी जड़ोंमें भली-भाँति खाद न डालनेसे यथोचित फलप्राप्तिकी सम्भावना नहीं रहती । पुराने गोबरकी खाद इसके लिये अच्छी समझी जाती है । तीन चार वर्षका पुराना गोबर जो कि देखनेमें मिट्टीके आकारकी धारण किये हो, उसी प्रकारके गोबरकी खादही चैती खीराके उपयुक्त है । एक एक अञ्जली खाद प्रत्येक थालामें डालना चाहिये । और थालेकी मिट्टीको अल्प परिमाणसे निराकर उसे फिर समतल कर देना होता है । इसमें जितने परिमाणसे खाद मिट्टीकी जरूरत रहती है, उरी परिमाणसे सार मिट्टी व्यवहार करना चाहिये । जिस रोज थालोंकी मिट्टीको निराकर पोली करे,

उसके दूसरे रोज प्रचुर परिमाणसे जल सींचना उचित है । इस प्रकारसे जल सींचना चाहिये कि, जिससे मिट्टी चार पांच रोज तक नरम रहे । प्रति सप्ताहमें थालोंकी मिट्टीको निराकर पोली कर देना उचित है । चैती खीराके थालोंकी मिट्टीको खूब सावधानीसे निराना उचित है ; क्योंकि सावधानीसे न निरानेसे खीरा के पौधोंकी कोमल कोमल जड़ें नष्ट होजा सकती हैं । जो सब पौधे मिट्टीमेंसे बाहिर होते हैं, उनके बीच यदि कोई पौधा बहुत हो निस्तेज बोध हो, तो उसे थालोंमेंसे एक बारगी निराकर फेंक देना चाहिये । जब इसके पौधोंकी लता बढ़ने लगें, तब उनकी शाखाओंको परस्पर पृथक् भावसे रखना होगा । कितने ही पौधों की शाखा प्रशाखा एकत्रमें लिपट जाती हैं, उनसे भलीभांति फल-प्राप्तिकी सम्भावना नहीं रहती ।

चैती खीराके बीजको बोनेके पहिले कमसे कम बारह घण्टे तक बीजोंको जलमें भिगा कर रखना चाहिये । ऐसी प्रणाली अवलम्बन करनेसे सब बीज बहुत जल्द अंकुरित होते हैं । जलमें बीजोंकी भिगानेसे जो सब बीज पानीमें उतरा आते हैं ; किसी तरहसे भी नहीं डूबते ; उन सब बीजोंको परित्याग करना चाहिये ; क्योंकि उन बीजोंके अंकुरित होनेमें किसी प्रकारकी सम्भावना नहीं रहती । उपरोक्त प्रकारसे चैती खीराके बीजोंकी बोने तथा उपरोक्त प्रकारसे उनके पौधोंको रक्षा कर सकनेसे प्रत्येक पौधोंमें प्रचुर परिमाणसे फल हो सकता है ।

शांक आलू ।

शांक आलूकी खेती बहुत सहजमें हो सकती है । दुमट मिट्टीमें शांक आलू अच्छी तरह उत्पन्न होती है । वालूमयी मिट्टीमें भी शांक आलूकी खेती हो सकती है ; किन्तु बालुई मिट्टीमें उत्पन्न हुई शांक आलू ज्यादा बड़ी नहीं होतीं लेकिन बालुई मिट्टीमें उत्पन्न हुई शांक आलूका स्वाद अन्यान्य मिट्टीवाले खेतोंमें उत्पन्न हुई शांक आलूसे मीठा हुआ करता है ।

शांक आलूके जमीनमें माघ फागुन और चैत महीने तक हलसे जोतना होता है । प्रत्येक महीनेमें दो बेर खेतको जोतना होता है, अर्थात् तीन महीनेके बीच छः बेर हल जोतनेकी जरूरत रहती है, छः बेर खेतको जोतनेके बाद मिट्टी वा जमीनकी अवस्थाको विचार कर वैशाख महीनेमें खेतमेंसे घास मोथा प्रभृति तृणोंको पृथक् कर देवे । उसके अनन्तर खेतमें हेंगा चलाकर मिट्टीको एक तरफको कुछ ढालुई कर देवे । जिस ओर जमीन वा खेतकी मिट्टीको ढालुई करे, उसी तरफको दो हाथ लम्बाई और आधे हाथकी चौड़ाईसे एक एक मेंड़ बांध देवे, इस प्रकारकी दो मेंड़ोंके बीच एक हाथ वा पौन हाथकी गहराईयुक्त एक एक नाली रहनी भी बहुत जरूरी है । नालीकी मिट्टीकोही उठा कर मेंड़ों पर चढ़ा देनेसे कार्य चल सकता है । ध्यान रहे कि, नालीकी जमीनसे खेतकी मेंड़ प्रायः एक एक हाथ परिमाणसे ऊंची रहें । मेंड़ोंकी पश्चादकी ओर कुछ ढालुई कर देनेसे उन मेंड़ोंके ऊपरके जल स्वयं ही टुलकर बगलकी नालीमें गिर सकेंगे ।

वैशाख महीनेके शेष किम्बा जेठ महीनेके प्रथम पक्षमें शांक आलूके बीजकी बोना उचित है । दो तरहसे शांक आलूके बीज बपन किये जा सकते हैं ।

अन्यान्य शाकीके बीजकी भांति शाक आलूके बीजको छोट देनेसे भी कार्य चल सकता है अथवा एक एक बीजको जगह जगह मिट्टीमें गाड़ देनेसे ही अच्छा होता है । बीजोंको खेतमें छोटनेसे प्रति बीघामें साढ़े तीन सेर परिमाणसे शाक आलूके बीज लगते हैं । और एक एक बीजोंको मिट्टीके भीतर रोपण करनेसे प्रति बीघा खेतमें अढ़ाई सेरके हिसाबसे बीज बोलनेसे ही यथेष्ट होता है । इसके बीजोंको बोनेके समय यदि वर्षा होनेकी सम्भावना देखी जाय, तो बीजोंको खेतमें छोटने (बोने) से ही अच्छा होता है । क्योंकि बीजोंको खेतोंमें छोट कर बोनेसे आकाशकी वर्षाकी तेजसे वे सब बीज मिट्टीके भीतर प्रवेश कर सकते हैं । सूखी मिट्टीमें बीजोंको एक एक करके रोपण करना अच्छा समझा जाता है ; क्योंकि सूखी मिट्टीमें बीजोंको छोट कर बोनेसे वे सब बीज मिट्टीके ऊपर पड़े रहते हैं, इससे पक्षी कीट प्रभृति उन बीजोंको सहजमें ही नष्ट कर सकते हैं ।

खेतमें बीज बोनेके बाद एकबेर हलकेपनसे उसकी मिट्टीको जोत देना उचित है अथवा कुदाल प्रभृतिके सहारे गोड़ देनेसे भी अच्छा होता है । इसका तात्पर्य यह है कि, इसके छोटे हुए बीज मिट्टीके ऊपर न पड़े रहें, बल्कि मिट्टीके भीतर प्रविष्ट होजावें । जब उन बीजोंसे पौधे बाहिर हों तथा उन पौधोंमें तीन चार पत्ते निकल आवें ; तब खेतको एकबेर फिर गोड़नेकी जरूरत रहती है । खूब सावधानीसे शाक आलूके खेतको गोड़ कर मिट्टीको पोली तथा मिहीन कर देना चाहिये । क्योंकि मिट्टीको मिहीन और पोली न करनेसे पौधोंके जड़ोंकी मिट्टी कड़ी होजाती है और इस प्रकारकी कड़ी मिट्टी सूर्यकी धूपसे गरम होकर पौधोंके सम्बन्धमें अनिष्ट किया करती है । इसलिये जिससे पौधोंके जड़ोंकी मिट्टी खूब पोली रहे, उस विषयमें विशेष दृष्टि रखनी चाहिये ।

जब शांक आलूके पौधे तीन चार अंगुल बड़े हों, तो खेतकी मिट्टीको निरा देना उचित है। निरानेके समय खेतमें जो कुछ घास प्रभृति हों, उन्हें उसमेंसे निकाल कर बाहिर कर देना चाहिये, वर्षाके शेषमें शांक आलूके पौधोंकी अवस्थाको विशेष रीतिसे देखना उचित है। यदि पौधोंकी यथोचित वृद्धि न हो, तो उनके लिये दूसरा कोई उपाय न करके केवल उनके जड़ोंकी मिट्टीको निराकर पोली कर देनेसेही यथेष्ट होगा। किन्तु यदि इसकी पौधे ज्यादा बढ़ जायँ, तो उन्हें नीचेकी ओर एक हाथ परिमाणसे रख कर ऊपरी हिस्सेकी काट डालना उचित है। इस प्रकारसे पौधोंकी काट डालनेका कारण यह है कि, जिन सब पौधोंके मूल बढ़ानेका प्रयोजन रहता है, उनको शाखा प्रशाखाको अथवा बढ़ने देनेसे प्रयोजनोय मूलकी यथोचित वृद्धि नहीं होती।

अगहन वा पौष महीनेमें शांक आलूके पौधोंमें फूल लगते हैं। इसी समय खेतमें कन्ची प्रभृति लकड़ी खड़ी करके उसीके ऊपर पौधोंको चढ़ाना उचित है। खेतकी मिट्टीमें फूलोंके पड़े रहनेसे चूहे प्रभृति जीव जन्तु उसे नष्ट कर सकते हैं। शांक आलूके खेतमें अधिक परिमाणसे जल सींचने पर इसकी मूल कुछ बड़े हो जाते हैं, पर उससे शांक आलूका आस्वादन कम होजाता है। जब शांक आलूके पौधे निस्तेज वा पोले रङ्गके होजायँ, तब किसी यन्त्र प्रभृतिके सहारे शांक आलूको बाहिर कर लेना चाहिये।

एक एक शांक आलू तौलमें एक एक पावसे लगाय पांच सेर तककी हीती हुई देखी गई हैं। प्रति बीघा खेतमें पचास साठ मनसे लगाय एकसौ मन पर्यन्त शांक आलू उत्पन्न हो सकती है।

बड़ा लीवा ।

-०००-

जिस जमीन वा मिट्टीमें लीवाके बीजोंकी रोपण करना हो, उस जमीनकी मिट्टीको फावड़े प्रभृतिसे खूब गहराईसे कर्षण करे । मिट्टी खोदनेका कार्य समाप्त होजाने पर उस कर्षित मिट्टीको उलट कर खतन्त्र स्थानमें फेंक देवे । क्योंकि उक्त मिट्टीकी इसकी लिये और कुछ आवश्यकता नहीं रहती । अनन्तर नदी तटकी वालू मिट्टी संग्रह करे । और उक्त कर्षित स्थानको वालू मिट्टीसे परिपूर्ण करे । उसके बाद सूखे गोबरकी खाद और खुलीकी खाद जलमें मिलाकर कर्षित स्थानके ऊपरी भागमें बहुत सावधानीसे छोड़ कर सम्पूर्ण मिट्टीको एकवारगो उलट पुलट कर कीचड़की तरह कर देना होगा ।

इसके अनन्तर धूपमें मिट्टीके सूख जाने पर फावड़ोंसे पुनर्वार मिट्टीको उलट पुलट कर उसके साथ पुरानो दीवाल अर्थात् भीतोंकी मिट्टी जो कि कुछ नोनापन लिये होती है उसके साथ गोबरकी राख मिलाकर जल डाल कर कीचड़ करके मिट्टीके साथ एकत्र करके जमीनकी मिट्टीको समतल कर देना चाहिये । इस मिट्टीके सूख जाने पर जगह जगह गढ़ा खोद कर बीज बोके समय समय पर थोड़ा थोड़ा जल बीज बोये हुए गढ़ों वा थालोंमें देना चाहिये । जब बीजसे पौधे निकल कर उनकी लता कुछ बड़ी हो, तो उन्हें टट्टर या मचान प्रभृति पर चढ़ा देवे । सावधान रहे कि, इसको लता भूमिमें न फैलने पावे । मचान जितना ऊँचा होगा, उतनाही सुविधा है । क्योंकि इसकी लताकी शाखा प्रशाखा जितनी ऊँची उठेंगी, लीवा भी उतनाही बड़ा होगा । ऐसी परिचर्या कर सकनेसे लीवा जो अधिक बड़ा होगा, उसमें

कुछ सन्देह नहीं है । ऐसी उपाय अवलम्बन करनेसे तौलमें प्रायः एक मन पर्यन्तके लोवा देखे गये हैं ।

— ० —

सांची कुम्हड़ा ।

सांचीकुम्हड़ाको बहुतेरे लोग मगजकहू भी कहते हैं । सम्पूर्ण भारतवर्षमें इसका विशेष आदर है । सांचीकुम्हड़ाको देशी तथा चालकुम्हड़ा भी कहा करते हैं । समय समय पर एक एक सांची-कुम्हड़ा पांच सात रुपये तककी कीमतमें बिकते हुए देखे जाते हैं । यह मत समझो कि, सांची कुम्हड़ा केवल व्यञ्जनमें ही व्यवहृत होता है । व्यञ्जनमें व्यवहृत कुम्हड़ा कदापि पांच सात रुपये तककी कीमतमें नहीं बिक सकता ; वे आध आनेसे लगाय दो आने तक विक्रय हुआ करते हैं ।

सांचीकुम्हड़ा अनेक प्रकारके कविराजी औषधोंमें व्यवहृत हुआ करता है । यह कुम्हड़ा जितना ही पुराना होगा, उतनी ही उसकी कीमत भी ज्यादा होनेकी सम्भावना है । यदि एक वर्षका पुराना कुम्हड़ा १) एक रुपयेमें बिके, तो सात वर्षका कुम्हड़ा निश्चय ही ७) सात रुपयेमें बिक सकता है । व्यञ्जन और औषधादि बनानेके सिवाय अन्य प्रकारसे भी सांची कुम्हड़ा व्यवहृत होता है । कलकत्ता प्रभृति बड़े बड़े शहर नगरोंमें मिठार्थ प्रभृति की दूकानों पर सांचीकुम्हड़ाकी वर्फी और सुरवा यथेष्ट परिमाणसे विक्रय हुआ करता है ।

सांचीकुम्हड़ाके बोनैकी कोई निर्दिष्ट जमीन नहीं है । क्योंकि यह सब प्रदेशोंके सब तरहकी मिट्टीमें बल्कि जङ्गल तथा गृहस्थोंके घूर और कान छप्पड़ सब स्थानोंमें ही उत्पन्न हुआ करता है ।

जो सब सांची कुम्हड़ा व्यञ्जनमें व्यवहृत किये जाते हैं, उनके बीजोंको बपन करना ही, तो एक वर्षके कुम्हड़ाका बीज बोये। पञ्चान्तरमें यदि कुम्हड़ाको ज्यादा दिन रख कर अधिक मूल्य पर विक्रय करनेकी इच्छा रहे, तो कई वर्षके रक्षित पुराने कुम्हड़ाके बीज ही रोपण करना उचित है। एक वा दो वर्षके रक्षित सांची-कुम्हड़ाके बीजसे जो सांचीकुम्हड़ा उत्पन्न होते हैं, वे ज्यादा दिनों तक अविनाश अवस्थामें नहीं रहते।

जिस जमीनमें सांचीकुम्हड़ाको आबाद करना स्थिर होगी; उसमें चैत महीनेमें डेढ़ हाथ गहरा और डेढ़ हाथ चौड़ा एक गढ़ा खोदकर उसे तृण फूस वा कूड़ा मिट्टी प्रभृतिसे भर देवे। उसके अनन्तर उस गढ़ेमें पानी डाल कर उसमेंकी तृण आदि सहित मिट्टीको सड़ा देना चाहिये। वैशाख महीनेके प्रथम पक्षसे लगाय जेठ और आधे आषाढ़ तक उस गढ़ेकी मिट्टीको खोद कर मिट्टीन चूर्ण वारके उसमें ४।५ बीज रोपण करना उचित है। बीज रोपण करनेके बाद चार पांचरोज उसमें सवेरे और शामकी जल सींचना चाहिये। बीज अंकुरित होकर पौधे बाहिर होने पर फिर उसमें प्रतिदिन जल सींचने की जरूरत नहीं रहती। जब तक जलकी वर्षा न हो, तब तक कूप वा तालाब प्रभृतिके जलसे इसे सींचना होता है। फिर जलकी वर्षा होने पर सींचनेको जरूरत नहीं रहती; क्योंकि वर्षाका जल इसके लिये अधिक उपकारी है।

जब सांची कुम्हड़ाके पौधोंमें २।३ पत्ते उत्पन्न होते हैं, तब उसके पौधोंमें एक प्रकारकी कीट लगकर विशेष अनिष्ट किया करते हैं। राख किम्बा हुआका जल अथवा तमाकू भिंगाया हुआ जल इसके पौधों पर डालनेसे वे कीट विनष्ट हो सकते हैं। अनन्तर कुम्हड़ा के पौधे जब प्राय एक एक हाथ ऊंचे हों तो उन्हें किसी लकड़ी वा टट्टर प्रभृति पर चढ़ा देना उचित है।

उसके अनन्तर एक मचान बांधकर उसीके ऊपर सांची कुम्हड़ा की लताओंको चढ़ा देना चाहिये । मचानको अपेक्षा घरके छान छप्पड़ पर भी इसकी लताओंको चढ़ा देनेसे उनमें बहुतसे फल लगते हैं । छान छप्पड़ पर भलीभांति कुम्हड़ा उत्पन्न होनेके कई एक कारण हैं । जमोनकी मिट्टी लगकर कुम्हड़ाकी लता अनेक समय नष्ट होजाती है । छत्तकी गरमीसे भी इसका विशेष अनिष्ट हुआ करता है । किन्तु छान छप्पर पर यह सब भय नहीं है । इसी लिये छान छप्पर पर यह कुम्हड़ा अच्छी प्रकार फला करता है ।

इसके बीजको रोपण करनेके बाद तीन चार महीनेके बीचमें ही फल प्राप्त हो सकते हैं । यदि सांची कुम्हड़ाको ज्यादा दिन तक रखनेकी जरूरत हो, तो उसे पकने पर तोड़कर जमीनमें न रखके स्वतन्त्र मचान प्रभृति पर उठा रखना उचित है । यदि ५।७ वर्ष तक रखनेकी जरूरत हो, तो अच्छा पका हुआ सांची कुम्हड़ा पेड़मेंसे तोड़कर धूप वा प्रकाशरहित किसी घरमें रसरीमें वा सिकह में बांधकर कड़ी प्रभृतिके सहाते भुला रखे ।

अन्यान्य वर्षाती कुम्हड़ा प्रभृतिके भी प्राय इसी प्रकार रोपण करनेकी तथा फल पानेकी रीति जानो ।

—०—

शाक प्रभृति आवाद करनेकी रीति ।

—०—

लाल सज्ज मीठा डेङ्गो (मरिशा) शाक—डेङ्गो

(मरिशा) शाककी आवादी प्राय सब स्थानमें तथा सब प्रकारके खेतोंमें ही हो सकती है, किन्तु कुछ ऊँचे दुमटमिट्टीवाले खेतोंमें इसकी आवादी भलीभांति हो सकती है ।

इस शाकके बीज बोनेके पहिले खेतको तैयार कर रखनेकी जरूरत रहती है। डेड़ो (मरिशा) शाकके खेतमें प्रति बीघा के हिसाब ५ पांच मन सरसो वा तीसीकी खाद अथवा ४ मन रेड़ीकी खाद डालनेसे अच्छी तरह शाककी वृद्धि होनेकी सम्भावना रहती है। पहिले खेतको एकबेर वा दो बेर जोत कर उपरीत परमाणसे खलीका चूरा छीटना चाहिये। खेतमें खलीका चूर्ण छीटनेके बाद फिर दो तीन बेर उस खेतको जोत देना उचित है। और जोतने पर खेतमें जो घास प्रभृति दीखें, उन्हें जड़ मूल सहित खेतमेंसे निकाल कर पृथक् कर देना चाहिये। अनन्तर वैशाख महीनेके शेष किम्बा जेठ महीनेमें वा आषाढ़ महीनेमें जलकी वर्षा होने पर खेतमें डेड़ो (मरिशा) शाकके बीजको बोना वा छीटना होता है। खूब सावधानी सहित इसके बीजको खेतमें छीटना चाहिये; प्रति बीघा खेतमें बीस तोला वा पच्चीस तोला बीज छीटनेसे ही यथेष्ट होगा। बीज बोनेके बाद खेतकी मिट्टीको हेंगा चलाकर समतल कर देना उचित है।

जब इसके बीज अंकुरित होकर पौधोंमें दो तीन पत्ते बाहिर हों, तब खेतको एकबेर निराकर उसमेंकी उत्पन्न हुई घास प्रभृतिकी खेतमेंसे निकाल कर फेंक देना उचित है। यदि बीज बोनेके बाद अथवा बीजोंसे पौधे बाहिर होनेके पहिले जलकी वर्षा हो, और उस वर्षाके पानीसे खेतकी ऊपरकी मिट्टी जमकर कठोर वा कड़ी हो जाय, तो उस सारे खेतकी मिट्टीको एकबेर गोंड़ दे, वा निरानी प्रभृतिसे ऊपरकी जमी हुई मिट्टीको उठा कर पोली कर दें। क्योंकि वर्षाके जलसे खेतकी ऊपरी मिट्टी कड़ी होजानेसे उसमेंके भीतरी बीज ऊपरकी कड़ी मिट्टीको भेद कर किसी प्रकारसे अंकुरित होनेमें समर्थ न होंगे। इसलिये जिस समय वर्षाके पानीसे बीज अंकुरित होनेके पहिले खेतकी ऊपरी मिट्टी कड़ी होजाय,

उसी समय सारे खेतकी मिट्टीको गोंडके वा निरानीसे मिट्टीको उलट पुलट कर पोली कर देनेसे सब प्रकारसे फाड़दा होनेकी आशा रहती है ।

इसके अनन्तर जब डेङ्गो (मरिशा) शाकके पौधोंसे आठ दस पत्ते बाहिर हों, तब देखना चाहिये कि, खेतमें सब जगह समान पौधे उत्पन्न हुये हैं वा नहीं । अर्थात् कहीं घने और कहीं दूर दूर पौधोंके बाहिर होने पर घने स्थानमेंसे कुछ पौधोंको उठा कर जिस जगह पौधे न उत्पन्न हुए हों, उस स्थानमें रोपण कर देना उचित है । अर्थात् ध्यान रहे कि, प्रत्येक पौधोंको एक एक हाथ वा पौन पौन हाथके तफावत पर रोपनेसे अच्छा होता है । क्योंकि बहुत घने होनेसे इसके पौधे तेजस्वी नहीं हो सकते और न उनकी डंटे वा पत्तोंके शाक ही मीठे होते हैं ।

उपरोक्त प्रकारसे एक एक वा पौन पौन हाथके फासिले पर पौधोंको रोपनेके बाद यदि वृष्टि न हो, तो खेतमें एकबेर जल सींचना उचित है । क्योंकि खेतमें जल न सींचनेसे सूर्यको उत्तापसे इसके पौधे सूख कर नष्ट हो सकते हैं । जब इसके पौधे रोपण करनेके अनन्तर खेतकी मिट्टीमें भलीभांति लग जायँ, अर्थात् उन में नये पत्ते बाहिर हों, तब कुदाससे गोंड देवे वा निरानी प्रभृतिसे निराकर मिट्टी पोली कर देना जरूरी कार्य्य है ।

डेङ्गो (मरिशा) शाकके खेतमें अधिक परिमाणसे वृष्टिका जल एकत्रित होनेसे उसे खेतमेंसे बाहिर कर देना उचित है ।

यद्यपि डेङ्गो (मरिशा) शाक अन्यान्य मूल्यवान सजो प्रभृति की तुलनामें अकिञ्चितकर है, तथापि हमारे देशमें धनी गरीब सबही इसके शाकको अधिकता सहित व्यवहार किया करते हैं । डेङ्गो (मरिशा) शाक ब्रेशाख महीनेसे आरम्भ करके आश्विन महीनेतक मिलता है । यदि इस शाकका बोज संग्रह करना हो,

तो भादों महीनेके बाद इसके पेड़ोंमेंसे खूब पके हुए बीजोंको देख
देख कर संग्रह करके रखना उचित है। कलकत्ता काशीपुर
कृषिशालामें इसके बीज विक्रयार्थ मौजूद रहते हैं।

— ० —

करम शाक ।

— ० —

करम शाक गोभी जातीय एक प्रकारका शाक विशेष है;
इसका अंग्रेजी नाम कोलवार्ट (Colewart) है। इसके पत्ते
और डंटे दोनोंही तरकारी रूपसे व्यवहृत हुआ करते हैं। काश्मीर
प्रदेशमें इसकी अधिक परिमाणसे आवादी हुआ करती है, करम
शाक देखनेमें ठीक फूलगोभीके पौधोंकी भांति होता है और
खानेमें भी अच्छा स्वादिष्ट होता है। चैत महीनेके शेष किम्बा
वैशाख महीनेके प्रथम पक्षमें इसके बीजोंके बोनेका उपपुक्त समय
है; इसकी रोपण प्रणाली यद्यपि कुछ विशेष कठिन नहीं है,
तथापि जिस प्रकार कृषिकार लोग अन्यान्य शाक बोनेके लिये
खेतको जोतकर दुरुस्त करते हैं, उसी भांति इसके खेतको भी
जोत कर ठीक रखने से अच्छा होता है। बीज बोने पर जब
इसके पौधे ५।६ इंच अन्दाज बड़े हों, तब उन्हें वहांसे उठाकर
खेतमें रोपण करना चाहिये। डेढ़ महीने वा दो महीनेमें इसके
पौधे भलीभांति शाक खानेके उपपुक्त होजाते हैं। काश्मीरी लोग
इसी समय इसके पौधोंके नीचेके पत्तोंको तोड़ कर ५।७ पत्ते एक-
त्रित करके आंटी बांध बांध बाज, रोमें, बेचनेके लिये बेजा
करते हैं।

करम शाक एक बैर खेतमें रोपण करनेसे आश्विन कातिक महीनेतक प्रचुर परिमाणसे इसका शाक संग्रह किया जासकता है । एक बीघा जमीनमें करम शाक रोपण करनेसे प्रतिदिन प्राय एक रुपया वा डेढ़ रुपयका शाक विक्रय हुआ करता है । पहिले कह आये हैं, कि इसे बोके आवाद करना कुछ कठिन कार्य नहीं है, तब पौधोंके रोपनेके बाद इसके मूलकी मिट्टीको दो एक बैर निराकर पोली कर देना और मिट्टीको सूखती हुई देखकर जल सींचना बहुत जरूरी कार्य है ।

अगहन पौष महीनेमें ज्यादा जाड़ा होनेसे इसके पौधोंसे पत्ते बाहिर नहीं होसकते, इसीलिये उस समय कृषिकार लोग इसे ढंटी सहित काट कर बाजारमें विक्रय किया करते हैं । काश्मीरमें बहुतेरे गृहस्थ लोग इसकी खेती किया करते हैं ।

—०—

चौलाई शाक ।

चौलाई शाक प्राय सब प्रदेशोंके सब तरहके खेतोंमें उत्पन्न हो सकता है । चौलाई शाक दो अंशोंमें विभक्त है । पहिलेको आशु चौलाई शाक और दूसरेको आमन चौलाई शाक कहते हैं । आशु चौलाई शाकके बीजको फागुन, चैत किस्वा वैशाख महीनेमें बोना होता है । और आमन चौलाई शाकके बीजको कातिक वा अगहन महीनेमें बोना होता है । किन्तु कातिक अगहन वा चैत, वैशाखकी खेतीकी अपेक्षा फागुन महीनेमें जो इसके बीज बोये जाते हैं उनसे ज्यादा लाभकी सम्भावना रहती है । तब वैशाख महीनेकी अपेक्षा फागुन महीनेमें इसके बीजोंको बोके

शाक उत्पन्न करनेमें कुछ अधिक खर्च लगता है । इसका कारण यह है कि, वैशाख महीनेमें इसके बीजोंको बोनेसे अधिक बेर अर्थव्यय करके जल सींचनेको जरूरत नहीं रहती, क्योंकि बहुतेरे स्थानोंमें भारतवर्षके बीच वैशाख महीनेमें तथा उसके बादही वर्षा होने लगती है । और फागुन महीनेमें बपन करनेसे कूआं प्रभृति से जल सींचनेकी ज्यादा आवश्यकता रहती है, इसीलिये खर्च अधिक लगता है ।

फागुन महीनेमें प्रायः बाजारमें अन्धान्य तरकारी अच्छी नहीं मिलती इसीलिये इस समयमें चौलाई शाककी अधिक चाह होती है और इसीसे उसकी कीमत भी ज्यादा बढ़ा करती है ।

फागुन महीनेमें चौलाई शाकके बीजोंको बोना होना ही, तो उसके लिये बारहमासिया जमीनको जरूरत रहती है । उस खेतको पीप और साध इन दोनों महीनोंमें भलीभांति जोत कर उसमेंकी घास प्रभृतिको नष्ट करना चाहिये । अनन्तर एकबेर वा दो बेर हेंगा चलाकर खेतमेंकी मिट्टीके ढेलोंको चूरा करते हुए मिट्टीको समतल कर देना जरूरी है । इस प्रकारसे जमीनको दुरुस्त करनेके बाद उसमें उपयुक्त परिमाणसे खाद डालना चाहिये । खेतमें खाद सर्वत्र कीटनेके बाद फिर खेतको हलसे जोत देना चाहिये, जिससे खाद मिट्टीके साथ मिल जावे । मीड़ बकरीकी मगनो इसमें लिये अच्छी खाद समझी जाती है । जब मिट्टीमें भलीभांति खाद मिल जावे, तब हेंगा चलाकर फिर खेतकी मिट्टीको समतल कर देना उचित है ।

इस प्रकारसे खेतकी मिट्टी दुरुस्त होजाने पर उसमें क्यारीमें, और बरहा नाली बना देवें, उपरोक्त रीतिसे खेतकी मिट्टी तैयार होजाने पर प्रति बीघामें ४० चालीस तोलाके हिसाबसे चौलाईके बीजोंको बपन करना चाहिये । ध्यान रहे कि, बीजोंको तीन

शुष्क मिट्टी बीजोंके साथ मिलाकर उन मिट्टीमिश्रित बीजोंकोही खेतमें छीटना होता है ।

इस शाकके बीजके साथ मिट्टी मिलाकर बपन करने वा छीटनेका यह प्रयोजन है कि, चीलाई शाकके बीज बहुत छोटे और काले होते हैं, हाथमें लेकर बपन करनेके समय खेतमें कहीं कम और ज्यादा पड़नेसे मालूम नहीं किये जा सकते । इसी लिये थोड़ासा सूखी मिट्टीका चूरा इनके बीजोंके साथ मिला कर खेतमें बोनेसे सुविधा होता है और मिट्टीके साथ मिले रहनेसे इसके बीज चिन्ह रूपसे स्पष्टही परिलक्षित होते हैं । यदि मिट्टी बीज बोनेके बाद अत्यन्त सूखी मालूम हो, तो भूँभरी प्रभृतिके सहारे इसके खेतमें थोड़ा जलका छीटा देनेकी आवश्यकता रहती है । किन्तु इस प्रकार जल सींचनेके पहिलेही यदि बीज अंकुरित हों तो उस समय एक बारगी खेतमें भलीभांति जल सींच देना उचित है ।

उपरोक्त रीतिसे चीलाईको खेती करनेसे २०।२५ दिनके बीचमें ही इसके शाक खानेके उपयुक्त होजाते हैं । चीलाई शाकके पौधे चार पांच इञ्च लम्बे होनेसे ही उन्हें नीचेकी ओर दो इञ्च छोड़ कर ऊपरसे काट लेते हैं । जिस रोज शाक काट लेवे, ठीक उसी रोजही एकवेर उस खेतमें जल सींचना विशेष कर्तव्य कार्य है । क्योंकि शाक काट लेनेसे इसके पौधोंसे एक प्रकार लासा बाहिर होता है, इस लासाकी जलसे न धोने पर उसमें एक प्रकारके कीट लग कर सारे पौधोंको नष्ट कर सकते हैं ।

भीम काँकड़ी ।

भीम काँकड़ी मुर्शिदाबाद, मालदह तथा पश्चिमोत्तर देश प्रभृतिके किसी किसी प्रदेशमें अधिक परिमाणसे उत्पन्न हुआ करती है। साधारण फूटवाली काँकड़ीकी अपेक्षा यह बहुत बड़ी होती है। इसकी लम्बाई तीन हाथ तक हुआ करती है। लम्बाईसे इसकी सुटाई कम होती है। दस बारह आदमी भी एक भीम काँकड़ी को नहीं खा सकते। कच्ची अवस्थामें इसकी तरकारी प्रभृति हुआ करती हैं, और पकने पर यह भी फूटवाली काँकड़ीकी भाँति खाई जाती है। वर्ष भरमें दोबेर इसकी खेती हो सकती है। एकबेर पौष महीनेके शेष पक्षसे लगाय माघ महीनेके प्रथम पक्ष तक और दूसरीबेर जेठ महीनेके शेष पक्षसे लगाय आषाढ़ महीनेके प्रथम पक्ष पर्यन्त। वालूयुक्त भूमिमें ही यह अधिक परिमाणसे हुआ करती है। इसकी खेतीमें विशेष परिश्रम करनेकी जरूरत नहीं रहती। केवल खेतको जोतकर उसमें एक एक वा डिढ़ डिढ़ हाथ की फासिले पर एक एक नाली वा बरछा बनाना होता है, उसीमें इसके दो दो तीन तीन बीजोंको दो दो हाथके तफावत पर इस प्रकार रोपना उचित है कि, बीजोंके सुख ऊपरकी ओर रहें; ध्यान रहे कि, बीजोंके ऊपर आधे इंच तकही मिट्टी रहे, क्योंकि ज्यादा नीचे तक मिट्टीमें पड़े रहनेसे बीजोंके अंकुर बाहिर होनेमें व्याघात होता है, अथवा एकवारगी मिट्टीको भेदकर अंकुर उत्पन्न ही नहीं हो सकते, अंकुर निकलने पर दो तीन दिनके बाद थोड़ा थोड़ा जलसे सींचना उचित है। अनन्तर जब इसके पौधे बड़े होकर उनकी लता खेतमें फैलने लगे, तब उन लताओंको पृथक् पृथक् कर देना उचित है। इसी समय इसकी लताओंमें एक प्रकार

के लाल रङ्गके छोटे कोट इसके शत्रु होजाते हैं, उस समय विशेष रीतिसे सतर्क रहना चाहिये । अर्थात् तमाकूके पत्तोंके चूर्णका पानी अथवा हुक्काके जलको उस समयमें इसके पत्तों पर थोड़ा छींटा देनेसे उसमें उक्त कोट नहीं लगते । अनन्तर फल लगने पर उनके नीचे और ऊपर पौवाल (विचाली) बिछाकर ढांक देना चाहिये । इसके लिये और कुछ विशेष यत्न नहीं करना होता ।

—०—

देशी प्याज और लहशुन ।

देशी प्याज और लहशुन प्राय एक प्रकारके पदार्थ हैं । ये सब प्रकारकी जमीनमें उत्पन्न हो सकते हैं । किन्तु दुमट मिट्टीमें इनकी फसल भलीभांति प्राप्त हो सकती है । मिट्टी कड़ी होनेसे प्याज वा लहशुनके मूल अच्छी तरह नहीं बढ़ सकते । लेकिन खेतकी मिट्टी पोली रहने तथा खूब गहराईयुक्त जोती रहनेसे इनकी फसल भली भांति प्राप्त हो सकती है । वङ्गाल विहार तथा पश्चिमोत्तर देशमें प्रति बीघा खेतमें प्राय तीस वा चालीस मन तक प्याज और लहशुन उत्पन्न हो सकते हैं । इनकी खेतीमें कुछ भी खतन्त्र नहीं है, इसी लिये पृथक् पृथक् रूपसे वर्णन नहीं किया ।

कातिक महीना ही प्याज और लहशुन आवाद करनेका ठीक समय है । वर्षाके शेष अर्थात् आश्विन महीनेके शेष पक्षमें ही इसके खेतको भलीभांति जोतकर उसका मिट्टीको हेंगा चलाकर समतल कर देवे । अनन्तर खेत तैयार होजाने पर पूर्ववर्षके रखे हुए प्याज वा लहशुनके कोष वा कोयोंको पृथक् पृथक् करके छः छः अङ्गुलके तफावत पर रोपना उचित है । इनके बीजोंको इस

प्रकार खेतमें रोपण करे, कि वे मिट्टीके नीचे पड़कर दब न जावें अर्थात् समतल भूमिके ठीक नीचे ही रहें। क्योंकि बीजोंके ऊपर ज्यादा मिट्टी पड़ जानेसे इनके बीजोंके अंकुर उस मिट्टीको भेद कर बाहिर नहीं हो सकते। तथा बीजोंके सुख भी यदि मिट्टीके बाहिर रहें, तो भी सूर्यके उत्तापसे इनके अंकुर सूख जाते हैं; इसलिये इन दोनों अवस्थाओंके मध्यवर्ती करके इनके बीजोंको रोपण करना उचित है।

बीजोंके अंकुरित होने पर खेतकी अवस्थाका विचार कर बीच बीचमें निराना होता है। पौष महीनेमें इनके पेड़ोंमें शीष उठकर फूल होता है, इन शीषोंको कली कहते हैं, प्याजके शीषको प्याज को कली कहते हैं और उसे अन्यान्य शाक सब्जीकी भांति बहुतेरे लोग व्यवहार किया करते हैं; केवल हिन्दुओंके बीच प्रायः ब्राह्मणादि प्याज लहशनको जहां तहां अस्पृश्य समझते हैं।

माघ फागुन महीनेमें जब देखे कि, इनके पेड़ोंके पत्ते सूख जाते हैं, तब जानना चाहिये कि, प्याज और लहशनको खोद कर निकालनेका समय हुआ। अनन्तर उसी समय उन्हें खोदकर मिट्टीमेंसे निकाल लेवे और उनके मूलकी सोरीको काटकर ढंढे समेत धूपमें सुखा लेना होता है। भलीभांति सूख जाने पर ढंढेको काट डालना चाहिये। तब फिर उन्हें मिट्टीके ऊपर रखना उचित नहीं है। क्योंकि मिट्टी पर रखनेसे प्याज और लहशनके सड़नेकी सम्भावना रहती है। इस लिये जिससे ये खूब शुष्क अवस्थामें रहें, वैसे ही करना चाहिये, मिट्टीके ऊपर रखना ही, तो उस स्थानको आधे हाथ तक भलीभांति बालूसे आवृत करके उसके ऊपर रखना होता।

हमारे देशके कृषिकार लोग प्याजकोही बीजरूपसे ग्रहण किया करते हैं। किन्तु इङ्ग्लैण्ड और अमेरिका प्रभृति अन्यान्य

देशोंके कृषक लोग प्याजके बीजको व्यवहार किया करते हैं। स्पेन देशको प्याज सबसे बड़े आकार हुआ करती है। इटाली देशमें एक प्रकारको ऐसी मीठी और सुगन्धयुक्त प्याज उत्पन्न होती है कि, उसे सबके फलकी तरह कचौही खा सकते हैं।

हमारे देशमें केवल दो प्रकारकी प्याज देखी जाती है, एक छोटी लालरङ्गकी और दूसरी बड़ी सफेद रङ्गकी। किन्तु दो तीन औन्ससे ज्यादा नहीं होती। पर इङ्ग्लैण्ड स्पेन और इटाली देशीय प्याज अनेक रङ्ग और नाना प्रकारकी हुआ करती हैं और उनके भिन्न भिन्न नाम भी हैं। बाहुल्यता हेतुसे इस स्थलमें नहीं लिख सकते। किन्तु कलकत्ता काशीपुर कृषिशालामें उन सबके बीज मिलते हैं।

—०—

सौंफ ।

—०—

भलीभांति जीते हुए खेतमें कातिक महीनेमें सौंफके बीजको छोट कर हेंगा चलाकर मिट्टी समतल कर देते हैं। ५।७ रोजमें बीजोंसे अंकुर बाहिर होते हैं। मिट्टी सूखने पर जल सींचनेकी आवश्यकता रहती है। जब इसके पौधे कुछ बड़े होजाते हैं। तब खेतमें जो सब तृणादि उत्पन्न हों, उन्हें खुरपी प्रभृतिसे निराकर खेतमें से बाहिर कर देना होता है। क्रमसे सौंफके पेड़ बड़े होजाते हैं और माघ महीनेमें इसके पेड़ोंमें फूल लगते हैं, तथा फाल्गुन महीनेमें सौंफके पेड़ोंमें फल लग जाते हैं, जो कि फागुन महीनेके शेष तथा चैत महीनेके प्रथम पक्षतक पक जाते हैं। पकने पर डंटा सहित इसके फलोंकी मञ्जरीको काट लेते हैं, अनन्तर उन्हें धूपमें सुखाकर पीटकर सौंफके दानोंको पृथक् कर

लेते हैं। सौंफ अनेक प्रकारके औषधीमें व्यवहारकी जाती है और यह भी प्रधान मसालेकी बीच गिनी जाती है। देश विदेशमें प्रचुर परिमाणसे सौंफ रफ्तानी हुआ करती है, इसलिये इसकी खेती करनेसे अधिक लाभ होनेकी सम्भावना है, भारतीय कृषक मण्डलो तथा देशहितैषी लोगोंको इसके खेतीकी उन्नति सम्बन्धमें कदापि उदाशील न रहना चाहिये।

—०—

धनियां ।

जिस प्रकार सौंफके खेती करनेकी रीति लिख आये हैं, उसी प्रकार धनियांके बीजोंके भी बोनेकी रीति जानो। कातिक महीनाही इसके बीजोंके बोनेका अच्छा समय है। मिट्टी सूखने पर इसे भी जलसे सींचनेकी आवश्यकता रहती है। माघ महीनेमें इसके पेड़ोंमें भी फूल लगते हैं और फागुन महीनेमेंही इसके पेड़ों में फल लगकर पक जाते हैं। पकने पर उंटे सहित इसके फलोंकी सजरोकी काट कर धूपमें सुखाकर पीटकर धनियांके दानोंकी पृथक् कर लेते हैं, यह भी देश विदेशोंमें प्रचुर परिमाणसे रफ्तानी हुआ करती है, इसे मसाले तथा विविध प्रकारके औषधादि में व्यवहार किया करते हैं, इसलिये इसको खेती करनेसे भी भारतीय लोगोंको अधिक धनलाभ होनेकी सम्भावना है।

—०—

मेथी ।

मेथीकी खेती करनी हो, तो भलीभांति जोते हुए खेतमें इसके बीजकी कातिक महीनेमें बोकर अर्थात् छोटकर हिंगा चलाकर

मिट्टीको समतल कर देना होता है । प्रति बीघामें इसके बीज प्रायः चार वा पाँच सेर परिमाणसे बोये जाते हैं, पौधे ज्यों इसके कुछ बड़े होजाते हैं, तब जल सींचनेकी जरूरत रहती है । अर्थात् मिट्टीको सूखती हुई देखकर जल सींचते हैं, मेथीका शाक खाया जाता है । चौलाई शाककी भांति इसके पौधोंको भी चार छः अंगुल नीचेकी ओर छोड़ कर ऊपरसे काट कर इसके शाक को बाजारोंमें विक्रयार्थ भेज देते हैं, अनन्तर माघ महीनेमें जब मेथी फूलती है, तब इसके पेड़ोंकी शाखाओंको नहीं काटते, फागुन महीनेमें इसके फल लगके पक जाते हैं । पकने पर इसके पेड़ों को खेतमेंसे काट कर धूपमें सुखाकर पीटके इसके दानोंको पृथक् कर लेते हैं । मेथी भी विविध प्रकारके औषधों तथा मसालेमें व्यवहार की जाती है । इसकी भी प्रचुर परिमाणसे देश देशान्तरोंमें रफ्तानी हुआ करतो हैं, इसलिये मेथीकी आवादीमें भारतीय कृषिकारों तथा देश-हितैषी लोगोंको कदापि उदाशीन न रहना चाहिये, क्योंकि मेथीकी खेतोंमें अधिक परिमाणसे धन प्राप्ति की सम्भावना रहती है ।

जिन सब देशी विदेशीय शाक सब्जी तथा फसलोंके खेती की रीति इस पुस्तकमें नहीं लिखी गई है । उनके आवादी की रीति भी उपरोक्त शाक सब्जी वा फसलोंकी भांति जानो ।

कृषिदर्पणका चतुर्थ भाग समाप्त ।

कृषिदर्पण सम्पूर्ण ।

कलकत्ता,—“काशीपुर कृषिशाला” की

नियमावली ।

१। पेड़ोंपर नम्बरके साथ उनके नाम भी लटका दिये जाते हैं ; इससे नाम समझनेकी दिक्कत नहीं होती है ।

२। पेड़ोंका दाम अगाऊ देना पड़ता है । दामके उपरान्त पेकिङ्ग तथा भेजनेका भाड़ा और महसूल आदि खर्च साथही भेजना पड़ता है । पेड़ वेलुपेबिल डाकके जरिये नहीं भेजे जाते । पेड़ोंके पीधे रेलवे पार्सलमें भेजे जाते हैं ।

३। अपने देखने भालनेमें बड़े यत्नके साथ पेड़ोंकी पेक करके सबसे सुबीतेकी राहसे भेजा जाता है । जिस स्थान पर भेजना चाहिये,—उसकी सबसे सुबीतेकी राहका पता ठीक बता देनेसे लेनेवालोंका बड़ाही धन्यवाद मानेंगे । काशीपुर कृषिशाला के सुपरिटेण्डेण्ट श्रीहरिदास मिश्र बी, ए, बि, एलके नामसे रुपया पैसा तथा चिट्ठी पत्ती भेजना चाहिये ।

४। बैरङ्ग याने वे-महसूली और इन्सफिशियण्ट याने वजनसे कम महसूलवाली चिट्ठी नहीं ली जाती है ।

५। ग्राहकों को चाहिये कि, अपना नाम, ग्राम, पता, डाकघर और जिला साफ स्पष्ट देवनागरी, अंगरेजी अथवा वङ्ग-भाषामें लिखें । इसके सिवाय जो वृक्षोंके पीधे, कलम वा बीज लेना हो, उसका नाम भी लिख देना उचित है ।

६। जो ग्राहक मनिशार्डर में रुपया भेजे, उन्हें उचित है कि, मनिशार्डरके कूपन पर अपना नाम, ग्राम, डाकखाना, जिला

स्पष्ट लिखें और किस प्रयोजनसे रुपया भेजा जाता है, वह भी जरूर लिखा रहना चाहिये ।

७। हमारे भेजे हुए किसी पासलके बारेमें कुछ कहना हो, तो पासलका नम्बर और महीना तारीख सब व्योरेवार लिखें ।

८। नयपाल इत्यादि देश जहां कि मनिअर्डर नहीं जाते वहांके ग्राहकोंको उचित है कि, रजिष्टरी चिट्ठी द्वारा अर्थात् डाक स्टाम्प द्वारा मूल्य भेजें ; लेकिन डाक टिकट भेजनेसे प्रति रुपये पीछे ॥ दो पैसेका टिकट बढ़ाके लिये ज्यादा भेजना होगा ।

९। जिन लोगोंने हमारे यहां चिट्ठी वा मनिअर्डर भेजा हो, उनके निकट अगर एक हफ्ते तक उनकी मंगवाई हुई वस्तुएं न पहुंचे, तो जानना चाहिये कि, या तो उनका पता नहीं पढ़ा गया अथवा पत्र ही नहीं पहुंचा, इस लिये चिट्ठी साफ स्पष्ट अक्षरोंमें लिख कर फिर भेजें ।

श्रीहेमचन्द्र मित्र,

स्वत्वाधिकारी—काशीपुर “कृषिशाला” ।

पोष्ट आफिस, काशीपुर,—कलकत्ता ।

रेलवे पार्सलके भाड़े के नियम ।

रेलवे पार्सलके मसूल आदिके जैसे नियम इस स्थलमें नीचे लिखे हैं । उस रेटसे वृक्ष लता फल फूल पौधे वगैरः का आधा मसूल लगता है । दार्जिलिङ्ग हिमालयन रेलवेके सिवाय और सब रेलवेके प्रायः ऐसेही नियम हैं,—

२॥ सेर तक ५०० मौलसे कम होने पर १) आने । ५ सेर तक प्रति २५० मौल पोके १) चार आने । १० सेरसे १ मन तक २५ मौल तक १) आने । २५ से ५० मौल तक १० सेरसे लगाय २० सेर तक १) आने, ३० सेर तक ॥) आने, १ मन तक ॥) आने । ५० से १०० मौल तक १० सेरका १) आने बीससेर तक ॥) ३० सेर तक ॥) १ मन तक १) रुपया । १०० से १५० मौल तक १० सेर तक ॥) आने, २० सेर तक ॥) आने, ३० सेर तक १) रुपया, १ मनका १॥) रुपया । १५० से ३०० मौल तक १० सेर तक ॥) आने, २० सेर तक १) रुपया, ६० सेर तक १॥) रुपया, १ मन तक २) रुपये । ३०० से ४५० मौल तक १० सेर तक ॥) २० सेर तक १॥) ३० सेर तक २॥) १ मन तक ३) रुपये । ४५० से ६०० मौल तक १० सेर १) २० सेर तक २) ३० सेर तक ३) १ मन तक ४) रुपये । ६०० से ७५० मौल तक १० सेर १) २० सेर २॥) ३० सेर ३॥) १ मन तक ५) रुपये । ७५० से ८०० मौल तक १० सेर १॥) २० सेर २॥) ३० सेर ४॥) १ मन ५॥) रुपये । ८०० से १००० मौल तक १० सेर १॥) २० सेर ३॥) ३० सेर ४॥) १ मन ६॥) रुपये इत्यादि ।

मनके ऊपर १० सेर प्रभुतिके रेट सुताविक भाड़ा लगेगा ।

